चिट्ठी-पत्री

रामनारायण उपाध्याय

ज्ञान गंगा, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

प्रकाशक : ज्ञान गंगा, २०५-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ /
संस्करण : प्रथम, १९८४ / मुद्रक : मित्तल प्रिण्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२
मूल्य : पैंतीस रुपये

CHITTHI-PATRI
by Ram Narayan Upadhyaya

Rs. 35.00

नारायण उपाध्याय

की स्मृति में,

पत्र पुष्पाञ्जली—

यादों का इत्र

तुमने खत लिखा
खुशी हुई
मिल लिये
सुख हुआ।
यह खुशी और सुख ही
तुम्हारी अनुपस्थिति में
यादों का इत्र बनकर
महकता है।

दो-शब्द

मुझे अपने जीवन में दो ही वस्तुओं के प्रति मोह रहा है, एक पुस्तक तथा दूसरे पत्र। पुस्तकें तो कहीं से भी खरीदी जा सकती हैं, लेकिन पत्र बिना मित्रों के स्नेह के नहीं पाये जा सकते।

ये पत्र क्या हैं? मानो स्नेह के ऐसे पक्षी हैं, जो दूर-दूर से अपनों का प्यार लेकर आते, मेरे कमरे का चक्कर काटते और मन-प्राण पर छा जाते हैं। ये जिस दिन आते हैं उस दिन इनकी चंचलता देखते ही बनती है। ये कभी मेरे टेबल पर उधम मचाते, कभी सिरहाने छिपकर बैठ जाते तो कभी जेब के घौंसले से उचक-उचक कर झाँकते से नजर आते हैं। ये मुझे तब तक चैन नहीं लेने देते, जब तक की मैं इनका जवाब न दे दूं।

किसी के खत का जबाव नहीं देना मुझे ऐसे लगता है जैसे कोई हमारे दरवाजे पर आकर पुकारे और हम घर में होकर भी न बोलें। मैं अपने नाम आने वाले हर पत्र का जबाव प्रायः उसी दिन या अधिक-से-अधिक दूसरे दिन दे दिया करता हूँ। पत्र के जवाब में देरी करने पर मुझे कुछ ऐसा लगता है, जैसे कोई हमसे मिलने आए और हम उसे बैठाए रखें। हर आने वाले से सब कांम छोड़कर मिलना हर खत का जबाव देना, मेरा स्वभाव बन चुका है। सोचता हूँ, सबसे मिल चलो, न जाने किस रूप में भगवान मिल जाए।

जब भी कोई मिल लेता है, खुशी होती है। बात कर लेता है, सुख होता है, लेकिन जब कोई स्नेह के दो-शब्द लिख देता है तो मैं जी जाने का वरदान पा जाता हूँ। कारण मिलकर तो आदमी लाचार होता है, दो बात करने के लिए, लेकिन बिना मिले भी, जिनमें 'अपनों की याद' जगे, याद के उन क्षणों के चरणों में मैं श्रद्धा से नत हूँ।

सुदूर गाँव में रहते कोई हमारी भी याद करता है इस बात में कितना सुख है। कभी-कभी मेरी डाक में हाथ से लिखे पत्र, कामकाजी चिट्ठियाँ

और छपी हुई विज्ञप्तियाँ एक साथ आ जाती हैं।

लेकिन अपनी सरलता और सादगी के बावजूद, हाथ से लिखे पत्र में जो स्नेह होता है, वह और किसी में नहीं! उसके रोम-रोम से मानो प्यार झरता-सा आया है, और उसके शब्द-शब्द मानो यह कहते से प्रतीत होते हैं कि —"मैं सिर्फ तुम्हारे लिये हूँ। अपने एकांत के क्षणों में अपनी अन्तरात्मा के प्यार के साथ मैं जब लेकर बैठा हूँ, तो मेरा आँखों में महज तुम और तुम थे, और तब तुम्हारी याद की पगडण्डी पर फूलों की तरह नाजुक शब्दों के पग धरते, मैंने अपने स्नेह को तुम तक पहुँचाया है। मैं जब तुम्हें मिलता हूँ तो सम्भव है मिलकर भी नहीं मिल पाऊं, लेकिन मैं जब तुम्हें लिखता हूँ, तो सचमुच अपनी अन्तरात्मा की गहराईयों में से तुम्हें प्यार करता आया हूँ।"

एक दिन श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का पत्र आया—"मैं अभी दो दिन हुए बम्बई से लौटा हूँ। खण्डवा स्टेशन से गुजरते आप बन्धुओं की 'याद' कर लूंगा। किसी न किसी दिन ये सभी 'यादें' साकार होकर 'भेंट' बन जाएंगी।"

सोचता हूँ स्नेह की इसी डोर को लेकर, अनेक कठिनाइयों के बावजूद भी जिन्दगी की गाड़ी खिची जा रही है, आगे, और आगे की ओर।

एक दिन डा० कृष्णदेवजी उपाध्याय का पत्र मिला, "मैं आगामी लोक-संस्कृति सम्मेलन का आयोजन करने के लिए बम्बई जा रहा हूँ। लौटती बार खण्डवा स्टेशन पर आपका दर्शन करना चाहता हूँ। आपको मुझे खोजने में परेशानी न हों। अतः मैं थर्ड क्लास के कम्पार्टमेंट के दरवाजे पर अथवा खिड़की के पास खड़े होकर, आपको बुलाने की मुद्रा में, हाथ हिलाता रहूंगा, इससे आपको परेशानी न होगी।"

संयोग कि बात कि खत मुझे विलम्ब से मिला, और मैं उनसे मिलने न जा सका। लेकिन आज भी उनके उस हिलते हुए हाथ के समक्ष मेरा मन प्राण हिल उठता है।

एक बार जब मैंने भाई विष्णु प्रभाकर को लिखा—"आज आपकी बहुत याद आई। सोचता हूँ क्या बिना किसी काम के महज स्नेह को लेकर खत नहीं लिखा जा सकता?"

इस पर उन्होंने लिखा था-

"मुझे भी कोई याद करता है, यह कितना बड़ा सौभाग्य है।" दो पंक्तियों के इस पत्र में 'जैसे स्नेह का सागर छलछला उठा है।"

"हिन्दी के ललित निबन्धकार श्री विद्यानिवासजी मिश्र को जब मैंने पहली बार खत लिखा तो उनका जवाब आया—

"आपका कार्ड पाकर मुझे ऐसा लगा कि एक आत्मीय मिला। एक समानधर्मा से मिलने से जो प्रसन्नता होती है वही प्रसन्नता मुझे हुई।"

आप जैसे इने-गिने मित्र मेरे जैसे अत्यन्त आलसी और एकान्तप्रिय जनको याद कर लेते हैं, इससे बड़ा सौभाग्य कौन-सा है। मेरी लेखनी को इससे अधिक की चाहना नहीं है, क्योंकि युगप्रवर्तन के रथ का भार इन कन्धों पर नहीं हैं।"

जब कोई स्वेच्छा से साहित्यिक जीवन को स्वीकार कर लेता है तो वह इस बात को भी स्वीकार कर लेता है कि एक साहित्यकार की नियति वृक्ष की तरह हैं। वृक्ष अपनी जड़ में नितान्त एकाकी, पल्लवों में सामाजिक और फल में सार्वजनिक होता है। इसी तरह एक साहित्यकार भी अपने दर्द को चुपके से पीते हुए, अपनी दोनों भुजाएं फैला, समाज से अनुभव ग्रहण करता, और अपनी एकान्त साधना के साहित्य रूपी फलों को चुपके से समाज के चरणों में अर्पित करते आया है। वह कुछ पाने के लिए नहीं वरन् देने के लिए इस क्षेत्र में आता है। बड़े से बड़े सत्ताधारी और धनी को भी देने के लिए उसके पास कुछ है, यह गर्व ही उसे लिखने और जीने की प्रेरणा देता रहा है।

ज्यों-ज्यों आदमी लिखता जाता है त्यों-त्यों नितान्त अकेला होता जाता है। अकेलापन ही उसे कचोटते हुए अधिक से अधिक लिखने और अधिक से अधिक आदमियों से आत्मसात होने को बाध्य करता है। ऐसे बियावान मरुस्थल में आने वाले पत्र यदि उसके लिए स्वाति की बूंद की तरह प्राणदायक हो उठें तो इसमें क्या आश्चर्य? कारण वह अच्छी तरह जानता है।

"रचना क्या है,
अपने ही द्वारा कुरेदे गये दर्द को,
सहलाने की एक मीठी प्रक्रिया।"

और

"लिखना क्या है ?
अपने आपको दु:खी करने का
एक सुखद एहसास।"

इस अपने-आपको दु:खी करने के सुखद एहसास में से ही, उसकी रचना-यात्रा गन्तव्य तक बढ़ी चली जाती है।

अभी तक एक व्यक्ति द्वारा अनेकों व्यक्तियों को लिखे गये अनेक पत्र संग्रह सामने आये हैं। लेकिन एक व्यक्ति को केन्द्र में लेकर (वह कोई भी हो सकता है) अनेक व्यक्तियों द्वारा लिखे गये पत्रों को आपके हाथों सौंपते हुए मैं अपने बढ़ते हुए परिवार पर गर्व और सुख का अनुभव कर रहा हूँ।

'साहित्य-कुटीर' —रामनारायण उपाध्याय
ब्राह्मणपुरी, खण्डवा (म० प्र०)

विषय-क्रम

वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय

प्रिय श्री रामनारायणजी,

निमाड़ी लोक साहित्य पर आपका लेख पढ़कर बहुत ही प्रसन्नता हुई। निमाड़ी गणगौर का गीत 'शुक्र को तारो रे ईश्वर उगी रह्यो' अकेला लाख गीतों के बराबर है। उसकी विराट कल्पना देखकर मैं स्तब्ध रह गया। आकाश, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, शुक्र, मेघ, विद्युत—भारतीय आकाश के इन चिरन्तन उपकरणों से लोकगीत की भावात्मा का शृङ्गार हुआ है जो साहित्य में भी कहीं-कहीं देखने में आता है। सचमुच यह निमाड़ी गीत, गीतों का राजा है। कृपया इसके पूरे बोल लिखकर भेजिये। 'जनपद' पत्र में प्रकाशित करूंगा। आपके कार्य की वृद्धि चाहता हूँ।

शुभेच्छु

३०-११-५२ वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय, वसन्त पंचमी

प्रिय श्री रामनारायणजी,

आपका ६-१२-५२ का पत्र मेरे सामने है। निमाड़ी लोक गीत पुस्तक बहुत रुचि से पढ़ गया। उसके कुछ गीत, जैसे 'स्वप्न' भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल हीरे हैं। मैं इन गीतों के भाव से बहुत प्रभावित हुआ। पुस्तक की आलोचना परसों मैंने लिखवा दी है। वह 'जनपद' में प्रकाशित होगी। आशा है आपका लोकसाहित्य का संग्रह वर्धनशील है। क्या निमाड़ी लोकोक्तियाँ और धातु पाठ का भी संग्रह किया है ?

शुभेच्छु

२०-१-५३ वासुदेवशरण

वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय

प्रिय श्री रामनारायणजी,

निमाड़ी लोक साहित्य पर आपका लेख पढ़कर बहुत ही प्रसन्नता हुई। निमाड़ी गणगौर का गीत 'शुक्र को तारो रे ईश्वर उगी रह्यो' अकेला लाख गीतों के बराबर है। उसकी विराट कल्पना देखकर मैं स्तब्ध रह गया। आकाश, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, शुक्र, मेघ, विद्युत—भारतीय आकाश के इन चिरन्तन उपकरणों से लोकगीत की भावात्मा का शृङ्गार हुआ है जो साहित्य में भी कहीं-कहीं देखने में आता है। सचमुच यह निमाड़ी गीत, गीतों का राजा है। कृपया इसके पूरे बोल लिखकर भेजिये। 'जनपद' पत्र में प्रकाशित करूंगा। आपके कार्य की वृद्धि चाहता हूँ।

शुभेच्छु

३०-११-५२ वासुदेवशरण अग्रवाल

काशी विश्वविद्यालय, वसन्त पंचमी

प्रिय श्री रामनारायणजी,

आपका ६-१२-५२ का पत्र मेरे सामने है। निमाड़ी लोक गीत पुस्तक बहुत रुचि से पढ़ गया। उसके कुछ गीत, जैसे 'स्वप्न' भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल हीरे हैं। मैं इन गीतों के भाव से बहुत प्रभावित हुआ। पुस्तक की आलोचना परसों मैंने लिखवा दी है। वह 'जनपद' में प्रकाशित होगी। आशा है आपका लोकसाहित्य का संग्रह वर्धनशील है। क्या निमाड़ी लोकोक्तियाँ और धातु पाठ का भी संग्रह किया है?

शुभेच्छु

२०-१-५३ वासुदेवशरण

काशी विश्वविद्यालय

प्रिय श्री रामनारायणजी,

'अनजाने-जाने-पहिचाने' लेख संग्रह मिला। साहित्य के क्षेत्र में आपकी क्रमिक प्रगति देखकर संतोष हुआ। भूमि काम दुधा धेनु है। उससे जीवन के लिए अमृत साहित्य पय का जितना दोहन आप कर सकेंगे उतना ही कल्याण होगा।

शुभेच्छु

२६-६-५३ वासुदेव शरण

'डेंडू' को संस्कृत में 'दुंडुमक' कहते हैं। निमाड़ी में इसका चलन जानकर प्रसन्नता हुई।

काशी विश्वविद्यालय

प्रिय श्री रामनारायणजी,

७-७-५४ का पत्र मिला। आपकी भेजी दोनों कहानियाँ पढ़ीं। अच्छी लगीं। 'वीरपस' शब्द का ठीक अर्थ क्या है ? इसमें पहला 'वीर' शब्द तो भाई का पर्याय है 'पस' का अर्थ अभी मेरी समझ में नहीं आया। हलछठ की कथा में दो बात महत्वपूर्ण हैं। एक तो छठी देवी का उल्लेख जो मध्य-कालीन साहित्य और लेखों में बराबर मिलता है, दूसरे बच्चे के जन्म से ब्याह तक माँ द्वारा बच्चे की मृत्यु का क्षण टालने की युक्ति। इसी से मिलता जुलता अभिप्राय शुनः शेष अख्यान में हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहित के सम्बन्ध में अपनाया था। 'जनपद' का पाँचवाँ एवं छठा अंक साथ ही सितम्बर तक प्रकाशित होगा।

आपका

१०-७-५४ वासुदेव शरण

राहुल सांस्कृत्यायन

मसूरी

प्रिय उपाध्यायजी,

लेख की कटिंग्स मिलीं। धन्यवाद। निमाड़ी लोकगीतों और लोक कथाओं को बड़े परिमाण में जमा करने की आवश्यकता है। यह कर्त्तव्य

नेमाड़ वासियों का है। दो चार गीतों, लोककथाओं से पिंड छुड़ा लेना ठीक नहीं। वृहत् संग्रह छपेगा कैसे ? इसकी पर्वाह न करके 'कर्मण्येवाधिकारस्ते, उल्पस्पने तु ममको हि समान धर्मा" लेकिन यहां जन साहित्य में एक व्यक्ति नहीं सारी पीढ़ियाँ सहायक होंगी।

आपका

२०-११-५२ राहुल सांकृत्यायन

हैपीवेली, मसूरी

प्रिय उपाध्यायजी,

'अनजाने-जाने-पहिचाने' अभी अभी मिली। 'निमाड़ी' पहिले मिल चुकी थी। आपके रेखाचित्र बड़े हृदयस्पर्शी हैं। बढ़ते जाइये, अनजाने क्षेत्र में कूदने के लिए तैयार रहिये, 'बोलता हिन्दुस्तान' भेज दीजिये, किन्तु कुछ लिखने में देर होगी।

आपका

३०-६-५३ राहुल सांकृत्यायन

हार्नक्लिफ हैपीवेली, मसूरी

प्रिय उपाध्यायजी,

आपकी चिट्ठी का उत्तर देर से दे रहा हूँ। क्योंकि मैं बाहर था। निमाड़ी लोक गीतों और कथाओं का संग्रह करके आप बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रकाशक जल्दी तैयार नहीं होते, यह अफसोस की बात है। लेकिन प्रकाशक मिलेंगे ही।

आपका

३०-१-५६ राहुल

मसूरी

प्रिय उपाध्यायजी,

'जब निमाड़ गाता है' मिला। आपने सुन्दर गीतों को एकत्रित किया। निमाड़ी लोक साहित्य आपके परिश्रम का आभारी रहेगा। मैं सितम्बर के प्रथम सप्ताह में लंका के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ।

आपका

२०-७-५९ राहुल

हजारीप्रसाद द्विवेदी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रिय भाई,

आपका कृपा पत्र मिला। मेरे सम्बन्ध में आपने जरूरत से ज्यादा ऊँची धारणा बना ली है। आपके पत्र से मुझे यह आनन्द तो मिला कि मेरे लेखों से सहृदयों का मनोरंजन हो जाता है, पर उससे अधिक मेरा प्राप्य नहीं है।

आप निमाड़ी गीतों का संग्रह अवश्य भेजें। कुछ 'जनपद' के लिए भी भेज सकें तो कृपा हो। आपको शायद पता हो कि हाथरस सम्मेलन का प्रयत्न एक त्रैमासिक पत्र के रूप में प्रकट हुआ है। 'जनपद' वही त्रैमासिक है।

आशा है प्रसन्न हैं।

आपका

३०-१-५३ हजारी प्रसाद द्विवेदी

काशी विश्वविद्यालय

प्रिय उपाध्यायजी,

आपकी 'गरीब और अमीर पुस्तकें' पढ़ गया हूं। बहुत सुन्दर व्यंग्य है। आपने अपनी छोटी लेकिन आकर्षक भूमिका में लिखा है, 'पढ़ेंगे तो अफसोस नहीं महसूस करेंगे,' पढ़कर अफसोस तो होता ही नहीं, आनन्द होता है और प्रेरणा भी मिलती है। आपके रूपक भी बड़े सुन्दर उतरे हैं। कैसी सहज, सरल, प्रसन्न शैली है आपकी। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें।

आपका

२२-७-५८ हजारी प्रसाद द्विवेदी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

प्रिय उपाध्यायजी,

नमस्कार।

कृपा पत्र मिला। 'जब निमाड़ गाता है' की एक प्रति भी मिली।

पुस्तक पढ़ गया हूँ। बहुत सुन्दर है। आपने निमाड़ जनपद का हृत्स्पंदन प्रत्यक्ष कराया है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें। आशा है, प्रसन्न हैं।

आपका
२-१०-५८ हजारी प्रसाद द्विवेदी

चन्डीगढ़

प्रिय उपाध्यायजी,

आपकी पुस्तक 'संत सिंगाजी, एक अध्ययन' मिल गई है। बहुत अच्छी लगी है। आपने संत सिंगाजी का परिचय हिन्दी साहित्य को देकर बड़ा अच्छा काम किया है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें।

आपका
२-७-६५ हजारी प्रसाद द्विवेदी

वाराणसी

प्रिय उपाध्याय जी,

आपका कृपा पत्र और नई पुस्तक 'हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़िया' दोनों ही मिल गई हैं। अत्यन्त आभारी हूँ। पुस्तक में अभी एक दो ही निबंध पढ़ पाया हूँ, उसीसे मन प्रसन्न हो गया है। बाद में पूरी पुस्तक पढ़कर लिखूंगा, लेकिन जितना पढ़ा है उसीसे बड़ी प्रसन्नता हुई है। 'ये दुःख किसी से न कहना' बड़ा मार्मिक लगा। अभी तो इतना ही पढ़ पाया हूँ। इधर कुछ थोड़ी मानसिक परेशानियों से गुजर रहा था, इसीसे नहीं पढ़ पाया। अवसर मिलते ही पढ़ूंगा और आपको लिखूंगा।

आशा है आप स्वस्थ होंगे।

आपका
२२-४-७८ हजारी प्रसाद द्विवेदी

शान्तिप्रिय द्विवेदी

बनारस

प्रिय बन्धु,

आपकी पुस्तक 'अनजाने-जाने-पहिचाने' पढ़ गया। पढ़कर हृदय

अमृत सिक्त हो गया। बड़ी-बड़ी कहानियों की अपेक्षा इन छोटे-छोटे सरस सीधे स्वाभाविक लोकचित्रों में अन्तःकरण का दर्पण है। भाव, कर्म और वस्तु स्थिति का इनमें नैसर्गिक सामंजस्य है। जो इसे पढ़ेगा वह अपना जीवन सीपी के लिए स्वाति की बूंदें पा जाएगा। सर्वोदय की दिशा में यह पुस्तक एक दिव्य आलोक विकीर्ण करती है।

न केवल जीवन की दृष्टि से बल्कि लेखन कला की दृष्टि से भी इन छोटे-छोटे मार्मिक चित्रों में मौलिकता और नवीनता है। आप अपनी लेखनी का सदुपयोग कर रहे हैं। साधुवाद।

सस्नेह

१६-४-५३ शान्तिप्रिय द्विवेदी

वाराणसी

प्रिय बन्धु,

आपका सौहार्द्रपूर्ण पत्र मिला। हाँ, भीड़ का तो कोई मूल्य नहीं है, किन्तु साहित्यिकों और असाहित्यिकों के बीच में मैं सचमुच अनाथ और अकेला हूँ। वैसे दैवी संयोग से अन्तिम क्षणों में कौन सहायक हो जायगा, यह कल्पनातीत है।

पत्र पत्रिकाओं में आपके लेख बड़ी रुचि से पढ़ता हूँ। हम लोगों की आत्मा ग्रामीण एवं जीवन की सरलता की अनुरागिनी है। दोनों पुस्तकें मिल गयी हैं। सुविधानुसार पढ़ूंगा और अपनी सम्मति भेजूंगा। शरीर से बहुत लस्त-पस्त रहता हूँ। आंखों में मोतियाबिन्द हो गया है। देर-अबेर के लिए क्षमा कीजियेगा।

सस्नेह

आपका

२-१०-६६ शान्तिप्रिय द्विवेदी

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

विक्रम विश्वविद्यालय

सप्रेम प्रत्याभिवादन,

आपका २-१-७३ का पत्र मिला।

नये वर्ष को अब अपना मानते हुए आपकी सद्भावना के प्रति कृतज्ञ हूँ।

'वीणा' में तो मुझे 'संत' बना दिया गया। अच्छा हुआ कि घर बच्चों ने उसे पढ़ा नहीं अन्यथा घर से बाहर कर दिया जाता। राम राम। नारायण नारायण। बाल-बाल बच गया। नारद की भाँति 'वीणा' बजाता खंडवा पहुंच जाता।

क्या करूं हँसकर ही तो जीवन चलाया जा सकता है। आपको उससे सुख मिला और प्रसन्नता हुई तो अहोभाग्य है। यह शरीर किसी के लिए तो काम का निकल आया।

आपने बहुत ऊंचे चढ़ा दिया मुझे। भगवान से प्रार्थना है कि वह मुझे ऐसी सुबुद्धि दें कि आपकी इस भावना को अपने आचरण से कभी खंडित न होने दूं।

आशा है आप सपरिवार सानंद हैं।

स्नेही

७-१-७३ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सप्रेम नमोनमः

आपका २२-८-७३ का पत्र। बरसात में बाढ़ और लहर बहुत है। कोई डूबा तो नहीं आनन्द की लहर में।

आप जो प्रशस्ति कर रहे हैं सचमुच उसके योग्य होता तो क्या होता। मैं जी रहा हूँ आश्चर्य है। अब आपके द्वारा नई अचरज की बात सुनी कि तरुणाई को लज्जित करता जी रहा हूँ। बुड्ढ़ों से कोई लज्जित होता है भला, केशवदास के केश ही सफेद हो गये तो 'बाबा' सुनकर उन्हें धक्का लगा। तरुणाई बाबा कहे तो कहे, वाह-वाह कभी न कहेगी। अस्तु।

८ सितम्बर को मेरा कार्यकाल समाप्त हो रहा है इसलिए शीघ्रता कीजियेगा। आप प्रकाशित करते रहें और उधर मैं काशित (काशी में स्थित) हो जाऊं तब तो काम नहीं बनेगा।

सभी मित्रों से मेरा नमोनमः कह दें।

आशा है आप सानंद हैं।

स्नेह

२३-८-७३ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

वाणी-वितान भवन, ब्रह्मनाल, वाराणसी

सप्रेम नमन।

मैं ३० को वाराणसी पहुंचा। आपके द्वारा प्रदत्त दोनों पुस्तकें—'गरीब और अमीर पुस्तकें' एवं 'कुंकुम, कलश और आम्र पल्लव' ने यात्रा में पाशेय का काम किया। मैं तो समाधिस्थ सा उन्हीं के पढ़ने में लीन रहा, आँख खुली तो गन्तव्य पर पहुंचा पाया अपने को। आपने ऋषि की भांति जीवन के सत्य को इन पुस्तकों में देख लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि ही कृषि का कर्त्ता हो गया है। मैं 'गरीब' विद्या-धन पाकर 'अमीर' हो गया और 'कुंकुम' का तिलक लगाकर 'कलश' से जल-पान कर एवं 'आम्र पल्लव' से मार्जन कर पवित्र हो गया।

आशा है, सपरिवार सानंद हैं।

आपका

१-८-७५ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

वाणी-वितान भवन, ब्रह्मनाल, वाराणसी

प्रिय उपाध्याय जी,

सप्रेम नमो नमः।

'मृग छौने' चन्द्रमा से उतर कर पृथ्वी पर आ गए हैं फिर भूमि से उछल कर चन्द्रमा पर पहुंच गए हैं। ये दोनों कलाएँ जानते हैं अवरोहण की और आरोहण की। एक सांस में पढ़ गया। आपको बधाई और पुस्तक के लिए धन्यवाद।

आप तो घर बैठे ही कुबेर का खज़ाना ब्रह्मारती के माध्यम से भेज देते हैं। संपत्तिशाली और भाग्यशाली बना देते हैं। कृतज्ञ हूँ।

सबको यथा योग्य।

आशा है, सानंद हैं।

स्नेही

८-१-७६ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

वाणी-वितान ब्रह्मनाल, वाराणसी

प्रिय उपाध्यायजी,

नमस्कार।

आपकी 'जनम जनम के फेरे' पुस्तक मिली। आपकी सृष्टि सदैव नूतन होती रहती है। क्या कहूँ—

समुझब, लिखब, कहब तुम जोई।
सार तत्व जग, होइहि सोई॥

आपकी मेरे प्रति जो सहज अनुकम्पा है उसके लिए अनुग्रहित हूँ।

मैं जनवरी से ही पक्षाघात से पीड़ित रहा हूँ। अभी पूर्ण सुधार नहीं हुआ है। जाड़े में जाड्य बढ़ता ही है। चैतन्य दबता है। इसलिए निदाघ होने पर विशेष सुधार हो सकेगा।

आशा है सपरिवार सानंद है।

स्नेही

७-१२-८० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

सुमित्रानन्दन पंत

इलाहाबाद

प्रिय श्री उपाध्याय जी,

आपका कृपा पत्र और 'नवभारत' में आपका लेख पढ़ने को मिला। उसके लिए कृतज्ञ हूँ। आपने उसमें मेरे द्वारा एक अनाथ लड़की को गोद लेने की बात लिखी है। वह लड़की मेरे एक मित्र की है और मैंने बहुत आग्रह कर उसे पाया है। उनकी दृष्टि में आपका लेख पड़ेगा तो उन्हें दुःख होगा। हो सके तो उस भ्रम का शोधन कर दीजिएगा।

इधर मेरे नाक से खून निकलने के कारण बहुत दुर्बल हो गया हूँ। पर उपर्युक्त बात की ओर आपका ध्यान दिलाना आवश्यक था इसलिए लिख रहा हूँ।

आशा है सानंद हैं।

आपका

६-४-७६ सुमित्रानन्दन पंत

सच्चिदानन्द वात्स्यायन
२२३ एंड्रूज एवेन्यू ,नई दिल्ली

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। विद्यानिवास जी भी इस बीच तीन चार दिन के लिए आ गये थे।

आपकी लघु-रचनायें मैंने रख ली हैं। अगले अंक में जायेंगी।

लोक जीवन, संस्कृति में गहरा पैठकर उसके किसी पक्ष का उद्‌घाटन करने वाला लेख हो, लोक संस्कृति के ही भविष्य पर हो, पर हमारे जीवन में, उसके योग पर हो, या उसकी रक्षा की समस्या पर हो, तो फायदा रहेगा।

और भी सुना है, आपके पास पत्रों का संग्रह है। क्या उसमें से कहीं कुछ चुन कर प्रकाशनार्थ भेजे जा सकते हैं।

सस्नेह

आपका

१८-१-७४ वात्स्यायन

A/५ पश्चिमी निजामुद्दीन, नई दिल्ली

आपका पत्र मिला। कृत कृत्य अनुभव करता हूँ। आप जब भी स्मरण करते हैं एक स्निग्ध-स्पर्श सा छू जाता है और उसकी स्फूर्ति देर तक बनी रहती है······

न्यास की बात मैंने साहस (और श्रद्धा) के साथ कर तो दी है पर उसकी सफलता तो साहित्य जगत के सहयोग पर ही निर्भर है। यही मानता हूँ कि सबका सहयोग उन तथ्यों और आयोजनों को मिले जिसके लिए यह नींव की एक ईंट भर होगी·········

मुझे विरोध ही मिलता रहा है पर फिर भी थोड़े से आस्थावान और समानधर्मी लोगों के प्रोत्साहन के साथ कुछ न कुछ करता रह सका हूँ। यह कार्य कुछ अधिक बड़े पैमाने पर सोचा है और आशा करना चाहता हूँ कि

इसे सबका समर्थन मिलेगा, उनका भी जो मेरा समर्थन नहीं भी करना चाहते हैं। आगे देखें। रजिस्ट्री के लिए कागज तैयार हो गए हैं आशा कर रहा हूँ कि महिने के अंत तक रजिस्ट्री हो जाएगी। फिर आयकर मुक्ति की व्यवस्था करानी होगी। उसके बाद ही फिर विधिवत कार्य आरंभ होगा·········और तभी आशा है एक बार टोपी फैलाकर देश भर की यात्रा करना भी सार्थक होगा।

कृपा रखें।

आपका

५ फरवरी, ८० स० ही० वात्स्यायन

नई दिल्ली

प्रियवर,

आपके पत्र मिल गये। पुस्तकें भी मिल गई थी और मैंने तत्काल पढ़ भी डाली। यद्यपि आजकल आँखों के कष्ट के कारण पढ़ना कम करना पड़ा है।

मधुर व्यंग्य जो जाड़ों के घाम जैसा स्निग्ध, अपनेपन से भर जाए और सधा हुआ सूक्ष्म स्पर्श जो भाव को जगाये पर चौंकने न दे, दोनों ही प्रकार के निबन्धों का अपना-अपना मज़ा रहा।

बड़ी बात यह कि आप व्यंग्य को अधिक खिचने नहीं देते, बात कहां पूरी हो गई, यह जानते हैं और इसमें पाठक पर भी भरोसा रखते हैं। नहीं तो आजकल प्राय: अति कथन से ही निबन्ध बिगड़ जाते हैं।

यह कागज तो नये वर्ष की (अंग्रेजी की सही) शुभकामनाओं के लिए उठाया था। वर्ष आपके लिए मंगलमय और कृतित्व भरा हो। यही कामना है।

सप्रीति आपका

१-१-८१ वात्स्यायन 'अज्ञेय'

केवेन्टर्स ईस्ट, केवेन्टर लेन, सरदार पटेल मार्ग
नई दिल्ली ११००२१

प्रियवर उपाध्यायजी,

आपका पत्र मिला। आपका मेरे प्रति जो कृपा भाव है उसे आशीर्वाद रूप में ग्रहण करता हूँ, यद्यपि आप प्रशंसा में जो लिख देते हैं उससे बहुत संकोच भी होता है। सचमुच अपने युग के बड़े साहित्यकारों का व्यक्तिगत परिचय मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात रही। इन महान् व्यक्तित्वों की सूची में स्वयं राहुल जी भी हैं। उनके भी संस्मरण लिखे हैं, लेकिन वह अभी प्रकाशित नहीं हो रहे हैं। 'स्मृतिलेखा' पुस्तकाकार छप रही हैं, और नेशनल पब्लिशिंग हाउस से अक्टूबर में प्रकाशित हो जायेगी। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में संस्मरण संक्षिप्त रूप में ही छपे, पुस्तक में पूरे लेख होंगे। तैयार होने पर पुस्तक आप को भेजूंगा। आशा है आपको पसन्द आयेगी। थोड़ा अन्तराल देकर संस्मरणों की दूसरी शृङ्खला शुरू करूंगा। उसमें राहुल जी के संस्मरण भी होंगे।

आपकी दो पुस्तकें मिली थी। दोनों मैंने बड़ी रुचि के साथ पढ़ी। आपके निबन्ध मुझे बहुत अच्छे लगते हैं, छोटे और मानों अनियोजित जान पड़ने वाले निबन्ध, लेकिन एकाएक बारीक सूझ की बात कह जाते हैं जिन से मन चमत्कृत होकर रह जाता है। कभी-कभी आप की पुस्तकों के बारे में लिखने का मन होता है, लेकिन जब यह सोचता हूँ कि लेख छपाने के लिए कौन-कौन सी पत्रिकाएं उपलब्ध होंगी तो उत्साह ठंडा पड़ जाता है। फिर भी कभी लिखूंगा।

सस्नेह

आपका
सच्चिदानन्द वात्स्यायन

सितम्बर १६,१६८१

हरिवंशराय बच्चन

१३, विलिंगडन क्रिसेंट, नई दिल्ली

सम्मान्य बन्धु,

मेरा पिछला पत्र आपको मिल गया होगा। यह पत्र मैं आपकी पुस्तक

'गरीब और अमीर पुस्तकें' पढ़ने पर लिख रहा हूँ। आज शाम को ही मैंने उसे समाप्त किया।

व्यंग्य और रूपक दोनों में आपको सफलता प्राप्त हुई है। व्यंग्यों की शैली चुटीली है और रूपकों की मार्मिक। व्यंग्य निबन्धों में मुझे सबसे अच्छे लगे—'खाली लिफाफा और लिखा खत' और 'मेम्बर महिमा।' पहला बहुत कलापूर्ण है। अंतर्देशीय लिखते समय ही यह बात याद आयेगी कि यह खत और लिफाफे का समझौता है।

रूपकों में 'आलिंगन मग्ना;' और 'महुआ और पलाश' मुझे बहुत पसन्द आये। 'आलिंगन मग्ना' तो कविता ही है। 'महुआ और पलाश' दोनों मेरे कविता के विषय रह चुके हैं। 'महुआ के नीचे मोती झरे' (त्रिभंगिमा) और 'डालें पलाश की फूट पड़ीं,' 'प्रिय छूट गया धीरज मेरा' (मिलन यामिनी) आपके उस रूपक में मानों कई कथाओं का मज़ा जैसे साथ ही आ गया।

अपनी इस सशक्त रचना पर मेरी बधाई स्वीकार करें।

सादर

२३-३-६६ बच्चन

१३, विलिंगडन क्रिसेन्ट, नई दिल्ली

सम्मान्य बन्धु,

२-७-६६ के पत्र के लिए धन्यवाद। 'धुंधले कांच की दीवार' की प्रति के लिए हृदय से आभारी हूँ।

'जब निमाड़ गाता है' मैं पढ़ चुका हूँ। ग्राम गीत गाये जाने के लिए हैं। अवसर, परिवेश, रूप, ध्वनि सबके साथ उनका विभिन्न आकर्षण होता है। छापे में पढ़कर उनके पूरे माधुर्य का आनन्द नहीं लिया जा सकता। कभी टेलीविजन विकसित हो तो उनका महत्व पूरी तरह समझा जायेगा। फिर भी कल्पना का सहारा लेकर मैंने बहुत रस लिया। निमाड़ी कम समझ में आई। आपकी व्याख्या ही पर्याप्त प्रकाश डालती है। अग्रवाल जी ने जिस गीत की ओर ध्यान आकर्षित किया है, वह तो श्रेष्ठ है ही। विराट को इतनी सहजता से शायद ही कभी पकड़ा गया हो। बेहुला गाय का गीत भी बहुत मार्मिक है।

मेरे शृङ्गारी मन ने एक और गीत बहुत पसंद किया—'हे मृगनयनी।' उसमें प्रियतम प्रेयसी से एक-एक आभूषण उतारने को कहता है उसमें एक गहरे सांकेतिकता की शक्ति है। वसन आभूषण सबको तजकर सर्वथा पूर्ण-रूपेण नग्न प्रियतम से मिलना होगा। आभूषण दैहिक अहं के प्रतीक हैं।

इन तीन गीतों की स्मृति शायद ही कभी मेरे मन से जा सके। इतनी रसानुभूति कराने के लिए आपको बार-बार धन्यवाद। नई किताब यथा समय पढ़ूंगा। कश्मीर से गठिया का दर्द लेकर आया हूँ। आशा है स्वस्थ प्रसन्न होंगे। 'धर्मयुग' में आपके लेख देखता हूँ।

सादर

८-७-६६ बच्चन

१३ विलिंगडन क्रिसेंट, नई दिल्ली-११

सम्मान्य बन्धु,

पत्र के लिए धन्यवाद! 'धुंधले कांच की दीवार' मुझे समय से मिल गई थी और मैं उसे पूरी पढ़ भी चुका हूँ। अभी निमाड़ के गीतों का नशा पूरी तरह उतरा नहीं था कि आपकी यह दूसरी रचना मुझे पढ़ने को मिली।

पुस्तक उठाकर छोड़ना मुश्किल हो गया। बहुत बार तो जोरों की हँसी रोकना भी मुश्किल हो गया। अकेले में यह हँसी कौतूहल का विषय भी बनी। कहना पड़ा मैं अकेले कहाँ था? मैं एक ऐसे लेखक के साथ था जो आज के युग और जीवन पर स्वयं हँसता है और अपने पाठकों को भी हँसने पर मजबूर करता है। आपने आज के युग के खोखलेपन पर खुलकर व्यंग्य किया है। समाज पर, राजनीति पर, साहित्य पर भी। जो बात सबसे अधिक प्रभावित करती है, वह यह है, कि आपके व्यंग्य में कटुता का कोई भी आभास नहीं मिलता। व्यंग्य की यह सबसे बड़ी सफलता है। मेरी बधाई स्वीकार करें। मेरी शुभकामनाएं। आपकी लेखनी और तेज़ होती जाये।

आपके रूपक तो बड़े ही कवित्वपूर्ण बन पड़े हैं। हृदय से आप कवि ही हैं, बुद्धि से व्यंग्यकार। इन दोनों को एक साथ लेकर कैसे चलते हैं, मुझे आश्चर्य होता है।

शेष समाचार साधारण है। इधर गीता का मेरा एक अनुवाद 'नागर गीता' के नाम से निकला है। जन गीता से शायद आपका परिचय हो। एक ही गीता का दो रूपों में मैंने दो विभिन्न ग्रंथों में प्रस्तुत किया। कभी साथ पढ़ने पर शायद मेरे पाठकों को ऐसा अनुभव हो। कभी आपको देखने का अवसर मिले तो आपकी प्रतिक्रिया अवश्य चाहूंगा। आशा है आप स्वस्थ प्रसन्न हैं। मेरी शुभ कामनायें।

सस्नेह

२३-६-६६

बच्चन



बम्बई

सम्मान्य बन्धु,

कृपा पत्र पाकर अनुगृहित हुआ।

कुछ नहीं था।

आप लोगों की सहृदयता ने उसमें बहुत कुछ देख लिया।
मित्रों की सद्भावना जीवन-संबल बनी।
सत्ता की निरर्थकता ने सार्थकता का विश्वास पाया।
उसी विश्वास के सहारे सुख, दुःख संघर्षों का लम्बा जीवन कट गया।

कुछ खोज अब भी जारी है।
पर शब्द वहां काम नहीं देंगे।
इसी से मौन हो गया हूँ।
आपकी शुभकामना सदा चाहिए।

सादर

२४-३-७३

बच्चन

बम्बई

सम्मान्य बन्धु,

मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा। आज मैं आपकी सुन्दर कृति 'हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़िया' पढ़ गया।

बेटी की बिदा के कारुणिक पक्ष को लोक गीतों के माध्यम से उभार कर, आप सीता की व्यथा-कथा तक ले गये, और इतने सहज भाव से, ऐसी

मनोहर शैली में कि पुस्तक समाप्त हो गई और पता भी न चला।

इतनी मनोरंजक और भीगी कृति देने के लिए आपको बधाई और साधुवाद।

'मृगनैंनी' वाला निमाड़ी बोध गीत मुझे पहले भी बहुत भाया था। उसे फिर आपने याद किया, लोक गीतों की अभिव्यंजनायें चमत्कृत ही नहीं करती, हृदय को मथकर रख देती हैं।

'सौत का साल' से तात्पर्य शायद सौत के वर्ष से नहीं है। शायद सौत के दुख से है।

'साल तुम्हारी कौसिली भाई
कपट चतुर नहिं होई जनाई।' (मानस)

शेष सामान्य। शुभ कामनायें।

सादर

१०-४-७८ बच्चन

विद्यानिवास मिश्र

लखनऊ

प्रियवर,

आशंसासिक्त पत्र मिला। आभारी हूँ। निमाड़ी संग्रह की जरूर प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मैं १२-१३ सितम्बर तक संस्कृति के असिस्टैंट प्रोफेसर का पद ग्रहण करने गोरखपुर विश्वविद्यालय जा रहा हूँ। अतः पत्र व्यवहार के लिए विश्वविद्यालय का पता ही अब रहेगा।

मुझे संतोष है कि अपने एक सहधर्मी के हृदय को मैं छू सका! साहित्य का धर्म जोड़ना है, यदि एक व्यक्ति भी जोड़ सका तो मैं कृत कृत्य हूँ।

लोक साहित्य की दिशा में इधर कुछ प्रयत्न आरंभ किया है। आपका सहयोग चाहूँगा। आपकी पुस्तक मिलने पर मैं ब्यौरा भेजूंगा क्योंकि पुस्तक से आपकी दिशा का संकेत मुझे मिलेगा।

सस्नेह,

४-९-५७ विद्यानिवास मिश्र

गोरखपुर

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। 'तुम चन्दन हम पानी' के बाद 'फूलपत्ती' की तैयारी कर रहा हूँ। कब छप जायेगी, कह नहीं सकता, पर उम्मीद है कि शीघ्र छापेखाने का मुँह देखना उसे नसीब होगा। मैं इधर कुछ फिर विमनस्क होने लगा हूँ। पता नहीं क्यों विंध्य का प्रवास कुछ मामलों में तापकर होते हुये भी बड़ा परिणाम रमणीय था। मुझे रह-रह कर वह भूमि बुलाती है। गर्मी की छुट्टियों में उधर घूमने का इरादा है। आप जैसे इनगिने सुधी मित्र मेरे जैसे अत्यन्त आलसी और एकान्तप्रिय जन की याद कर लेते हैं, इसे बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूँ। मेरी लेखनी को इससे अधिक की चाहना नहीं है क्योंकि युग प्रवर्तन के रथ का भार इन कन्धों पर नहीं है।

सस्नेह

२३-४-५८ विद्यानिवास मिश्र

सूरतसदन लहलायपुर, गोरखपुर

प्रिय भाई,

आपकी अहैतुक प्रीति मेरे लिए बहुत बड़ी संजीवनी है, और झूठ नहीं कहता निबन्ध लिखते रहने का उत्साह जो अभी मर नहीं पा रहा है, उसका श्रेय-कुश्रेय आप जैसे इने गिने सहृदयों को है। कोई उस जन्म का सम्बन्ध है, या जंगलीपन का नाता है। एक छोटा सा पत्र और इकाई में लिखा है, उसकी प्रतिलिपि भेजूंगा। निबन्ध संग्रह 'आँगन का पंछी और बनजारा मन' अब छपने जा रहा है भारतीय ज्ञानपीठ से।

आप अपनी हाल की कृतियों एवं संकल्पों से सूचित करें।

सस्नेह

२१-३-६० विद्यानिवास मिश्र

गोरखपुर

प्रियवर,

आपकी दीपावली शुभकामना आशंसा के साथ प्राप्त हुई। आप जैसे

कुछ इने गिने पाठकों को पाकर ही अपने कृतित्व को सार्थक मानता हूँ। नहीं तो लगता है, मैं बिलकुल अकेले खड़ा हूँ। ठगा-सा लूटा-सा। पुराने लोग मेरी भाषा नहीं जानते, नये लोग मेरे भाव नहीं जानते। ऐसी सन्धि रेखा पर खड़ा हूँ जहां प्रकाश पाना ही कठिन है।

मेरे एक इलाहाबादी मित्र ने घोषित कर दिया है कि ललित निबन्ध का माध्यम ही चुक गया है।

लीजिए, न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।

एक सुख है कि तगादगीर लोगों को जवाब देने के लिए एक नारा मिल गया।

आशा है आप स्वस्थ्य एवं प्रसन्न हैं।

सस्नेह

२१-११-६३ विद्यानिवास मिश्र

गोरखपुर

प्रियवर,

पत्रोत्तर शीघ्र न भेज सका, क्षमा करें। आप जैसे एकनिष्ठ और सहस-धर्मा लोक साहित्य के अनुशीलकों पर ही लोक संस्कृति के माधुर्य की रक्षा और अभिवृद्धि निर्भर है। पुस्तक आपकी बहुत स्वस्थ चित्र प्रस्तुत करती है बिना किसी लाग-लपेट के।

मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकारें।

सस्नेह

२१-१०-६४ विद्यानिवास मिश्र

सियेटेल (अमेरिका)

प्रियवर,

काफी लम्बे अर्से के बाद पत्र लिख रहा हूँ। जाने कितने युग से एक अभिशाप में जल रहा हूँ। केवल आर्थिक विवशता के कारण यहाँ आना पड़ा, एकदम विराने वातावरण में, रोशनी के भयावह जंगल में। पर मेरे ध्यान में हमेशा गँवई-गाँव का आदमी रहा है। और उस आदमी की एक ओजस्वी प्रतिमा आप में भी है। इसलिए आप भी बराबर ध्यान में

रहे। हिन्दुस्तान में बहुत कम लोगों से सही आशंसा या अभिज्ञान मिला, उन लोगों में आप सबसे ज्यादा अहैतुक स्नेही हैं और इसीलिए मैं हृदय से कृतज्ञ भी हूँ, भेंट हम लोगों की बस दादा के अभिनंदन के हुजूम में हुई। पर शायद यह भेंट केवल औपचारिक की असली भेंट तो पहले ही हो चुकी थी।

इस बीच एक अच्छा समाचार मिला संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी ने मुझे प्रोफेसर पद के लिए निमन्त्रित किया है। पर उन लोगों ने घोड़ा के आगे काठ धर दिया है। जल्दी ज्वाइन कीजिए। अब मैं जितनी अवधि के लिए वचनबद्ध हूँ। (मई ६८ तक के लिए) तब तक तो रहना ही पड़ेगा। लिखा है, देखें जिद पर लोग रहते हैं या मुझे स्वदेश वापस आने का सुअवसर प्रदान करते हैं।

इस बीच दो-तीन खुरापात के कार्यों में लग गया हूँ। एक तो 'दिनमान' में आप भाषा स्तंभ के अन्तर्गत देख ही रहे होंगे। पर मेरा सपना है हिन्दी की सभी बोली-क्षेत्रों से शब्द संग्रह करके एक कोश तैयार करने का। आप अपने क्षेत्र के लिए मदद करेंगे। बुन्देली और बघेली के लिए तो अपने पास मित्र हैं। राजस्थानी, कौरवी (मेरठ की बोली) और गढ़वाली के लिए व्यक्ति ढूंढ़ना है।

दूसरा काम है वैदिक संस्कृत साहित्य से लेकर अपभ्रंश काव्य का अंग्रेजी पद्यान्तर। मेरे मित्र लेनार्ड नेयन जिन्होंने 'मार्डन हिन्दी पोएट्री' में सबसे ज्यादा सहयोग दिया था, फिर साथ हैं। लगभग २००० काव्य पंक्तियों का अनुवाद तो हम लोग कर चुके, १००० काव्य पंक्तियों का और करना है। पर यह कार्य इस महीने के अन्त तक पूरा हो जाएगा तीसरा काम अभी शुरू नहीं किया पर इंडियाना यूनिवर्सिटी का आग्रह है उसे भी कर डालूं। वह है आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का अनुवाद। दादा तक मेरा प्रणाम पहुंचायें। अपना और परिवार का समाचार दें।

सस्नेह

८-१२-६७

विद्यानिवास मिश्र

सियेटेल (अमेरिका)

प्रियवर उपाध्यायजी,

कल मकर संक्रान्ति थी, खंडवा उत्सव से जगमगा रहा होगा, मेरा जन्म दिन भी था, यहाँ वर्षा की झड़ी लगी हुई थी, आसमान भयंकर मट-मैला था। खिड़की से गिरीमाला की धूमिल रेखा दिख रही थी।

आपका स्नेहासिक्त पत्र यथासमय मिल गया था, श्रीकान्त का पत्र तीन चार दिन बाद मिला। दोनों को एक साथ लिख रहा हूँ मैं २० दिन बर्कले रहा और वहीं प्राचीन भारतीय कविता का अनुवाद पूरा किया, वहीं एक और खुरापात दिमाग में आया कि हिन्दी की लोकगेय काव्य परम्परा के उत्कृष्टतम अंशो का भी अंग्रेजी पद्यान्तर प्रस्तुत किया जाय। मेरे उत्साही कवि मित्र ने इसका हार्दिक समर्थन किया और योजनाबाज़ दिमाग में एक और पुस्तक भूत की तरह सवार हो गई, पर इस पर काम वहीं आकर शुरू करूँगा। आप जैसे समानधर्मा से सहयोग तो मिलेगा ही। अब तो प्रायः निश्चित है कि मई तक भारत लौट रहा हूँ। किसी न किसी काम से खंडवा एक बार और आना चाहूंगा, विशेष रूप से मान्धाता और ओंकारेश्वर के लिए और निमाड़ी आँचल के गीतों के लिए। ईश्वर सुयोग देगा तो कभी वर्षा ऋतु में।

आपका स्नेहासिक्त पत्र बड़ा तृप्तिदायक था। मैं गँवई-गाँव का आदमी हूँ जहाँ-कहीं उच्छल स्नेह और निर्व्याज सत्कार मिलता है उसे घर मान लेता हूँ। हिन्दुस्तान में कई घर हैं जिनमें एक घर मैं जानता हूँ खंडवा में भी है।

पूरे परिवार के लिए शुभेच्छा सहित।

सस्नेह

१५-१-६८ विद्यानिवास मिश्र

सियेटेल

प्रियवर

६-३ का पत्र यथा समय मिला, पर पिछले डेढ़ महीने से प्रायः अस्वस्थ ही रहा, अस्पताल-सेवन का भी योग पूरा किया। अब तबियत

काफी संभल गयी है, पर तो भी कुछ खुमार बाकी है।

दादा के स्वर्गवास का समाचार मैं अस्पताल में था तभी मिला था। एक युग उनके साथ चला गया, दीप्ति, मस्ती, उदारता और साधना का। मैं संस्मरण तो नहीं पर अपने विविध प्रवासों के उपर आधारित एक पुस्तक जरूर लिखना चाहता हूँ, कुछ नक्शा मन में बना है पर पोथी लिखी जावेगी स्वदेश में ही।

यहाँ काव्यानुवाद के अलावा कुछ खास लिखा नहीं। लिखने को जैसे यहाँ मन नहीं करता। 'धर्मयुग' में एक निबन्ध करीब अप्रैल तक आयेगा, तबियत से बस एक ही चीज लिखी थी। इधर एक महीने से तो कुछ लिखने की स्थिति में था ही नहीं।

अब मैं ३० अप्रैल तक ही स्वदेश वापस आ रहा हूँ। वात्स्यायनजी के बारे में आपके मत से सन्तोष हुआ।

आप पूछते हैं कि इतना समीप क्यों आपको पाता हूँ। बहुत ही स्पष्ट है, हम दोनों हृदय से गँवई गाँव के आदमी है। मैं शहरों में रम नहीं पाता, हालांकि नियति शहरों से जोड़े हुए है।

परिवार के लोगों तक मेरा प्रणामाशीष यथायोग्य प्राप्त हो। कभी जुलाई में मुझे पूना आना होगा, तब खण्डवा एक-दिन के लिए उतरूंगा।

सस्नेह

१८-३-६८ विद्यानिवास

वाराणसी

प्रियवर

कितने दिनों में लिखने की सोच रहा हूँ पर फागुन चढ़ने पर ही सुधि आ पाई। इसलिए बसन्त की बधाई स्वीकार करें। मेरा नवीन निबन्ध संग्रह 'बसन्त आ गया, पर कोई उत्कण्ठा नहीं' शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। प्रकाशित होते ही आपके पास भेजूंगा।

आपकी कलम बहुत सधी हुई है और बड़ी निर्भीक है। उसकी चोट बड़ी सीधी है। मुझे बहुत रश्क होता है कि आप कैसे इतना लिख पाते हैं। मुझे तो ऐसे लगता है कि सजग रहना बहुत बड़ा अभिशाप है। जो

सजग है, वह निपट अकेलेपन की व्यथा झेलने के लिए अभिशप्त है पर आप झेलने में समर्थ हैं। क्योंकि आप निर्व्याज भाव से चोट करने में माहिर हैं। साथ का पत्र श्रीकान्त जोशी को दें और भरे फागुन की बधाई लें। चुनाव की कीच-कांदों के बीच धूसर विंध्याटवी के टेसू जैसे खिल रहे होंगे, बिलकुल उन्मन पर बिलकुल बेपरवाह, उसी तरह की फागुनी बधाई।

सस्नेह

२५-१-७२ विद्यानिवास मिश्र

वाराणसी

प्रियवर,

'प्रतीक' निकलना शुरू हुआ है। अपनी ओर से तथा श्री वात्स्यायन जी की ओर से अनुरोध कर रहा हूँ कि मालवी निमाड़ी लोक जीवन पर एक लेख प्रतीक के लिए शीघ्र निम्न पते पर भेज दें।

श्री स० ही० वात्स्यायन संपादक 'प्रतीक'

ए/३-५ बसंत विहार, नई दिल्ली-५७

अथवा लोक गीतों के सौंदर्य विधान पर लेख भेज दें।

मेरा निबन्ध संग्रह 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीघ्र ही प्रेस में आयेगा। छपने पर भेजूंगा। और विशेष क्या बस दिन कट रहे हैं।

मन निरंतर मुर्दारिसी से भागकर विजन में अभिसार के लिए दौड़ता है। पर विजन ही नहीं मिल पाता। विजनेश्वरी कहाँ से मिले!

सस्नेह

१७-१२-७५ विद्यानिवास मिश्र

वाराणसी

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। पुस्तक भी। मैं आज ही दिल्ली से लौटा और पढ़ते पढ़ते 'मन के मृगछौने' मन हर ले गये।

आप सहज जीवन जी लेते हैं। यही अपने आप में अद्वितीय उपलब्धि

है। फिर उसे लेखनी की नोंक पर उतार भी लेते हैं, यह तो बहुतों के लिए स्पृहणीय है।

सस्नेह
१०-१०-७६ विद्यानिवास मिश्र

वाराणसी

प्रियवर,

खण्डवा-यात्रा कष्टकर रही और आने पर आवास से ज्वर में पड़ गया। आपके साथ रहने का सुख न मिला होता और वहां रहकर यह प्रेरणा न मिली होती कि अत्यन्त सीमित साधनों के सहारे बिना नौकरी-चाकरी किये साहित्य सेवा, विनम्र और प्रभावी ढंग से की जा सकती है तो सचमुच हृदय में अनुताप होता। मैंने सोचा यह कष्ट और यह अनुताप एक सुखद और प्रेरक अनुभव की कुछ अधिक कीमत नहीं है। आपकी एकनिष्ठ साहित्य सेवा से स्पृहा करता हूँ और मन होता है नौकरी छोड़ कर गाँव चला जाऊं। आप तो खेतीहरों के साहित्यकार हैं, खेतीहर नहीं, पर मैं खेतीहर भी हूँ। प्रक्रिया की सैद्धान्तिक और प्रायोगिक जानकारी रखता हूँ। पर डर यही लगता है कि खेती ही कहीं सिर पर न सवार हो जाय और अपना स्वधर्म दब जाय।

आशा है अभिनन्दन समारोह हार्दिकता के साथ सम्पन्न हो गया होगा।

सस्नेह
१८-११-७६ विद्यानिवास मिश्र

बी-२६ कमला नगर, आगरा-५

प्रियवर,

आपका १२-११ का स्नेहसिक पत्र मिला। मैंने बिना किसी जुनून के असर के यहीं क० म० विद्यापीठ में निदेशक पद का कार्यभार सितम्बर

में संभाल लिया। विद्ध होने के लिए मत्स्य की तरह ऊपर टंगा हुआ हूँ। आपको मेरे विचार छू सके, बहुत बड़ी कीमत पा गया। मैंने अपना एक काव्य संग्रह 'पानी की पुकार' छपने को दिया है, छप जाय तो भेजूंगा।

सस्नेह

१४-११-७७ विद्यानिवास मिश्र

आगरा

प्रियवर,

नये संवत्सर की बधाई।

गोरे वसन्त की मिताई में, पति तमाल ने मदन के मोहन की मोहक छवि पायी है, नयी वर्ष-वधु का देवर लगूं, लालसा में बूढ़े बोधिवृक्ष में भी लाली लस आई है। अनार कचनार जैसे मूड्ढ़ों ने कर पिचकारी गही, टेसू ने पगलाकर पात में ही होली जलाई है। गांव दरवाजे के नीम ने नंगे हो किन ललकारा है।

बीते का हिसाब नहीं, आये को कैसी बधाई है! नीम तो पागल है, उसकी बात जाने दें। नयी चेतना, नयी संवेदना नये वर्ष में आपको ही।

'हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़िया' पढ़ गया। 'राम जन मानस में' शीर्षक से मैं भी एक पुस्तक लिख रहा हूँ। निमाड़ी लोक गीतों में रामकथा से सम्बद्ध कुछ मार्मिक प्रसंग सानुवाद भेजने की कृपा करें। मुझे ऐसा लगता है लोक मानस को राम से अधिक सीता की चिन्ता है।

सस्नेह

११-४-७९ विद्यानिवास मिश्र

आगरा

प्रियवर,

आपकी दोनों पुस्तकें नहीं मिलीं। मिलते ही प्रेमपूर्वक पढ़ूंगा। इधर शरीर काफी बागी होता जा रहा है। काम भी बढ़ता ही जा रहा है।

मैं स्वयं नहीं जानता मैं क्यों और कैसे लिखता हूँ। शायद ही मैंने

कभी अपनी आलोचना की चिंता की हो। पाठकों के पत्र जरूर कहते हैं—लिखो। और भी बहुत सारे अदृश्य परिवेश हैं वो कहते हैं—लिखो। मैं लिखते समय सोचता हूँ, मैं लिख नहीं रहा हूँ, एक आहुति से बच रहा हूँ। एक विकल्प ढूंढ़ रहा हूँ। मृत्यु का। आज के मूल्यहीन वातावरण में किसी मूल्य की बात करना बड़ा कठिन है।

आप तो रमे हुए हैं। मैं उदास व्यक्ति हूँ। आपकी हुलास से स्पृहा होती है।

सस्नेह

२१-११-८० विद्यानिवास मिश्र

आगरा

प्रियवर,

पत्र मिला। "बक्शीशनामा" मिल गई थी। आप सहज गद्य के धनी व्यक्ति हैं। सहजता है बहुत कठिन, बड़ी मुश्किल से सधती है। पर आपने उसे साध लिया है। सहज होकर ही इतना प्रखर और अहिंसक व्यंग्य किया जा सकता है।

३-१-८२ विद्यानिवास मिश्र

आगरा

प्रियवर,

पत्र मिला। आप इतने भावुक होकर लिखते हैं कि अचरज होता है कि मिट्टी में कितनी सौंधी उसाँस अभी बाकी है।

दादाजी पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी को पत्र लिख दूंगा।

इस जन्म में न पुरस्कार चाहता हूँ न सम्मान। केवल सहज लोगों का स्नेह चाहता हूँ वही मेरी मजूरी है। उस दयनीयता से भगवान बचाये रखे जो अभिनन्दित होते समय या उसकी आशा में व्यक्ति में आ जाती है।

जो स्नेह देता है वह शब्दों का प्रयोग एक तो कर नहीं पाता, करता भी है तो अपनी बात करता है। वह अच्छी लगती है।

१३-५-८२ विद्यानिवास मिश्र

शिवमंगलसिंह सुमन

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

आदरणीय भाई,

आपका १२-७-७७ का पत्र आज ही प्राप्त हुआ—सावन की झीनी फुहार सा। बड़ा आनन्द आया। आपकी रचनाएं पाठ्यपुस्तक निगम के लिए गौरव का विषय है। आप जैसे एकांतिक साधक को विज्ञापन की कूटनीति से दूर रहना चाहिए। साधना तो कभी न कभी बोलती ही है। अतएव आपके निबन्ध पर सभी सदस्य स्फुरित हो उठे। मेरी अनुशंसा तो बहाना मात्र थी। मैं भी लालायित हूँ मिलने को। संभव है निकट भविष्य में कोई सुयोग मिल सके।

सस्नेह

आपका

२०-६-१९७७ शिवमंगलसिंह 'सुमन'

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका स्नेहासिक्त सहज आत्मीयतापूर्ण पत्र प्राप्त कर कृतकृत्य हुआ। मैं स्वयं वह वार्ता नहीं सुन पाया, इसलिए उसके संपादन कौशल से अनभिज्ञ हूँ। लगभग ६० मिनट की वार्ता, काँट-छाँट कर उन्होंने ४० मिनट की बनाई। आपने प्रशंसा की तो मैं भी प्रसन्न हुआ। एक साधक का सौहार्द स्वयं में ही बहुमूल्य होता है। आपका उल्लेख तो अप्रयास हो जाता है। उसमें आपके प्रति किसी प्रकार की अहसान की भावना नहीं है। आपकी साधना ने निर्माण प्रदेश में 'सिंगाजी' की तपस्या को मूर्तिमान कर दिया है। हमी नहीं, हमारा प्रदेश उपकृत है, वैसे तो आप प्रांत की नहीं, राष्ट्र की विभूति हैं। श्यामपरमार स्मृति, समारोह में तो आपका ठहाका सुनने को मिलेगा ही।

अस्तु प्रतीक्षा में—नववर्ष की मंगल कामना सहित।

आपका सदाका

१४-९-१९७९ शिवमंगल सिंह 'सुमन'

उज्जैन

प्रिय उपाध्यायजी,

दीपावली के अवसर पर आप जैसे सुहृद की मंगल कामना प्राप्त कर पुलकित हुआ। इस सहज आत्मीयता के प्रति शब्दों में तो आभार व्यक्त नहीं किया जा सकता। मालूम पड़ता है मेरा आपका कोई पुरातन आध्यात्मिक संबंध है। इसके भी पूर्व संस्कृति-मंडल के सलाहकार-मंडल का सदस्य होने पर आपकी बधाई प्राप्त हुई थी। आपके बिना तो मैं इन मडलों को पूर्ण मानता ही नहीं हूँ पर मुझसे बाद में बतलाया गया कि लोक साहित्य और कला के सम्बन्ध में भी एक स्वतंत्र मंडल का गठन किया जा रहा है जिसकी आत्मा आप होंगे।

संस्मरणों का संसार भी समेटने का प्रयत्न करूंगा। आप जैसे प्रिय बन्धु के आदेश को कौन टाल सकता है।

११-११-८० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

३१-आजादनगर, उज्जैन

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका १४/४ का स्नेहासिक्त पत्र प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। ऐसी सहज आत्मीयता आज के युग में दुर्लभ है। 'यह 'संस्मरणों के संस्मरण' लिखने की प्रेरणा भी आपसे ही मिली हैं। जब विगत बसंत पंचमी को खण्डवा आया था। बच्चन जी का बड़ा उत्साहवर्धक पत्र आया है। अब आप जैसे सुहृदयों के आदेश की लज्जा रखने के लिए इस क्रम को जारी रखने का मेरा विचार है।

बच्चन जी तो ऐसे भावोन्मेष में आ गये थे कि, यह भी लिख डाला कि, आप इसी में अपनी आत्मकथा लिख डालो। वह तो खैर बड़े साहस की चीज है। पर संस्मरणों के संस्मरण लिखने के प्रति मैं भी तत्पर इसलिए होना चाहता हूँ कि उनमें से ऐसे संस्मरण अपना महत्व खो देंगे, जिनके उल्लिखत पात्र संसार से महाप्रयाण कर चुके हों। निराला जैसे महाप्राण की दूसरी बात है पर इधर हिन्दी के कुछ महारथियों ने अपने

दिवंगत सहधर्मियों पर ऐसे हीन आरोप लगा दिये हैं कि वे अब उनका उत्तर देने भी नहीं पहुंच सकते। यह सचमुच ही हीन भावना है। दूसरा खतरा वही है जिसके कारण पंतजी और बच्चन जी जैसे अंतरंग सुहृदों के बीच मुकदमेंबाजी शुरू हो गई थी। दामन बचाके निकल जाने की बात है।

यह भी संयोग है कि अब आपको और मुझे बराबर पुरस्कार मिलने लगा है। ३१ मार्च को लखनऊ बुलाया गया था। बड़ी आवभगत की गई।

भाई अमृतलाल नागर ऐसे भावावेश में आये कि उसी रात उनका रक्तचाप काफी बढ़ गया। हम दोनों को आपकी बड़ी याद आई। मुख्य मंत्री विश्वनाथ प्रसादसिंह भी थे।

ऐसे लगा जैसे वे मूलतः संस्कृति के व्यक्ति हैं। गलती से राजनीति में चले गये हैं। खैर मिलेंगे तो काफी बयान करूंगा।

इस बीच 'मन के मृगछौने' के साथ भी उछल-कूद करता रहा हूँ। डरता हूँ कहीं आपकी लेखनी को नजर न लग जाये।

क्योंकि—

"सितारों के अक्षत चावल चढ़ाकर
उसने सूरज जैसा तेजस्वी पति पाया है।
लाड़ली बेटी को नजर न लग जाये
इसलिए मां ने उसके गले में
चाँद का ताबीज डाल दिया है।"

सृजन के क्षेत्र में इस सूझ और ताजगी के लिए मेरा गुलाबी चुम्बन स्वीकार कीजिए। यह सूझ की करामात मेरी नहीं, हम दोनों के पूज्य दादा माखनलाल की है।

अतएव माखन के अनुपात वाली मिसरी की तरह आप भी घुलिये। इतना ही कहना है कि मेरे हिस्से की मिठास सुरक्षित रखें।

सस्नेह सदाका

१८-४-८१ शिवमंगल सिंह 'सुमन'

उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

प्रिय उपाध्याय जी,

आपका ४/५ का पत्र लखनऊ में यथासमय मिल गया था। उज्जैन आया तो उसे साथ लेता आया। महादेवी की आरती उतारने के उपक्रम के प्रति आपकी बधाई प्राप्त कर कृतकृत्य हुआ। वस्तुतः उनकी तपस्या से उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पवित्र हो गया। मैं तो निमित्त मात्र हूं। सद्-भावनायें आप सबकी हैं जो किसी प्रकार मूर्तिमान हो सकीं। यही है कि उनकी सेवा न कर पाते तो, सदा के लिए कलख रह जाती जैसे निरालाजी उपेक्षित रह गये।

मुझे भी आप सबकी याद आती रहती है। हजारी प्रसाद जी ने तो शान्तिनिकेतन छोड़ दिया पर मुझसे मालवा शायद ही छूटे। मैं भी आज से ४८ वर्ष पूर्व उज्जैन प्रदेश को अपने द्विजत्व का मुहुर्त मानता हूँ। संस्थान में सेवा के सुयोग ने कृतार्थ अवश्य किया। अन्ततोगत्वा हम सबका उद्देश्य राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा है। अन्यथा यह राष्ट्र जुड़नंगी पायेगा। गूंगा रह जाएगा सो अलग।

आपकी प्रसाद मिल गई थी। समय मिलते ही पारायण कर जाऊँगा। शोध संस्थान राजस्थान द्वारा प्रदत्त सम्मान (स्वर्णपदक) पर हार्दिक बधाई। आपकी आत्मीयता मेरे लिए बहुमूल्य है। शायद यह जुदाई उसे और भी प्रगाढ़ कर दे।

सस्नेह एवं साभार।

कैम्प उज्जैन — आपका सदाका

५-६-८८ — शिव मंगलसिंह 'सुमन'

मोहनलाल वाजपेयी

पूर्वपल्ली शांतिनिकेतन, प० बंगाल

आदरणीय भाईजी,

शतशः सहस्रशः अपराधी हूँ। पर "रहमत पै तेरी मेरे गुनाहों को नाज़

है"। पत्र आपका उन्हीं दिनों मिल गया था, पुस्तक भी, पर ऐसा अधम हूँ कि उत्तर तो दूर, प्राप्ति-स्वीकार भी न जता पाया। अवश्य ही कारण अनेक थे, कुछ काम-काज की व्यस्तता, कुछ अतिथि समागम और कुछ प्रवास योग। पर असल कारण यह है कि हाथ से लिख नहीं पाता, राइटर्स कैम्प के प्रसाद से, और अब टंकण भी सुकर नहीं रह गया है। सो एक किस्म से यह अच्छा ही हुआ कि आप परिचय के शुरू में ही मेरी बदतमीजियों से अवगत हो गए।

परिचय के शुरू की बात लिखने को लिख दी, पर सच तो यह है कि जब नागपुर में आपसे पहली बार परिचय हुआ तभी मैंने जाना कि परिचय की नवीनता भ्रम है; दरअसल आप कब से सुपरिचित हैं। जब "कुंकुम कलश और आम्रपल्लव' की रचनाएं पढ़ीं तो इस बात की पुष्टि हुई कि बातें जो मेरे जी में थीं, आप कब सेंध लगाकर उन्हें उड़ा ले गए, जान भी न पाया। कब मेरी बात आप कहते हैं और कब आपकी बात मेरी बन जाती है; कौन बताये।

बहन गंगा और भाई चौबेजी के कुशलवृत्त जान कर सुख हुआ। गंगा अब स्वस्थ है, ग़नीमत है। दमा बड़ा कष्टदायक होता है।

स्नेह की याचना और प्रणाम—निवेदन सहित

आपका

१६ मार्च, १६७५ मोहनलाल वाजपेयी

पूर्वपल्ली शांति निकेतन, प० बंगाल

श्रद्धेय भाईजी,

आपके निकट बार-बार अपराधी हूँ। बात यह हुई कि पुस्तकें मिलने के कुछ दिनों बाद ही एक ऐसी सम्भावना नज़र आई कि शायद निकट भविष्य में ही उस ओर आना मिले; सो सोचा, प्रत्यक्ष मिलकर ही, उस सौगात के लिए अपना नेह-निहोरा जता सकूंगा। किन्तु फिर सम्भावना टल गई; जिसमें घाटा सरासर मेरा ही रहा।

पुस्तकें दोनों ही बहुत भायीं "मन के मृग छौने" और "जिनकी छाया भी सुखकर है"। आपके मन के मृग छौने—ऐसा लगा जैसे—हमारे मन में भी निवास करते हैं। उधर रेखाचित्रों का मज़ा यह है कि उनसे आपके चरित-नायकों का जितना पता चलता है, उससे कहीं अधिक स्वयं आपके सरस और समुच्च चित्त का। दोनों ही धन्य हैं।

नये वर्ष की यह स्नेह-भेंट इस बात का प्रमाण है कि नया साल सचमुच ही शुभ होगा। मेरे अनेक प्रणाम और प्रीति लीजिए।

स्नेहार्थी

१०-२-७६ मोहनलाल वाजपेयी

जगदीशचन्द्र माथुर

३ मैक्डानल रोड, पटना

प्रियवर श्री उपाध्यायजी,

आपके १२ नबम्वर के पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। सम्मेलन पत्रिका वाले लेख में मैंने जो विचार व सुझाव रखे हैं, उनकी प्रेरणा मुझे सरकारी जीवन में, गाँवों की सांस्कृतिक अन्तर्धारा के सम्पर्क से मिली है। समय की कमी के कारण मैं अभी तक वैसे कार्यक्रम को इच्छित रूप नहीं दे सका हूँ। लेकिन सचेष्ट तो हूँ ही। हिन्दी का रंगमंच तो लोकजीवन की भित्ती पर ही टिक सकेगा।। किन्तु कवि व लेखक इस ओर बढ़े तभी न? हिन्दी में जनजीवन और शोषित जनता के नाम की दुहाई तो अक्सर दी जाती है, लेकिन बड़े बड़े प्रगतिशील लेखक व कवि जिस स्वर और Idiom में लिखते हैं, वह तो लोक बुद्धि और परम्परा से परे की चीज है।

आपकी रचनाओं से मैं परिचित रहा हूँ। और निमाड़ जिले के लोक गीतों पर आपने अपनी जिस पुस्तक का जिक्र किया है, उसे भी मंगाकर पढ़ूंगा। आपसे सीधा परिचय प्राप्त कर प्रसन्नता हुई।

सधन्यवाद।

आपका

२२-११-५३ जगदीश चन्द्र माथुर

३० कैनिंग लेन, नई दिल्ली

प्रिय श्री उपाध्यायजी,

आपका स्नेहपूर्ण पत्र पाकर आह्लादित हुआ, यों सरकारी कर्मचारी होने के नाते आह्लाद की मनोदशा से कतराना ही पड़ता है। मैं उस गली का पुराना पथिक हूँ। सन् १९४४ की बात है जब वैशाली गाँव ने मेरा मर्म कुछ इस तरह छू दिया कि तब से बराबर मौके बेमौके लोक संस्कृति की ध्वजा उठाता रहता हूँ। सम्मेलन पत्रिका के लोक संस्कृति विशेषांक के लिए जो लेख लिखा था उससे पहले ही भिखारी ठाकुर के सम्पर्क में आ चुका था। इसलिए आकाश-वाणी में नागरिक श्रोताओं और अंग्रेजियत के हिमायतियों के बावजूद लोकगीत लोकनाट्य इत्यादि के लिए प्रांगण बना ही दिया।

पिछले दिनों कई ललित निबन्ध लिखे हैं। उनका एक संग्रह 'बोलते क्षण' शायद इसी महीने प्रकाशित हो जाएगा। आपको एक प्रति भेजूंगा। आपके ललित निबन्धों को मैं बराबर पढ़ता रहता हूँ और बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

विषमताऐं तो हमारे समाज में बढ़ रही हैं। किन्तु जब तक चन्द लोग भी अपने चिन्तन की प्रखरता व वाणी के ओज द्वारा रोकथाम करते रहेंगे शायद बिल्कुल निराशा की स्थिति से हम बच जाएगें। क्या मालूम, कब कौन स्फुलिंग काम आ जाए।

आपका

१५-१-१९७३ जगदीश चन्द्र माथुर

जैनेन्द्र कुमार

७/३६ दरियागंज, देहली

भाई उपाध्यायजी,

आपका पत्र तथा एक विज्ञप्ति-गांधी दर्शन संबंधी प्राप्त हुई। आपका प्रयत्न सराहनीय है। आप अपने उत्साह के अनुरूप ही इस कार्य में सफल होकर हिन्दी साहित्य को एक भेंट प्रदान कर सकेंगे।

अपने लिखने के विषय में क्या कहूँ। इधर गांधी जी के संबंध में जो कुछ प्रकाशित हो पाया है, उन्हीं में से चयन कर लीजिए। या फिर कभी स्मरण दिला दीजिए, हो सका तो भेजने का प्रयत्न करूंगा।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका

इधर मैंने बापू को देखा तक नहीं है, न कभी प्रार्थना में गया, न सभा में ही। आपको शायद अचरज हो, लेकिन सच यह है कि गांधी जी के पास तक मैं एकाध बार ही गया हूँ। अपने निज के संस्मरण उनके संबंध में मेरे पास कुछ हैं ही नहीं। अध्ययन और विश्लेषण जैसा तो आप के काम का होगा नहीं।

और आपकी क्या प्रवृत्तियाँ हैं।

सस्नेह

२८-१२-४७ जैनेन्द्र कुमार

दरियागंज

भाई रामनारायणजी,

पत्र मिला, पते के वारे में गफलत हो जाने से पुस्तक आपको नहीं भेजी जा सकी थी अब आती है। हाँ, बाहर अंधेरा तो लगता है, पर भगवान की माया अपार है। इससे श्रद्धालु के लिए डिगने की जगह नहीं। गांधी राजनीतिक नहीं थे, पर राजनीति में से अधिकांश हम लोगों ने उन्हें देखा। यही कारण है कि हम दीवालिये बने हैं, लेकिन अपनी ही गहराई में भारत और जगत उनका आविष्कार कर रहा है। मैं तो आशावान हूँ और मानता हूँ कि जल्दी ही गांधी-नीति एक शक्ति के रूप में उभरेगी। इस बीच अपने प्रकाश के अनुसार चलते जाने में हम चूकें नहीं, यही चाहिए।

आप सानन्द होंगे।

सस्नेह

१८-२-५१ जैनेन्द्र कुमार

विश्वम्भरनाथ पांडे

१४२ आजाद स्क्वायर, इलाहबाद

प्रिय भाई रामनारायण जी,

२८ अप्रैल के स्नेहपूर्ण पत्र के लिए आभारी हूँ। खंडवा में आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई। परिवार के आत्मीय के प्रति जो भावना होनी चाहिये वही आपने उसी अल्प मुहुर्त में मुझे इतनी मात्रा में दे दी कि उससे आत्मसुख अनुभव कर रहा हूँ।

आपकी पुस्तक मैं रेल में ही आद्योपान्त पढ़ गया था बाद में फिर एक बार पढ़ा। आपके संस्मरण पाठक के मन पर बड़ा हितकर प्रभाव डालते हैं। उसे चाहे थोड़ी देर के लिए ही सही ऊंचे नैतिक धरातल पर उठाने की क्षमता रखते हैं।

कल मैं ६ सप्ताह के लिए बाहर जा रहा हूँ। लौटकर रूसी लोक साहित्यकारों के नाम भेजूंगा।

आशा है आप सानंद होंगे।

सस्नेह

आपका भाई

१८-५-६४ विश्वम्भरनाथ पाण्डे

१४२ साउथ मलाका, इलाहाबाद

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका २९ सितम्बर का पत्र जब दो सप्ताह के बाद युद्ध के अग्रिम मोरचों से लौटा तो प्राप्त हुआ। मेरा घुमक्कड़ स्वभाव उस पवित्र धरती की मिट्टी अपने माथे पर लगाने के लिए ले गया था जहाँ हमारे सैनिकों ने अपने रक्त की अंतिम बूंदों से वीरता और बलिदान की नई गाथायें लिखी हैं। छोटे-छोटे गाँवों के उन निर्भीक किसानों को भी देखा जो दोनों ओर की तोपों से छूटे हुये गालों के साये में, अन्न उत्पादन के काम में लगे हुये थे। छम्ब के उस बदनसीब गांव सम्बा को भी देखा जिसे सात नैपाल बमों ने भस्मीभूत कर दिया था, किन्तु इन सब से अधिक जनता के उस अजेय

मनोबल को देखा, जो भयानक से भयानक विपत्ति में जरा भी विचलित नहीं हुआ।

आपकी पुस्तक सन्त सिंगाजी मुझे मिल गई थी। एक साँस में उसे पढ़ भी गया। इस सुन्दर रचना के लिए बधाई।

सस्नेह

आपका भाई

१३-१०-६५ विश्वम्भर नाथ पाण्डे

बालकृष्ण शर्मा

५ विंडसर प्लेस, नई दिल्ली

सम्मान्य उपाध्यायजी,

आपके आदेशानुसार मैं अपनी विनोबा-स्तवन नामक काव्य पुस्तक रजि०पोस्ट से भेज रहा हूँ।

मेरा विचार है कि आप विनोबा संबंधी भूमिकात्मक लेख और प्रथम कविता—'अहो मंत्र दृष्टा ! हे ऋषिवर !!'—ये दोनों अपने ग्रन्थ में देने की कृपा करें।

मेरा ऐसा विश्वास है कि मेरी ये दोनों कृतियाँ—लेख और कविता—विनोबा को समझने में सहायक होंगी।

निवेदक

१४-९-५४ बालकृष्ण शर्मा

शिवपूजन सहाय

भगवान रोड, मीठापुर, पटना-१

मान्यवर पण्डितजी,

सादर प्रणाम।

आपके कृपा पत्र के उत्तर में बहुत बिलम्ब हो गया, क्षमाप्रार्थी हूँ।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से मेरा संबंध अब केवल साहित्य के नाते ही है। मैं वहाँ से गत दो वर्षों से अवसर-ग्रहण कर कार्यमुक्त हो चुका हूँ।

परिषद् से जो पत्रिका निकली है उसके सम्पादक परिषद् के संचालक जी ही हैं। उसमें एक लेख मेरा भी छपा था। आप उसके संपादक से ही सीधे पत्राचार करें तो अच्छा होगा। साहित्यिक संबंध मात्र उस संस्था से है, पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। सम्पादक जी को आप लिखेंगे तो वे अवश्य ध्यान देंगे। बड़े सहृदय हैं। पत्रिका के दो अंक निकल चुके। शायद कहीं आपने उसे देखा भी हो। परिषद् के संचालक के नाम से ही पत्र लिखना ठीक होगा। वे ही सम्पादक भी हैं। उनको सब कुछ करने का अधिकार है। आप परिषद् के लोक भाषा विभाग के निर्देशक आचार्य नलिन विलोचन शर्मा को भी एक पत्र लिख दें तो बड़ा अच्छा होगा। आशा है कि वे आपकी सूची प्रकाशनार्थ ले लें। कृपा रहे।

सधन्यवाद।

१२-८-६१ शिवपूजन सहाय

सीताराम चतुर्वेदी

काशी

प्रियवर उपाध्यायजी,

सस्नेह नमस्कार।

आपका स्नेह सिक्त पत्र पाकर हार्दिक आल्हाद हुआ। 'कुंकुम कलश और आम्र पल्लव' तो मैं जबलपुर में ही पढ़ गया था। आपकी भाषा शैली बड़ी रोचक और प्रवाह पूर्ण होने के साथ-साथ बड़ी मृदुल और हृदय-स्पर्शी है। आजकल के लेखकों में यह सौष्ठव मिलता कहाँ है। जिस कौशल और गति से और साहित्य संवर्धन कर रहे हैं वह अभिनन्दनीय है।

आशा है स्वस्थ और प्रसन्न होंगे।

सस्नेह

५-३-७७ सीताराम चतुर्वेदी

कन्हैयालाल प्रभाकर

सहारनपुर (उत्तर-प्रदेश)

प्रिय भाई नमस्कार,

आपका पत्र मिला। आपने लिखा है कि "मुझे लिखते वर्षों हो गये। मैं अपनी रचना में संशोधन का अभ्यस्त नहीं हूँ।"

मैं आपके स्वभाव को पसन्द करता हूँ। हिन्दी में और भी अनेक ऐसे लेखक हैं जो अपनी रचना में किसी की कलम लगाना पसंद नहीं करते। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। पर ऐसे सब लेखक यह करते हैं कि लेख भेजते समय ही यह लिख देते हैं कि बिना कांट-छांट किए न छाप सकें तो वापस कर दें। यह उचित तो है ही, आवश्यक भी है।

२९-८-५२ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

बालूगंज, मसूरी

प्रिय भाई,

आपकी पुस्तक 'गरीब और अमीर पुस्तकें' कल पूरी की। आज आपका लेख पढ़ा—'आदमी का दर्जा'। यह तो आपने हिन्दी के निबन्धों का एक नया स्टाईल ही दे दिया। हिन्दी में गद्य-काव्य का रस आपने खूब मिलाया और ऊपर से संस्मरण की इलायचियाँ छिड़क दीं। इस प्रकार एक नया मुरब्बा ही बन गया—आपका। हास्य की पुट भी खूब रही। व्यंग्य की रेखाएं भली उभरीं। पढ़ कर मजा आ गया। तो यह लीजिये प्यार, यह लीजिये बधाई और बस लिखे जाइये इसी तरह आज, कल-परसों। लेख 'नया जीवन' के अगले अंक में जायेगा। पुस्तक खूब रही—खूब ही रही।

आपका अपना

१०-६-५८ क० ला० प्रभाकर

सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रिय भाई,

आशा है आप प्रसन्न हैं और जोरों से लिखाई चल रही है। एक काम सौंपता हूँ—

पूज्य दादा को आज ही पत्र लिखा है कि मैं २० सितम्बर को बरुवा जी को भेज रहा हूँ। आप १५-२० दिन में जीवन-चरित्त का शेष भाग पूरा कर दें। जिससे पुस्तक छप जाये। आप सहमत होंगे कि अब उसमें

विलम्ब करना आशोभन है और न अधूरा छापना ही उचित होगा। आप इस बारे में दादा से बात कर लें और उनसे हाँ ले लें। बरुआ १५ दिन ही रुक सकते हैं, क्योंकि उन्हें वहाँ रोटी कमानी होती है। बरुवा ने मुझे लिखा है कि उस पुस्तक में जो कुछ है दादा का है, मेरा कुछ नहीं, इसलिए मैं इस पुस्तक की रायल्टी नहीं लूंगा वह दादा की है। इस नम्रता से मुझे सुख मिला है। भैया, प्रयत्न करके यह काम करा दो, जिससे मेरा यज्ञ पूर्ण हो जाये—कृतज्ञ हूंगा। दादा की दो पुस्तकें प्रकाशनार्थ आने वाली थीं वे भी भिजवा दें। दादा से मिल कर मुझे उत्तर दें।

२३-८-५८ क० ला० प्रभाकर

सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रिय भाई,

ज्ञानोदय में आपकी रचना पढ़ जो कार्ड आपको लिखा था, वह नहीं मिला आपको? आपने अपने लेखक की खूब सेवा की है, इसीलिए वह अब आपको मेवा देने लगा है। कामना है ये मेवे आप पर बरसते रहें और आप उन्हें जनता को परसते रहें।

'मैं क्यों लिखता हूँ?' अभी पढ़ा और मई अंक में उसे दे दिया। आपका पत्र आता है, तो आपसे मुलाकात हो जाती है—हमारे बीच हमारी हार्दिकता का ही तो रिश्ता है भाई! आपके प्यार से जीने का बल मिलता है। आशा है आप-प्रसन्न हैं।

आपका अपना

१२-५-६० क० ला० प्रभाकर

सहारनपुर (उ०प्र०)

प्रिय श्री भाई,

आपका प्यार भरा पत्र मिला था, पुस्तक भी मिल गई। अभी उलटी-पुलटी है, पर उतने में ही पूरा आनंद मिला, क्योंकि अधिकांश लेख पढ़े हुए हैं! आपका आदर युक्त पाठक रहा हूँ भैया! प्रभु की कृपा, सत्पुरुषों के सम्पर्क और आपकी शालीन पात्रता ने आपके अन्तर की शुभदृष्टि और

कलम को शुभ सृष्टि की सामर्थ दे दी है। उसी के पुष्प खिले हैं, इन पृष्ठों में ! मेरा प्यार और आदर स्वीकार करें।

स्थानीय श्रीमती कृष्णा कुमारी जी एम० ए० जे० बी० ए० गर्ल्स इन्टर कालेज, रानी बाजार, सहारनपुर यू० पी० निबन्धों पर शोधकार्य कर रही है। उन्हें अपने निवन्धों की दोनों पुस्तकें भेज दें। अच्छा होगा कि पुस्तकों पर उनके नाम की भेंट लिखकर मेरे ही नाम भेज दें। मैं पुस्तकें उन्हें दे दूंगा और आपके परिचय में उन्हें ला दूंगा। मैं चाहता हूँ उनके ग्रन्थ में आपको उचित स्थान मिले।

आशा है आप प्रसन्न हैं। दादा का समाचार देंगे तो कृपा।

आपका अपना

११-११-६६ क० ला० प्रभाकर

सहारनपुर

प्रिय श्री भाई, क्षमा याचना और अभिवादन

'सुख के नाम पाती' समय पर मिल गई थी और वह आपकी पाती थी, इसलिए भी कि आप लिखने के लिए ही कुछ नहीं लिखते, जब कुछ भीतर उमड़ता है, तभी लिखते हैं। आप जीते भी हैं और जीना सिखाते भी हैं। आपके पाठक कभी घाटे में नहीं रहते ! मैं भी आपका एक पाठक हूँ और पत्र चाहे रोग के कारण न लिख पाऊं, पर आपकी चर्चा करता रहता हूँ। नई पीढ़ी के जो लोग आते हैं उन्हें आपके लेख पढ़ने को कहता हूँ। मेरी मंगलकामना सदा आपके साथ है। मेरे योग्य ?

आपका अपना

१२-५-७१ क० ला० प्रभाकर

'नया जीवन' गड़बड़ा गया था, अभी जरा उधर ध्यान दिया है मार्च से ! सम्मति दीजियेगा।

सहारनपुर (उ० प्र०)

प्रिय श्री भाई रामनारायणजी,

प्यार और पूजा के अक्षत लो।

'मन के मृगछौने' भेजी, कृतज्ञ हूँ। लिखने की चौकी पर रखी है,

पुस्तक। जब तब २-४ पृष्ठ पढ़ता हूँ और सोचता हूँ यही है सर्वोत्तम, पर दूसरे दिन दूसरों को सर्वोत्तम मान लेता हूँ, यानी एक से बढ़कर एक। मैं चतुरसेन शास्त्री के समय से गद्य काव्य पढ़ रहा हूँ। चण्डीप्रसाद हृदयेश की गद्यकाव्यात्मता ने आरंभ में मुझे प्रभावित किया था। दिनेश-नंदिनी और आचार्य निरंजननाथ का अपना रंग है, पर आपने उसमें नई कलम लगा दी है। गद्य काव्य का यह युग नहीं। वह हृदय के सरोवर में फूलता है पर आज बुद्धि का बुलडोजर सब को तोड़-फोड़कर बराबर कर रहा है। गुलाब का स्थान केक्टस ले रहा है, तो गद्य-काव्य कहाँ? आपने इस अवसर पर उस विधा को अमृत से खींच दिया है। आपकी और भी पुस्तकें मेरे पास हैं। अभिनंदन ग्रंथ भी। रोग ने अस्त-व्यस्त कर रखा है इन दिनों। रोग के साथ मनुष्य के घटियापन का जो तांडव राष्ट्र में हुआ है, उसने मुझे अधमरा सा कर दिया। मनुष्य में देवत्व का जागरण-दर्शन ही मेरी साधना रही। उसी से अस्त-व्यस्त रहा। 'नया जीवन' के वर्ष में ५-६ अंक निकले अब उसे व्यवस्थित कर रहा हूँ। मास के अन्त में निकला 'प्रभाकर सर्जना अंक' मिला था? आपकी सब पुस्तकें पढ़ कर आपका एक जीवन चित्र खींचूंगा। मन है कि आपकी तरह ही से वह चित्र, एकदम इन्द्रधनुषी।

आशा है स्वस्थ प्रसन्न हैं।

९-२-७६ क० ला० प्रभाकर

आनद कौसल्यायन

धर्मोदय बिहार, कलिम्पांग

प्रिय उपाध्यायजी,

२०/८ का पत्र मिला, साथ में जो टाइप किया हुआ पत्र है, उसका कृतज्ञ हूँ कि उसके कारण आपको मुझे पत्र लिखने की याद आई। भाई, ऐसे भी कभी पत्र लिख सकते थे। 'अनजाने जाने पहिचाने' की सूचना तो पत्रों में देखी। पुस्तक आज तक नहीं देखी। असंगत नहीं कि आपने जो प्रति भिजवाई वह किसी 'अनजाने जाने पहिचाने' के ही हाथ लग गई हो।

पुस्तक मिलना न मिनना गौण बात है। आपने भिजवाई, यही बड़ी बात है। अनेकानेक धन्यवाद। अपना ही प्रकाशन हो तो एक प्रति फिर भेज सकते हैं। अन्यत्र से प्रकाशित हो तो कष्ट न करें पता भर ज्ञात हो तो मैं मंगा लूंगा।

'रेल के टिकट' के बाद 'आज का जापान' छपी है। प्रकाशक २० प्रतियाँ देते हैं। मेरा परिवार कुछ नहीं तो २०० आदमियों का तो होगा। क्या नंगी न्हाये और क्या निचोड़े।

कुछ प्रतियाँ माँग भेजी थीं। आई ही नहीं। आ जातीं तो आपको भी कालमुखी में बैठे ही बैठे आज के जापान की सैर करा देता।

खंडवा से कभी गुजरना हो ही सकता है। जिसकी पूर्व सूचना अपने को भी बहुत पहले नहीं रहती किन्तु कालमुखी पता नहीं कितनी दूर है। अब भेंट हो तो कैसे हो ?

सम्भव है मैं परसों ही एक सप्ताह के लिए वर्धा नागपुर तक आऊं जाऊं।

गत फरवरी में मैं थाईलैंड और वहाँ से दुबारा जापान चला गया था। 'इंडोनेशिया' और 'इंडोचाइना' भी हो आया, उसकी कथा अभी लिखनी आरंभ नहीं की। अभी जातक कथा में ही व्यक्त और मस्त हूँ। आगामी महीने में अन्तिम छठा खंड समाप्त कर देने के लिए कृत-संकल्प हूँ।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

—शुभेच्छु

१-९-५४ आनन्द कौसल्यायन

धर्मोदय विहार, कलिम्पांग (पं० बंगाल)

प्रिय उपाध्यायजी,

आपके ३ कार्ड और 'बोलता हिन्दुस्तान' मेरे साथ हिन्दुस्तान भर की ही नहीं, नेपाल और बर्मा की भी सैर कर आये हैं। आज ही मैंने बोलता हिन्दुस्तान के निबन्ध पढ़े। क्या ही सुथरे-सुघर, सलोने निबन्ध हैं, एक ही शिकायत है कि इतने थोड़े क्यों हैं ?

अभी कल या परसों 'हिन्दुस्तान' में आपका 'चुटकुले वाला' पढ़ा था। चुटकुले सुनाने का बड़ा ही सरस ढंग।

इस शैली को न छोड़ियेगा यह आपकी अपनी चीज है। अब आगे कोई भी पुस्तक छपवायें वह २०० पृष्ठ से कम की न हो।

पाठक अच्छा और भरपेट चाहता है।

मैं अभी दो दिन हुये बम्बई से लौटा हूँ। खंडवा स्टेशन से गुजरते उपाध्याय बन्धुओं की याद आई थी। शायद अगले ही सप्ताह जाना होगा। तब फिर याद कर लूंगा।

किसी न किसी दिन ये सभी 'यादें' साकार होकर भेंट भी बन जायेंगी।

शुभेच्छु

४-४-५६ आनन्द कौसल्यायन

केनिया (सीलोन)

प्रिय उपाध्यायजी,

१४/२ का पत्र तथा पुस्तक यथासंभव मिल गई थी। तुरंत पहुंच इसीलिये नहीं दी कि पुस्तक पढ़कर पहुंचा देना चाहता था। कुछ लोग पुस्तकें चखते हैं मुझे वह बीमारी नहीं। मैं या तो पुस्तकें पढ़ता ही नहीं, यदि किसी पुस्तक को पढ़ता हूँ तो अथ से इति तक पढ़ता हूँ। आपकी कृति का भी शायद ही कोई निबन्ध छूटा हो।

व्यंग वह ही अच्छा है जो सुई की तरह चुभे किन्तु किसी भी तरह का दर्द पैदा न करे—आप की चुटकियाँ लाल चीटों की तरह काटती हैं, लेकिन जलन नहीं छोड़तीं।

राहुल जी ३ अगस्त को ही उड़कर भारत पहुंच रहे हैं। वे नवम्बर के पहले सप्ताह में वापस कल्याणी आयेंगे।

मैं विश्वविद्यालय में छुट्टी हो जाने पर भी कम से कम २३ अगस्त तक और यहीं रहूंगा। हिन्दी परीक्षार्थियों की परीक्षा के हित में यह अनिवार्य है। सितम्बर के प्रथम सप्ताह में शायद पानी के जहाज से ही बम्बई की ओर आ पाऊं। फिर बम्बई से इलाहाबाद जाते समय खण्डवा से

भी गुजरना हो ही सकता है। यह कालमुखी खण्डवा से कितनी दूर या समीप है और शिवनारायण जी से भी पूछ कर लिखियेगा कि यह 'काल मुखी' क्या नाम है, कोई 'चन्द्रमुखी' होता, 'सूर्यमुखी' होता एकदम कालमुखी।

खण्डवा से गुजरना हो तो अपने साहित्य देवता चतुर्वेदी जी से मंगल कामना कहियेगा। मेरे लिए खण्डवा का अर्थ ही है चतुर्वेदी जी, राष्ट्र-भारती में उनकी लेखनी का प्रसाद रहता है यह 'राष्ट्र भारती' का सौभाग्य है।

शुभेच्छु

३-७-६० आनन्द कौसल्यायन

विद्यालंकार यूनिवर्सिटी, श्री लंका

प्रिय उपाध्याय जी,

२८/३ का पत्र यथा समय मिल गया था। आजकल विश्वविद्यालय में छुट्टियाँ हैं। मैं छुट्टियों के कुछ दिन बिताने के लिए स्थानान्तरित रहा हूँ कल Kelaniya वापिस लौट जाऊंगा।

'नई धारा' का मार्च अंक यहां आया ही नहीं। सम्भव है आपने उसमें जो कुछ मेरे बारे में लिख दिया है उसी के कारण यहाँ तक न पहुंच पाया हो। 'जामवन्त कहे जाऊं मैं पारा, मुझे चिन्ता कछु लौटती बारा।' कोई हनुमान ही श्री लंका तक पहुंच सकता है।

राहुल जी के अस्वास्थ्य को लेकर चिन्तित रहने वालों में मैं किसी से भी पीछे नहीं रहा हूँ पिछले सप्ताह एक अच्छा समाचार मिला है कि उन्होंने मेरा नाम लिये जाने पर मुझे अच्छी तरह पहचान लिया है। नहीं तो वह जया, जेता तक को भूल चुके थे।

राहुल जी को जब हिन्दी और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों में से एक को चुनना पड़ा था, तो उन्होंने अपने स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने के अधिकार की रक्षा के लिए कम्युनिस्ट पार्टी से त्याग-पत्र दे दिया था, ऐसे हिन्दी धाम के धनी की आज क्या हालत है!

मेरे भारत आने न आने का प्रश्न नहीं उठता। मेरे लिए किसी भी

एक देश से दूसरे देश में जाना एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने के समान है। जब जहाँ कोई बुलाता है, वहाँ चला जाता हूँ जहाँ से कोई हटाता है वहाँ से हट जाता हूँ।

२६ मई को राष्ट्र भाषा प्रचार समिति की रजत जयन्ती है। उस अवसर पर भारत (वर्धा) आना जाना असंभव नहीं।

Foreign Exchange की कठिनाई है। आप १५ मई के आस-पास पत्र लिख कर पूछ लेवें। मेरा वहाँ जाना सम्भव हुआ तो उससे पूर्व निश्चय हो जाएगा। और आपको सूचना भी मिल जायेगी।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

शुभेच्छु

१८-४-६२ आनन्द कौसल्यायन

विद्यालंकार यूनिवर्सिटी, श्री लंका

प्रिय उपाध्याय जी,

२६/६ का पत्र मिल गया है। साथ में जीवन के कलाकार की टाइप की हुई नकल भी। इसकी सूचना पहले भी मिली थी। और कदाचित नई धारा में मैं इसे देख भी चुका हूँ।

आदमी की समय-समय पर प्रशंसा भी होती रहे यह हर किसी को अच्छा लगता ही है लेकिन चित्त के स्वास्थ्य के लिए यह अधिक आवश्यक है कि बीच-बीच में उसे अपनी आलोचना भी सुननी मिलती रहे।

मैं इस मामले में काफी भाग्यशाली हूँ। आपने हिन्दी और राहुलजी को लेकर जो कुछ लिखा है वह सब कुछ भारतीय इतिहास के छोटे-छोटे तिनके हैं जो बता रहे हैं कि हवा का रुख किधर है। राहुलजी तो लौटकर आ नहीं सकते। हिन्दी को किसी वन्दे वैरागी की आवश्यकता है जो भारतीय संस्कृति के दुश्मनों से भी टक्कर ले सके। लेकिन कोई नहीं है। हाँ, माँ भारती बाँझ नहीं हो गई हैं कोई न कोई माई का लाल पैदा होगा।

हम उसी की आरती उतारेंगे।

'कलम' तो कुछ न कुछ लिखती ही रहती है। पिछले दो तीन वर्षों में यही तीन चार पुस्तकें छपी हैं। पता नहीं आपके लिए कौन नई है कौन

पुरानी। 'नई' होने पर पता नहीं दिलचस्पी की हो यो न हो? जहाँ तक लेखक की बात है उसे तो अपना हर 'कवित्त' चाहे वह 'सरस हो या फीका 'मीठा' लगता ही है।

(१) अंगुतर निकाय (पालिग्रंथ) के दो खण्डों का अनुवाद/तीसरा खंड इन दिनों लिखा जा रहा है। चार खडों में ग्रन्थ समाप्त हो जायेगा।

(२) भगवान बुद्ध और उनका धर्म—डॉ० भीमराव अम्बेडकर के The Buddha & his Dharm का हिन्दी अनुवाद।

(३) बुद्धगुणालंकार—एक सिंहल काव्य ग्रन्थ का मूल सिंहल छन्दों सहित (देवनागरी में) हिन्दी में अनुवाद।

(४) अभिधम्मस्थ—बौद्धदर्शन के एक प्रसिद्ध पाली ग्रन्थ की हिन्दी टीका। यह पुस्तक सिंहल, वर्मा, थाइलैण्ड में इसी प्रकार सुविदित है जैसे भारत में भगवद्गीता।

यह चारों ग्रन्थ यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि मैं अनुवादक हूँ मौलिक लेखक नहीं—अन्यथा मैं भी कोई 'उपन्यास' लिखता।

हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें और उपन्यासों की ही माँग है। या फिर कल्याण और माया सदृश्य पत्रिकाओं की।

१ अगस्त से १५ अक्टूवर तक का समय भारत में ही बीतेगा। घूमते-फिरते मित्रों से मिलते। खंडवा से गुजरना हुआ तो सूचना देने का ध्यान रखूंगा। शिवनारायण उपाध्याय को मंगल कामना।

शुभेच्छु

१३-७-६३ आनन्द कौसल्यायन

नागपुर

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका ६-१०-७६ का पत्र मिला। मुझे बुरहानपुर में ही पता लग गया था कि आप नागपुर चले गए हैं। भाषण के बाद जिस रेस्ट-हाउस (Rest-House) में मैं ठहरा था वहीं खण्डवा के ही दो बड़े अधिकारियों से देर तक शास्त्रीय चर्चा होती रही। उन दोनों का परिचय (Collector) कलेक्टर या Magistrate (मजिस्ट्रेट) ऐसा ही कुछ कराया गया था। मैंने

उन दो जनों में से जो एक देवीजी थी, उनसे पूछा था कि क्या वे आपको जानती पहिचानती हैं ? तब उन्होंने कहा—'बहुत अच्छी तरह' तो मैंने स्वाक्षरी के साथ 'रामकहानी' की एक प्रति आपको देने के लिए उन्हें सौंप दी। इस प्रकार खण्डवा तक तो मैंने उसे पहुंचा दिया है, अब खण्डवा के किस्किधा वन में से उसे खोज निकालना आपके लिए असंभव नहीं होना चाहिए।

यदि 'रामकहानी' किसी को इतनी अधिक प्रिय हो गई हो कि आपके प्रयास करने पर भी आपको हस्तगत न हो, तो संकेत कर दीजिएगा। दूसरी प्रति भिजवाने की चेष्टा करूंगा।

आशा है आप स्वस्थ्य हैं।

शुभेच्छु
आनन्द कौसल्यायन

२०-१०-७६

विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान अजमेरी गेट, दिल्ली-६

प्रिय बन्धु,

लगभग एक माह बाद दिल्ली लौटा हूँ ! आपका स्नेह भरा पत्र पढ़ा ! बड़ा सुख मिला ! सच मानो यही स्नेह है। "मुझे भी कोई याद करता है यह कितना बड़ा सौभाग्य है !" दो पंक्तियों के इस पत्र में जैसे स्नेह का सागर छलछला उठा।

अभी कलकत्ता में रविठाकुर की एक कविता से परिचित हुआ, उसकी प्रथम पंक्तियों का अर्थ है—(प्रेमिका प्रेमी से कहती है) 'मैं अपने रूप के गर्व से तुम्हें नहीं जीतूंगी, जब पाऊंगी अपने प्रेम न्यौछावर से।'

तुम्हारी पत्रिका पढ़कर मुझे सहसा ये पंक्तियाँ याद आ गईं और मन भर आया ! स्नेह के इन पवित्र क्षणों के लिए कैसे आभार मानूं। आजकल मैं शरत्बाबू के जीवन-चरित्र की सामग्री इकट्ठी करता घूम रहा हूँ। सो और कुछ नहीं कर पाता !

तुम्हारे लेखादि पढ़ता रहता हूँ।

सबको मेरा स्नेहाभिवादन निवेदन करें। योग्य सेवा—

स्नेही

५-१-६० विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान अजमेरी गेट, दिल्ली-६

प्रिय भाई,

आपका पत्र पाकर वहुत खुशी हुई। जिस लेख की आपने चर्चा की है, वह मैंने देखा था। लेकिन उसमें कोई नई बात नहीं है। शरत् बाबू ने 'सत्य साची' की कल्पना ऐसे ही नहीं की थी। उनके सामने अनेक क्रान्तिकारियों के चित्र थे जिनसे वह अनेक बार मिले थे। उनकी बहु-विध सहायता की थी। प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री बिपिन बिहारी गांगुली उनके नाते के मामा लगते थे। मेरा काम धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। अगले वर्ष में निश्चित रूप से जीवनी प्रकाशित कर देना चाहता हूँ।

आप सानन्द हैं न? आपका पत्र पाकर सचमुच बहुत खुशी होती है।

स्नेही

१८-८-८३ विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान, दिल्ली-६

प्रिय भाई,

प्रसन्न होंगे।

एक युग के बाद दिल्ली में जम कर बैठा हूँ। काम बिखरा पड़ा था, समेट रहा हूँ। आज 'मन के मृगछौने' पढ़ गया। मन तब से भरा-भरा है। कैसी कल्पना, कैसी उपमाएँ बड़े गहरे उतर गये उनके सहारे। सारी पुस्तक में सूक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। गद्य सुघर है, और पद्य में भी वामन ही विराट हुआ है। छोटे-छोटे पद्य-स्थल स्मृति पटल पर अंकित होकर रह गये हैं।

"हंसी एक किश्ती है
जो तूफानों से पार लगाती है।"

या

"हमारी संस्कृति किचन में कैद है,
यदि हमें रोटी न मिले, तो हमारे नाखून बढ़ने लगते हैं।'

"जब वर्तमान
भूल के कपड़े पहन लेता है
बुजुर्ग लगने लगता है
और
भविष्य के कपड़े पहन लेता है
तो उसे तरुणाई कहते हैं।"

"अगर कहीं पर्वत है
तो निश्चित मानिए
आस पास कहीं नदी भी होगी
बिना हृदय में गहरा दर्द संजोये
कोई इतना ऊंचा उठ नहीं सकता।"

कितनी अनुभूति, कितना सत्य है इनमें। तुम सचमुच कवि-मनीषी हो।

मेरी हार्दिक शुभ कामनाएं लो। पत्नी को नमस्कार, सबको स्नेह।

स्नेही

६-४-७६ विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली

प्रिय भाई,

मेरी सहधर्मिणी के असामयिक निधन पर आपके सांत्वना भरे दो शब्द मेरे डगमगाते जीवन का सम्बल बन गये। वे बड़ी वीरता से लड़ती-लड़ती परमधाम गई। मुझे उसी वीरता से जीना है। आप जैसे स्नेही मित्रों का स्नेह ही मेरा सहारा होगा। आदेश दे गई हैं सुखी रहना। मेरी चिंता मत करना। बच्चों को प्यार से रखना।

काश मैं उसका पालन कर सकूं।
और आप सानंद होंगे।

स्नेही

२६-१०-८० विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान अजमेरी गेट, दिल्ली

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिल गया था। पर बहुत व्यस्त रहा पहले न लिख सका। 'मन के मृगछौने' पढ़ गया। फिर भी बार-बार पढ़ने का मन करता है। विशेषकर उसके प्रारम्भिक अंश। पहले १०३ पृष्ठों पर तो जैसे साहित्य जीवन की मार्मिक अनुभूतियां बन कर बिखरा है। ये अंश पढ़े ही नहीं, पढ़-कर सुनाये हैं। कैसी गहरी अनुभूति है। आपके रूपक उपमान सभी अछूते हैं।

"धरती से मुझे प्यार है
और आसमान जी को बहुत भाता है।
एक से मेरे शरीर का
और दूसरे से मन का नाता है।"

× × ×

"बड़ी इच्छा थी
तुम्हारे निर्मल हृदय में डुबकी लगाने की
लेकिन,
तुम्हारे चेहरे पर खड़े दंभ के पहरेदार ने
अंदर ही नहीं जाने दिया।"

× × ×

"अगर कहीं पर्वत है, तो निश्चित जानिये
आस पास कहीं नदी भी होगी
बिना हृदय में गहरा दर्द संजोये
कोई इतना ऊंचा उठ नहीं सकता।"

और क्या लिखूं।

सबसे स्नेह नमस्कार।

स्नेही

७-५-८१

विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान, अजमेरी गेट दिल्ली

प्रिय भाई,

एक माह हिमालय के दुर्गम पथों पर घूमकर कल ही लौटा। इस बार हरिद्वार, ऋषिकेश, उत्तरकाशी, गंगोत्री, गोमुख होकर मैं तपोवन तक गया। वहाँ १४५१० फिट की ऊंचाई पर हरा-भरा विस्तृत मैदान है। चारों ओर शाश्वत हिमशिखर बीच में अनेक कल-कल करती धारायें। गर्मियों में खूब फूल खिलते हैं। उस नितांत निर्जन में विराट मौन के दर्शन होते हैं। सवेरे उठकर पारदर्शी हिम को तोड़कर पानी लेना कितना रोमांचक था। हम भाग्यशाली थे सारे समय आकाश निर्मल रहा। हिम शिखर धूप स्नान करते रहे। नहीं तो घने अंधकार में खोये रहते।

पर्वतारोही दल आते-जाते रहते हैं। अब भी दो दल हमें मिले थे किशोरियाँ भी थीं। मेरे जैसे ७० वर्षीय व्यक्ति को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। सबको नमस्कार।

स्नेही

१५-१०-८१ विष्णु प्रभाकर

भवानीप्रसाद मिश्र

नरसिंहपुर

भैया रामनारायण,

तुम्हारी चिट्ठी कल शाम को मिली। प्रसन्नता हुई कि तुम मेरी ओर इतने स्नेहपूर्ण हो। मुझे संसार में चारों ओर से (Undeserved) प्यार मिलता है—मैं इसे मंगलमय की अपार करुणा और अंशत: पक्षपात मानता आया हूँ। मैं आपके स्नेह के प्रति ठीक से कृतज्ञ और उन्मुख रह सकूं। यही इस क्षण मैं भगवान से मांगता हूँ। श्री सुकुमार पगारे मेरी याद और मेरी चर्चा करते हैं इसमें आश्चर्य तो नहीं ही है। उनका सा कोमल मन मुझ कठोर की पोरों को भूल नहीं सका और निश्चय ही जाने बेजाने मैंने उन्हें अपने सहवास की अवधि में कष्ट दिये होंगे। देने के लिए इनके सिवाय मेरे पास कदाचित ही कुछ और होता है। उन्हें मेरे स्नेह और आदर सौंपना।

इटारसी आने का मौका इस माह के अंतिम-सप्ताह में है। मैं वर्धा जाऊंगा—इटारसी एक दिन का मुकाम करूंगा। वर्धा में ही रहना तय हुआ है। अनेक स्नेह बंधनों के कारण। श्री सुकुमार को उसका कुछ न कुछ अंदाज है। श्री रामकृष्ण बजाज और श्री दामोदर दास मूंदड़ा का जोर है और इन जोरों को अव्यर्थ कर देने की ताकत न शरीर में है न मन में। इसीलिए शान्तिनिकेतन नहीं गया और इसीलिए सिनेमा की कोशिश बढ़ाई नहीं।

तुम्हारा ही

१०-७-४५ भवानी प्रसाद मिश्र

नई दिल्ली

प्रिय भाई,

स्नेह भरा पत्र मिला! बहुत अच्छा लगा। इससे मुझ जैसे आदमी को तो बड़ा बल मिलता है। आलोचकों की निंदा स्तुति तो प्रायः सकारण होती है; जब कभी कोई प्राय: तटस्थ पाठक अपनी प्रतिक्रिया भेजता है तो उससे लाभ ही होता है और फिर आप जैसे रसज्ञ, कलम के धनी और प्रशंसा करने में लगभग कंजूस मित्र से शाबासी मिल जाये तो क्या कहना।

मैं श्रीमनजी से यों तो कल मिला था—लेकिन वह भाई सियाराम शरण की स्मृति में की गई शोक सभा थी। अब मिल लूंगा तो कहूंगा! कल मैं चिरगांव जा रहा हूँ। देहावसान २८ की रात को बल्कि सबेरे साढ़े तीन के लगभग हुआ और गाड़ी घर की थी देह को चिरगांव ले जाया गया! दद्दा वहीं थे! लगभग एकाएक हुआ। मैं १२ को तो मिला था। तब अच्छे थे। प्रभु की इच्छा।

विनीत

३०-३-६३ भवानी प्रसाद मिश्र

नई दिल्ली

प्रिय भाई,

स्वयं प्रकाशन की बात हिम्मत की है और अच्छी है। मुझे तो 'गीत फरोश' संग्रह की रायल्टी एक बार ८७ रुपया कुछ आना मिली थी। न

इसके पहले कोई पेशगी, न बाद में कोई आर्डर। 'चकित है दुःख' के प्रकाशक नये हैं—भले हैं। 'गीत फरोश' के प्रकाशक बहुत भले हैं याने निश्चित किस्म के आदमी हैं। उनके निकट पैसे का कोई मूल्य नहीं है इसलिए दूसरों की जरूरत के ख्याल से किताबें बेचने में दिलचस्पी नहीं है। अपने मानसिक सुख के लिए छापकर डाल भर लेते हैं। प्यार का यह हाल है कि कभी उनसे कुछ कहने का जी नहीं हुआ। तीसरा संग्रह ज्ञानपीठ वालों ने मांग कर लिया था। मार्च ६८ में निकाल देने की बात थी। अभी तक कोई अनुमान ही नहीं दिया। दो-तीन संग्रह तैयार पड़े हैं। सोचता था, यह छाप दिया जाता तो इन्हें देता। खैर। आप शानदार काम कर रहे हैं। ब्रज बाबू को नमस्कार कहना।

विनीत

२९-८-६८ भवानी प्रसाद मिश्र

नई दिल्ली

प्रिय भाई,

'आंखों के हस्ताक्षर' समय पर मिल गई थी। अच्छी छपी है। गलती भी शायद ही कहीं कोई है। इसी में भाई श्रीकांत की कुछ कविताएें और ले लेते तो किताब खण्डवा को याने आज के खण्डवा को ठीक प्रतिबिम्बित कर देती। मुझे भी तब नहीं सूझा। खैर। कल पत्र और 'राष्ट्रवाणी' का अंक मिला। "तुम्हारे प्यार की चौखट को जाकर खटखटाया, तो तुम बोले नहीं लाचार आखिर लौट आया" वाली कविता को तो मैं भूल ही गया था—यह कहाँ मिली आपको। संभव है आपके पास मेरी और भी ऐसी कविताएें हो, जो मेरे पास नहीं हैं! और न कुछ पत्रों को भी आप सहेज लेते हैं। मुझमें ऐसी व्यवस्था होती। लेख स्नेह तो उंडेलता ही है, मुझे प्रकट भी करता है! धन्यवाद दे दूं? दादा पर लिखते सिट्टी-पिट्टी भूल जाता हूँ। कितना क्या मन में है—'खामोशी ही से निकले जो बात चाहिये।'

चि० शिवनारायण और रमेश को स्नेह

विनीत

७-२-६९ भवानी प्रसाद मिश्र

२७६५ नेताजीनगर, नई दिल्ली-२३

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिलने के बाद 'नवनीत' का अंक आया। जब आपने कविता के विषय में लिखा तो मुझे ध्यान नहीं था कि, मैंने कौन सी कविता कहाँ भेजी है। खुशी तो हुई थी; लेकिन जब मैंने अंक आने पर कविता पढ़ी, तो मैंने देखा कि बेशक कविता अच्छी है। मैं कई बार अपनी कविताओं को तटस्थ भाव से देख पाता हूँ। आपका पत्र पाने के बाद आपके सहज सौजन्य के कारण मन में एक लकीर ऐसी भी खींच गई थी कि आप तो मेरी तारीफ ही करते रहते हैं, आप मेरी छोटी-छोटी बातों का खयाल रखते हैं। साधारण से साधारण पत्र भी सहेज कर रख लेते हैं। और उनका मेरे पक्ष में उत्तम से उत्तम उपयोग करते हैं। इसलिए आप अगर मेरी कविता की तारीफ लिख भेजें, तो मुझे ऐसा भी लग सकता है कि प्रेमवश किया है। इस बार आपने जिस कविता की तारीफ की है मैं उसकी तारीफ करना चाहता हूँ। आपके पत्र के बाद मैंने वह कविता कई मित्रों को दिखाई सबको अच्छी लगी। एक अच्छी कविता के प्रति इस प्रकार ध्यान आकर्षित करने के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। इस प्रकार की कविताओं का एक छोटा संग्रह अब 'प्रतिहित' नाम से तैयार करने में लग गया हूँ। यह "आपके पत्र की प्रेरणा !

स्नेह के लिये' कृतज्ञ हूँ।

मित्रों को नमस्कार कहें !

विनीत

२१-११-६९, भवानी प्रसाद मिश्र

२१ राजघाट कालोनी, नई दिल्ली

प्रिय भाई उपाध्याय,

आज आपका पत्र मिला। दिनकरजी का एकाएक जाना बहुत खिन्न और दुखी कर गया है। इस मनःस्थिति में उनके बारे में बोलना भी पड़ता है और लिखना भी पड़ता है। अभी, परिपाटी की तरह शोक-सभाएं हो रही हैं कि कहीं हम पीछे न रह जांय। संस्थाओं की लाचारी। न करें

तो भी मुश्किल है। बोलने वाले इने-गिने होते हैं, उन्हें सब जगह जाना पड़ता है। प्रायः हम दस पांच आदमी जो दिल्ली में दिनकरजी के अभिन्न थे, काम की तरह दुख निवेदन करते फिरेंगे, अच्छा नहीं लगता। मगर रूढ़ियों को निभाना और खासकर ऐसे शिष्ट रूढ़ियों को आवश्यक हो जाता है। आज ही भाई श्री रामजीवन चौबे को पत्र लिखा है, उसमें आपके पत्र का हवाला है। छोटे भाई की बेटी का विवाह मई में है, अभी तिथि निश्चित नहीं हुई है, अगर उसकी तिथि भी २० ही हुई तो लाचार हो जाऊंगा। वैसे मैंने लिख दिया है कि ये तिथि बचाकर विवाह की तिथि निकले। और सब आनन्द हैं।

तुम्हारा

२६-४-७४ भवानी प्रसाद मिश्र

गांधी स्मारक निधि, राजघाट नई दिल्ली

प्रिय भाई,

'मन के मृगछौने' बड़े ही सलोने हैं। मेरे पूरे परिवार ने मुक्त कण्ठ उसको सराहा। कवितायें और अन्य विधायें जो वहां है तुम्हें कितनी अनायास सधी हैं।

कैसे ठीक विचार, कितनी पकड़ के साथ कलम से उतरे हैं। यह नहीं कि इसका मुझे अनुमान नहीं था। मगर एक भी रचना ढीली या कमजोर न हो, किसी एक ही संग्रह में यह कितना कठिन है। यानी लिखा भी डूबकर और चुनाव भी फिर किया तो हर नग को कसौटी पर कसकर। इतने दिन यूं ही नहीं लगा दिए।

किताब जब हाथ में आई तभी तो पढ़ पाया। घर के सदस्य और मेहमान और मित्र सब पढ़ते रहे। आवरण भी ऐसा आकर्षक है कि मन उस तरफ खिचता है। और व्यक्ति पूछता है कि कैसी है और फिर ले जाता है।

सस्नेह

१८-४-८१ भवानी प्रसाद मिश्र

धर्मवीर भारती

निकष (११३)　　　　१९९ अतर सुइया, प्रयाग

प्रिय भाई

आपको एक पत्र लिख चुका हूँ शायद मिला होगा। कल आपके ३ गद्य खण्ड मिले उनमें से एक रख लिया है, 'यदि अखबार न होते'।

निकष का दूसरा अंक दिसम्बर में निकल जायेगा, ऐसी योजना है।

आपसे एक सहायता और चाहूंगा। आप दादा के यहाँ जाकर बार-बार आग्रह कर उनकी पुरानी कापियों और फाइलों में से उनकी कुछ चीजें भिजवाइये—गद्य कृतियां। साहित्य देवता जैसे कुछ छोटे गद्य खण्ड या कुछ कहानियाँ या डायरी के अंश (और विशेषतया डायरी के अंश) यदि उनकी कोई नोटबुक हो जिसमें जो पुस्तकें उन्होंने पढ़ी हैं उनको अपने (imprescins) लिखे हों, तो उसमें से स्वामी रामतीर्थ की संत पूर्णसिंह वाली (Gography) या (papouin) की (The story of christ) पर उनके (impescins) उतार कर जरूर भेजिये।

जब आप मांगने जायेंगे तो दादा बहुत नाराज होंगे, आप उन सबकी परवाह न कर अपनी जिद पर अड़े रहिये और अगले सप्ताह तक कम से कम चार पांच उनकी चीजें जरूर भिजवा दीजिये।

आपका

७-१०-५५　　　　धर्मवीर भारती

१९९ अतर सुइया, प्रयाग

भाई,

मेरा एक पत्र मिला होगा।

'यदि अखबार न होते' वाला अंश रख लिया है। उसे कहीं प्रकाशनार्थ न भेजें।

दादा से कुछ मेटर वसूल किया आपने? मैंने एक खत दादा को लिखा जरूर है, पर भला दादा इन सब छोटी-छोटी बातों का जवाब देने लगें तो सतयुग न आ जाय।

आप उनको मेरा यह उपालंभ दिखा दें और उनकी कुछ चीजें भिजवाएं।

क्या खण्डवा या आसपास के कुछ ऐसे नाम भेज सकते हैं जिन्हें 'निकष' वी० पी० से भेजा जा सके। बात यह है कि इस योजना का निर्वाह तभी हो सकता है जब इसका प्रथम अंक खूब बिक जाय!

सस्नेह

१५-१०-५५ भारती

२२ हेमिल्टन रोड, इलाहाबाद

प्रिय भाई,

अत्यन्त स्थानाभाव के कारण आपका गद्य खंड निकष ३ के लिए रोक लेना पड़ा। आशा है इसे अन्यथा न लेंगे। मेरी लक्ष्मीकांत वर्मा, सुमित्रा नंदन पंत, डा० रघुवंश तथा कई लोगों की कृतियां भी हमें आगे के अंक के लिए रख लेनी पड़ी। निकष ३- में प्रकाशक को घाटा ही हो रहा है अतः वे लोग पृष्ठ बढ़ाने को तैयार नहीं हुए। निकष ३- में हम पहले ही उस कृति को स्थान देंगे। आशा है आप हमारी इस विवशता पर हमें क्षमा करेंगे।

निकष २. शीघ्र ही सेवा में पहुंचेगा।

भवदीय

२४-३-५६ धर्मवीर भारती

'धर्मयुग' बम्बई

प्रिय भाई,

आपसे कुछ चीजें लेने की योजना बना रहा था। सोच रहा था कि खंडवा आऊंगा तो विस्तार से बात करूंगा, लेकिन दुर्भाग्य से तीन-चार बार मैंने खंडवा आने के लिए तैयारियां की लेकिन रुक जाना पड़ा।

आप देख रहे होंगे कि 'धर्मयुग' में हम लोग विशेष लेख के रूप में अपना प्रथम लेख अत्यंत आवश्यक सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर छापते हैं। अभी तो उनमें केवल नागरिक समस्याओं का ही समावेश हुआ है, ग्रामीण समस्याओं के विषय में अधिकार व आत्मीयता

से लिखने वाले लोग हिन्दी में नहीं हैं। इस संबंध में आपकी सहायता चाहूंगा। कृपया लिखें कि उसके अंतर्गत कौन-से विषय उठाये जाएं। उनमें से कितने आप लिखेंगे और कौन-से किन लोगों से लिखवाए जायें। इनका भी सुझाव आप दें। मेरे दिमाग में जो थोड़ी-सी समस्याएं थीं वे इस प्रकार हैं। मसलन, गांवों में छोकड़ों का एक ऐसा वर्ग है जो महीने में एक बार आस-पास के कस्बों में जाता है। वहाँ से फिल्मी गाने और नया फैशन सीखकर आता है और गाँव के वातावरण में एक विचित्र-सा विक्षोभ उत्पन्न कर देता है। उसकी समस्याएं उठायी जा सकती हैं। आज पंचायत और जनतंत्र के प्रयोग होने लगे हैं। लेकिन, उसके प्रयोग करने वालों ग्रामीणों का मन अब भी सामंतवाद, जाति प्रथा, अंधविश्वास, ऊंचनीच आदि के घेरों में फंसा हुआ है। उससे उत्पन्न परिस्थितियों का भी सम्यक आंकलन किया जा सकता है। इसी प्रकार की अन्य समस्याएं भी उठायी जा सकती हैं जो केवल सैद्धांतिक नहीं बल्कि व्यावहारिक हैं और अंतरंग स्तर की है। इनको लिखने की शैली भी वैयक्तिक निबंध जैसी होगी, सैद्धांतिक निबंध जैसी नहीं। इस प्रकार की एक सूची आप बना लें और लिखें। आपके पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

आपका

२२-५-६१ धर्मवीर भारती

'धर्मयुग' बम्बई

प्यारे भाई,

हर बार की तरह इस बार भी अकस्मात् खंडवा जाने का कार्यक्रम बन गया। पिछले दो साल से हर शनिवार को जाने की सोचता रहा और बात टलती गयी।

आपके भतीजे नारायण से भेंट हुई थी, पहले से कार्यक्रम बनता तो आपको लिख देता, दूसरे दिन बलराम पगारे से भेंट हो गयी, यह भी बड़ा सुखद रहा।

मुलाकातें शायद खंडवा फिर लायें। ऐसा कम-से-कम उन्होंने घर भर के बच्चों से वायदा किया। मुझसे वे बहुत से मामलों में अप्रभावित हैं।

वायदा निभाने के मामले में मेरी आदत से अप्रभावित रही तो शायद खंडवा पहुंचे ।

सस्नेह

२-३-६३ भारती

जगदीश गुप्त

मोतीमहल, दारागंज-प्रयाग

मान्यवर भाई श्री उपाध्याय जी,

आपकी भेजी शिवनारायण उपाध्याय की कविताएं सामने हैं। मैं उनकी पहली तीन कविताएं नई कविता के आगामी अंक के लिए विचारार्थ रक्खे लेता हूँ। अन्य कविताओं की अपेक्षा 'एक बरस' अधिक सशक्त लगी। प्रारंभिक अवस्था में यह भी श्लाध्य है।

अभी दो दिन पूर्व भारतीय कला की प्रख्यात विशेषज्ञ स्टैला क्रेमरिश प्रयाग आई थी। मेरे निवास पर आकर उन्होंने मेरे प्रागैतिहासिक चित्रों के संकलन को भी देखा। उनका विचार प्रागैतिहासिक ही नहीं प्रचलित लोकचित्रों के प्रदर्शन का भी है। एक विशेष चित्र प्रदर्शनी वे फिलाडेलफिया (पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय) में आयोजित करेंगी। मैं इस क्षेत्र के लिए लोकचित्र संकलित कर रहा हूँ। आप ऐसा करें कि निमाड़ क्षेत्र के लोक चित्र जिनके लिए एक बार मैं आपको लिख भी चुका हूँ, तथा अपनी पुस्तक में आपने कुछ दिये भी हैं, शीघ्र भेंज दें। यदि वे छोटे रूप में ही बनाये जाते हों तो समाकार प्रतिकृति, यदि बड़े बहुत बड़े लिखे जाते हों तो छोटी प्रतिकृति लगभग एक ड्राइंग पेपर के बराबर भिजवा दें। इसमें यदि स्याही कागज आदि का कुछ व्यय हो तो लिखें। मैं कोई उपाय निकालूंगा। पर यह काम होना ही चाहिए। निमाड़ का प्रतिनिधित्व आवश्यक है।

पूज्य दादा का पूरा हाल लिखें। मेरा उनसे प्रणाम कहें।

बड़ा दिन शुभ हो, ब्राह्मणपुरी वासी को भी।

सद्भाव सहित

२५-१२-६४ जगदीश गुप्त

मोतीमहल, दारागंज प्रयाग

मान्यवर भाई,

'निमाड़ी और उसका लोक साहित्य' की दोनों प्रतियाँ मिलीं। एक प्रति उसी दिन शाम को रघुवंशजी के हाथों में स्वयं दे आया।

मैं इस समय प्रागैतिहासिक चित्रों वाली अपनी पुस्तक के पूजा प्रतीक और धर्म भावना संबंधी अध्याय को लिखने में संलग्न था। आपकी पुस्तक को मैंने मध्यप्रदेश के लोकविश्वासों के प्रचलित रूप को जानने के उद्देश्य से देखा। और यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भित्ति पर चित्र अंकित करने की प्रथा वहाँ अब भी व्यापक रूप से प्रचलित है। तद्यपि प्रागैतिहासिक चित्रों की विषय वस्तु से अब उसका कोई संबंध दिखाना दुष्कर है। शिला-चित्रों में सर्प का अंकन नहीं मिलता पर लोककला में प्रचुर मात्रा में मिलता है। नाग-पंचमी के अवसर पर नागचित्रण के रूप में आपने स्वयं (चित्र नं० २-३) में इसका सप्रमाण निर्देशन किया है। 'सांजी' का ब्रज की 'सांझी' कला से कोई संबंध है क्या ? जिरोती का संबंध जिस 'जरा' से है वह 'जरासंघ' शब्दों में ही उपस्थित है। सूरदास ने 'जरादेवी' कह कर इसका उल्लेख किया है। चंद्रमा विषयक विरह के पद में।

'देहिं असीस जरा देवी को राहु केतु किन जोरहि' वैसे बौद्ध परम्परा में हार्णति नामक एक मातृदेवी की मूर्तियाँ मिलती हैं। पर जिरोती शब्द मुझे 'जरावती' शब्द से विकसित प्रतीत होता है। आपने पृष्ठ ६२ पर प्रागैतिहासिक काल के चित्रो में लोकचित्रों के स्वरूप साम्य का जो निर्देश किया है, वह बहुत कुछ सही है। परन्तु भेद की ओर भी दृष्टि जानी चाहिए उन चित्रों में पौराणिक संदर्भ नहीं मिलता तथा आँखों का चित्रण भी अपवाद के रूप में कहीं-कहीं ही मिलता है। जबकि आपने आँखों के चित्रण को लोकचित्रों में प्राण-प्रतिष्ठा जैसा महत्त्वपूर्ण बताया है। (पृ० ६३) यह निश्चय ही आगे की परम्परा है। इस संबंध में ऐसा सुझाव है कि आप और सामग्री एकत्र करें। मध्यप्रदेश की लोक कला पर यदि एक पुस्तक आप लिखें तो अच्छा हो। केवल निमाड़ तक ही नहीं, उसका क्षेत्र कुछ व्यापक रखें।

अभी इतना ही। दीपावली शुभ हो।

आपका स्नेहाधीन

२-११-६४ जगदीश गुप्त

मोतीमहल, दारागंज-इलाहाबाद

प्रिय भाई उपाध्यायजी,

आपका पत्र, आपका लेख सभी कुछ मिला। प्रतीक्षा कर रहा था कि आपके वे लोकचित्र जब लौट आयें तब लिखूं। अभी स्टैला क्रैमरिश ने उन्हें प्रदर्शन के बाद फिलाडेल्फिया से मेरे पास उन्हें भिजवा दिया है। आपके चित्र मेरे पास सुरक्षित हैं। आप चाहें तो मैं पार्सल कर दूं या कभी आने पर लेता आऊं। आशा है आपने और भी लोकचित्र संकलित किये होंगे। मध्यप्रदेश की लोककला पर आपकी पुस्तक आनी ही चाहिए।

आशा है प्रसन्न एवं स्वस्थ्य होंगे।

विलंब से उत्तर दे पाने के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

स्नेह और सद्भाव सहित।

आपका

१२-८-६५ जगदीश गुप्त

पुनश्चः—मेरी प्रागैतिहासिक कला संबंधी पुस्तक अभी प्रकाशित नहीं हो सकी है।

रानीपुर रोड, बांदा

हे मुदित मुख,

आपके होते हुए उसका रुपया नहीं टूटा। आश्चर्य है। बधाई—बहुत अच्छे लगे कुछ। पाठक जी ने मुझे राह चलते सुनाये। घर जाकर धर्मयुग देखा तो ऊपर आप नज़र आये। किस-किस दिशा में सर मारूं मियां—जीने दोगे चैन से या सिर्फ साहित्यिक बनाकर छोड़ दोगे चरागाह में।

नयी कविता की जगह अब कविता-वृत्त चलाने की सोच रहा हूँ—लिखूंगा सहयोग के लिए। जो उधर है वह तो नहीं मिली कहीं।

सस्नेह

९-११-७१ जगदीश गुप्त

नागवासुकी, प्रयाग

प्रिय भाई श्री;

लोक गीत वाले लेख ने मन को इतना छुआ कि अपनी आँखों की तरलता पर अपने आप ही चकित हो उठा !

आपकी दी हुई अप्रतिम पोथी मैंनें अपने पुस्तकालय में सगर्व सहेज ली है !

परिवार में पहुंच कर सबसे मिल कर छाया-चित्र और भित्ति-चित्र देखकर कितना सुख हुआ क्या कहूं। मैं तो इसी को पाने खंडवा गया था। भाषण तो निमित्त मात्र था। आपकी अभीष्ट पुस्तकें दिल्ली यात्रा से लौटकर ही भिजवा पाऊंगा।

स्नेहाधीन

१४-८-७३ जगदीश गुप्त

प्रभाकर माचवे

१८ हेस्टिंगज रोड, इलाहाबाद

प्रिय,

आपका ता० १७ का पत्र मिला। इधर कई दिनों से 'ग्रामवाणी' नहीं मिली। मैं समझा कि शायद बंद तो नहीं हो गई। यहाँ ६ फरवरी से ही मैं इस नये रेडियो केन्द्र पर आ गया हूँ। हमारे हिन्दी के पत्र और पत्रकार इतने समय से पीछे रहते हैं कि मेरे पते बदलने के समाचार को उन्होंने नहीं दिया और अभी भी कई साप्ताहिक, मासिक वहीं नागपुर पते पर जाते हैं—खो भी जाते हैं। आप 'जवाहर दर्शन' पुस्तक निकाल रहे हैं जानकर प्रसन्नता हुई। नई दुनिया वाला लेख आप अवश्य छापें। कुछ अंतिम अंश संपादित कर दें। वह तो सामयिक तब का लेख था। अब प्रशस्ति पुस्तक में उसे कुछ सुधार कर ही दें। जैसा आप चाहें। 'विनोबा दर्शन' पुस्तक मैंने देखी नहीं। विनोबा से गये साल दिल्ली में इन्हीं दिनों जो बातचीत हुई थी उसी को लेकर लिखना चाहता था। पर समय गये एक वर्ष के धूर्जिप्राय: जीवन में कम मिल पाता है। अप्रैल १५ से जुलाई

१५ तक मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन से छपे शासन शब्द कोष को लेकर सात प्रांतों में पांच हजार मील घूमता संपादन करता रहा। ८ जुलाई को मेरे एक मात्र शिशु 'असंग' (मेरे पहले बालक की मृत्यु हो गई डेढ़ वर्ष पूर्व जिस कारण मैंने भी उज्जैन छोड़ दिया) का जन्म हुआ और माँ और शिशु लगातार बीमार रहते रहे। जुलाई से अक्टूबर तक मैं किसी प्रकार उज्जैन की लेक्चररी गाड़ी ढचर-ढचर चला रहा था जहाँ निरंतर ११ वर्ष सेवा करने पर भी अधिकारियों ने १५० रु० मासिक वेतन ज्यों-का-त्यों रखा था मुंह पोंछने के लिए १८ रु० महंगाई १ साल से देने लगे थे। चीजों के दाम पांच गुना बढ़ गये थे, जीना असंभव था। मैंने अर्जी दी और बम्बई में रेडियो के काम में चुन लिया गया। दस नवम्बर को मैंने तत्कालीन शिक्षा मंत्री (मध्य-भारत) को आवेदन-पत्र भेजा कि कोष कार्य के लिए मुझे १ मास अवैतनिक छुट्टी दें। दो मास तक उत्तर नहीं। मेरे तो मेरे श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और राहुल सांकृत्यायन के पत्रों की पहुंच तक नहीं। १५ नवम्बर को मैंने १ मास नोटिस से त्याग-पत्र दिया। १ मास तक उसका उत्तर नहीं। १५ दिसम्बर को मैं नागपुर चला गया प्रोग्राम असिस्टेंट होकर। ७ जनवरी को १ वाक्य का उत्तर शिक्षा विभाग के किसी मंत्री का मिला कि 'मेरा त्याग-पत्र स्वीकार किया जाता है।' बस ! यों मध्य-भारत, मालवा छोड़ देना पड़ा।

और अब शायद ३ मास मालवे को छोड़ कर हुये। मालवे ने मुझे भुला दिया है। ठीक ही तो है—मैंने उसके लिए क्या किया ? केवल जीवन के १९ से ३० वर्ष की आयु के सबसे अच्छे वर्ष होम कर दिये। एक दर्द अभी भी मन में है और इस कारण ये नये बंधन रेडियो के, सरकारी नौकरी के अपने हाथों ग्रहण कर लिये हैं जिससे पत्र-पत्रिकाओं में लिखने की अनुमति नहीं है। (वेतन अवश्य ३५०) रु० है। काम बहुत अधिक है। फिर भी सर्वोदय पर लिख भेजूंगा—एक सेवाभावी के नाम से—

आपका

१८-३-४९ प्रभाकर माचवे

८०३ स्टेट स्ट्रीट मैडिसन-६ (विसकान्सिन)

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका ८-९ का स्नेह पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई । आपने निमाड़ी लोकगीतों का जो संग्रह किया है वह अवश्य भेजें। श्री एडवर्ड डीमक (२०४ सोशल साइन्सेज, युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, हालिनस) भारतीय लोक कथाओं का एक उत्तम संग्रह अंग्रेजी में छपाना चाहते हैं । आपकी दृष्टि में जो सर्वोत्तम निमाड़ी लोककथा हो (यथासंभव छोटी और अनुवाद करने योग्य) वह शीघ्र भेजिये । चाहे तो उन्हें सीधे या मुझे । आपने पुस्तक जगत, पटना की खूब सुनाई—लोगों को बोलने से फुरसत नहीं, पढ़ेंगे कहाँ ? मेरा तो इधर पढ़ना, ज्यादा हो रहा है, बोलना कम (विशेषत: हिन्दी में) भय है कि आगामी वर्ष जून १९६१ में घर आने पर सार्वजनिक रूप से हिन्दी में बोलना शायद भूल जाऊं । मौनं स्वार्थ साधनम् ।

मेरी लेखमाला 'धर्मयुग' में चालू होगी १४ सितम्बर से, ऐसा आपने लिखा है—पढ़कर अपने मंतव्य भेजें । मेरा कार्य यहाँ सुचारू रूप से चल रहा है । चिंता न करें ।

सब मित्रों को नमस्कार ।

भवदीय

२०-९-६० प्रभाकर माचवे

१२० रवीन्द्रनगर, नई दिल्ली-११

प्रिय श्री रामनारायणजी,

मैं बहुत लज्जित हूँ कि आपने इतने स्नेह से अवेरकर रखी हुई मेरी दो कहानियाँ बहुत पुरानी 'वीणा' की कतरनें भेजी । और बाद में 'धुंधले काँच की दीवार' जैसा उत्तम व्यंग लेख संग्रह भी भेजा। और मैंने पहुंच तक नहीं भेजी । इधर मैं एक सप्ताह भर दिल्ली से बाहर था। आज ही लौटा हूँ । आपके व्यंग बहुत मजेदार हैं, पैने हैं पर चोट करने वाले नहीं हैं । अहिंसक और मौलिक । कई लेखों में आज के यथार्थ का जैसा उद्घाटन हुआ है, देखकर मन बहुत ही प्रसन्न हुआ । आपके निबन्ध मर्म भेदी हैं और हास्य व्यंग की उसी परम्परा को आगे बढ़ाते हैं जिसमें कुट्टिचातन

(अज्ञेय) और भ्रमरानन्द (विद्यानिवास मिश्र) ने हिन्दी के आरंभ निबन्ध विधा की श्री शोभा बढ़ाई थी। इसमें एक साथ एक ग्रामीण की सहजता और निर्व्यंजता और एक नगर की चुटिलता और चतुरता (पैनीदृष्टि) मौजूद है। यह संग्रह, मैं आशा करता हूँ, सर्व साधारण पाठक और विद्वान रसज्ञों द्वारा समाद्रत होगा।

सप्रेम

२८-८-६६ प्रभाकर माचवे

नई दिल्ली

प्रिय रामनारायणजी,

मैं विदेश गया हुआ था पश्चिम जर्मनी। सो आपके 'विंध्याचल' में लिख नहीं पाया। गांधी अंक की सफलता चाहता हूँ। जर्मनो में मुझे पता चला कि १६६६ की गांधी जयती वे धूम-धाम से मनाने जा रहे हैं। वहां के चांसलर की सिंगर उस शताब्दी समिति के अध्यक्ष हैं, प्रो० राईशेल मंत्री। श्री राईशेल के घर मैं गया था। वहीं पता चला कि प्राय: पचास सभाएं वे अक्टूबर १६६६ में जर्मनी में करेंगे। सभी विश्वविद्यालयों के प्राच्य विद्याविभागाध्यक्ष उनकी समिति पर हैं। भारत से श्री दिवाकर उनके पास गांधी जी पर एक फिल्म भेज रहे हैं।

मेरी छोटी पुस्तक 'सौ सवाल, एक जवाब' (राजपाल एण्ड सन्स) आपने देखी होगी। वह गांधी शताब्दी समारोह प्रकाशन क्रम में प्रथम है।

सप्रेम

१७-६-६७ प्रभाकर माचवे

१२० रवीन्द्र नगर, नई दिल्ली-३

प्रिय भाई,

१७-३ का पत्र मिला। साथ में १८-३-४६ का पत्र पढ़कर गद्गद् हो गया कि आपने इतने वर्षों चिट्ठी, मुझ नाचीज की, इंदौर की रखी कमाल है।

संघर्ष तो आजीवन चलता रहता है। आज भी यह समाप्त नहीं है।

तुकाराम ने कहा था 'रात्रं दिन आहा युद्धाचा प्रसंग।' अच्छा ही हुआ आपने नाम-वाम हटा दिये। लड़ाई नामों से नहीं उन कामों से है जो सृजनशील साहित्य को आज भी जकड़े हुए हैं। जैनेन्द्र के विचार की भूमिका में मैंने दो पंक्तियां लिखी थी १९३७ में—आज भी नई हैं।

'बंध से मांगने गया मुक्ति
मुक्ति ही वन गया नया बंध।'

अगले साल ५८ का हो जाऊंगा रिटायर हो जाऊंगा। पेंशन नहीं है। कलम की मजदूरी जमी रहेगी।

सप्रेम

२३-३-७५ प्रभाकर माचवे

कलकत्ता

प्रिय रामनारायणजी,

'बख्शीसनामा' मिला। वाह, क्या कहने हैं! पढ़ते-पढ़ते मजा आ गया। हिन्दी में अब रम्य-विनोद प्रायः गायब हो गया है। एकदम काटने वाले डंक भरे व्यंग्य हैं। या घिसी-पिटी (पी० जे०) (पूवर जोक्स)। आपकी लेखनी में अब भी लाजमी है। भगवान करे ऐसी ही मस्ती बनी रहे।

आपका स्नेही

२७-३-८० प्रभाकर माचवे

रामचन्द्र शुक्ल

काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रिय भाई उपाध्यायजी,

आपका पत्र दिनांक २१-१२-६० तथा पुस्तक 'सुख के नाम पाती' मिले। अनेक आभार। आप अपने साहित्य साधना में निरन्तर लीन रहते हैं। और नई कृतियां प्रस्तुत करते रहते हैं यह देखकर बड़ा सुख और सन्तोष होता है। कृतिकार का वातावरण आज के जमाने में कितना दुःसाध्य है, यह देखकर और भी आश्चर्य होता है कि कैसे आप इतना कुछ

कर लेते हैं? आपके दृढ़ कदमों को आगे बढ़ते देखकर प्रेरणा मिलती है।

आपके द्वारा अभी बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण लिखा जाना है। नये वर्ष के उपलक्ष्य में मैं अपनी हार्दिक शुभकामनायें व बधाइयाँ प्रेषित करता हूँ। पुस्तक को पूरी तरह देखकर मैं पुनः आपको लिखूंगा।

आपका

२६-१२-६० रामचन्द्र शुक्ल

जी ३५ न्यू कालोनी, वाराणसी-५

प्रिय उपाध्यायजी, नमस्कार।

आपका कार्ड दिनांक २२-८-६५ का मिल गया। बड़ी प्रसन्नता हुई यह जानकर कि 'माध्यम' में प्रकाशित मेरा लेख आपको पसंद आया। आपकी कुछ रचनाएं मैंने पहले भी देखी हैं और मेरा ध्यान उन पर गया था पर अभी तक आपकी पुस्तकें देखने का सौभाग्य नहीं हो पाया। मुझे प्रसन्नता होगी उन्हें भी देखकर!

मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है जब हिन्दी में मैं लोगों को कला पर लिखता देखता हूँ। हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य की बड़ी कमी है। मैंने भी थोड़ा-बहुत जहाँ तक मुझसे हो सका प्रयत्न किया है। अभी-अभी मेरी एक पुस्तक 'कला का दर्शन' कोरो आर्ट प्रकाशन जीमखाना क्रिकेट क्लब के सामने मेरठ से प्रकाशित हुई है। मेरे पास पुस्तक इस समय नहीं है। आपको यदि मौका लगे तो उसे भी देख लेना। हो सकता है उसमें आपको कुछ और भी विचार मिलें। वैसे लोककला में मुझे काफी रुचि रही है। काशी में काशी शैली के नाम से हमने लोक कला के आधार पर चित्रकला की एक नवीन शैली ही विकसित की थी। यदि आप कुछ प्रश्न के रूप में सामने रखें तो उस पर विचार किया जा सकता है। वैसे आपने तो इस विषय पर विशेष अध्ययन किया है। मैं तो आधुनिक कला को ही अधिक समय दे सका हूँ। हो सकता है आपके विचारों से मुझे भी विशेष प्रेरणा मिले। आजकल तो युद्ध की खबरों के आगे सब बंद है फिर भी कला का

कार्य तो कुछ-न-कुछ करता ही रहता हूँ।

आपका

२५-६-६५ रामचन्द्र शुक्ल

जी ३५, अरविन्द कॉलौनी, बी० एच० यू०, वाराणसी-५

प्रिय उपाध्यायजी,

आपके द्वारा भेजी गई नई-ताज़ी तथा सुगंधित पुस्तक 'मन के मृग छौने' मिली। बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत-बहुत धन्यवाद।

इधर थोड़ी व्यस्तता के कारण पत्रोत्तर में देरी हुई क्षमा करेंगे। पुस्तक के पन्ने पलटते ही और मृग छौने की कुलाँचें देखते ही मन प्रस्फुटित हो गया तथा स्फूर्ति और उत्साह से भर उठा। एक सांस में सब कुछ पढ़ता ही चला गया। एक रचना समाप्त करते ही दूसरी पढ़ने की इच्छा और उत्कंठा बढ़ती ही चली गई। पढ़ने के बाद ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी खूबसूरत रंग-बिरंगे फूलों वाले बाग में घूमकर निकला हूँ और प्रफुल्लता तथा सुगंध से संपूर्ण शरीर तथा मन भरा उठा हो।

रचनाएं अत्यंत निर्मल, पवित्र तथा प्रेरक हैं। ऐसा लगता है जैसे लेखक ने अपना चाँद-सा कवि हृदय चाँदनी के रूप में उड़ेल कर रख दिया है और पाठक का हृदय प्रांगण धवल प्रकाश से भर उठा हो।

ऐसी मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी रचनाएं प्रस्तुत करने के लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ हर सिंगार का यह वृक्ष ऐसे ही हरा-भरा रहकर अनेक दिनों तक देश के विस्तृत प्रांगण में अपनी खुशबू बिखेरता रहेगा।

आपकी ही पंक्तियां दुहराने को जी चाहता है···'अगर कहीं पर्वत है, तो निश्चित मानिये, आस-पास कहीं नदी भी होगी, बिना हृदय में गहरा दर्द संजोये, कोई इतना ऊंचा उठ नहीं सकता।'

अनेक शुभकामनाओं के साथ

आपका

१६-१-७६ रामचन्द्र शुक्ल

जी-३५ अरविन्द कालोनी, काशी हिन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रियवर उपाध्यायजी

नमस्कार ! आपका स्नेहसिक्त पत्र मिला था। मैं इन्तजार कर रहा था कि आपकी नई पुस्तक मिल जाए तो पत्र लिखूं पर वह अभी तक तो नहीं मिली। मिल ही जायेगी। मिलने पर अपने विचार अवश्य लिखूंगा।

इतने दिनों बाद आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे प्रति आपका इतना स्नेह देखकर मन आत्मीयता से भर उठता है। स्नेह और सहानुभूति साहित्य और कला की आत्मा है, इनके बिना साहित्यकार अथवा कलाकार मात्र कलम अथवा तूलीका का मजदूर होता है। उसे मजदूरी मिल सकती है रसानंद नहीं। रसानंद के बिना आदमी जानवर होता है। इस समय जानवरों की संख्या बढ़ती जा रही है और यही स्थिति रही तो मानव सभ्यता तथा संस्कृति ही नहीं स्वयं मानव भयावह खतरे में पड़ जायगा, ऐसी स्थिति में आप जैसे साहित्यकारों का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है और आप बहुत कुछ कर सकते हैं। आप में अदम्य स्नेह की शक्ति है। आप चाहें तो बंजर भूमि भी हरितमा बन सकती है। स्वार्थ धरती का मरुस्थल है और स्नेह उसके बीच से बहती अजस्त्र धारा—गंगा।

साहित्यकार गंगा की सृष्टि कर भगीरथ बन सकता है और आप निश्चय ही उसी पथ के अनुगामी है—आप से बहुत आशायें हैं।

सस्नेह

२४ अप्रैल १९७८ रामचन्द्र शुक्ल

जी ३५ अरविंद कालोनी, वाराणसी-५

प्रियवर उपाध्यायजी,

आपका पत्र दिनांक १८-५-७९ को मिला था। मैं इस बीच लखनऊ, कानपुर, दिल्ली, आगरा, पटियाला, इलाहाबाद, गोरखपुर आदि अनेक जगहों पर रहा। वाराणसी तो परसों लौटा, आजकल गर्मी की छुट्टी चल रही है। अभी फिर ६ जून को बिहार जाना है।

इसके पूर्व मैं उज्जैन, इन्दौर का भी चक्कर लगाकर आया था।

इन्दौर जाते समय खण्डवा में रुका भी था एक रात। आपकी बड़ी याद आई थी पर रात में आपसे मिल न सका। सुबह बस से इन्दौर चला गया। अगली बार जब भी उधर जाना हुआ, तो आपको पहले ही पत्र लिख दूंगा।

आपके ६२ वें जन्मदिन के लिए मेरी अनेक शुभ कामनायें। इस आशा से कि आपका सृजन कार्य बराबर चलता रहे। आपने इस ६२ वर्षों में हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ दिया है और आगे भी हमें आपसे बड़ी अपेक्षा है। जिसे निष्ठा और त्याग अपेक्षा से आपने साहित्य की साधना की है आज की दुनिया में कम ही देखने को मिलता है। चमक दमक से लोग बहे जा रहे हैं और मानवीय गुणों से शून्य होते जा रहे हैं। ऐसे समय आप जैसे साधु साहित्यकारों से ही आशा की जा सकती है कि समाज को सही दिशा प्रदान करें। आप इस कार्य में लगे हुये हैं इससे बड़ा संतोष मिलता है। मैं भी अपने से भरसक जो भी हो पाता है करते जा रहा हूँ। इधर हमने कला के क्षेत्र में भारतीय आधुनिक कला को नया मोड़ देने के लिए 'समीक्षावाद' के नाम से एक कला आन्दोलन चलाया है। इसे हम भारत में आधुनिक भारतीय कला का प्रथम आन्दोलन कहते हैं। भारतीय कला को विदेशी प्रभाव की आँधी से बचाकर मौलिक मार्ग पर ले चलने का प्रयास है। इसके अन्तर्गत हमने दिल्ली में जनवरी मास में नये चित्रों की प्रदर्शनी की थी। जिसकी चर्चा अनेक पत्र पत्रिकाओं में हुई है। 'धर्मयुग' तथा कादम्बिनी में भी लेख प्रकाशित हुये हैं। आपने देखा होगा।

शेष सब ईश्वर की दया है।

सप्रेम

३१-५-७९ रामचन्द्र शुक्ल

जी-३५ अरविंद कालोनी, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

प्रियवर उपाध्यायजी,

आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं। काफी दिन गये जब खंडवा में कुछ क्षण आपके परिवार के बीच रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। जो स्नेह आदर और अपनत्व वहाँ रहकर मुझे मिला था, वह क्षण भूल नहीं सका। कितना स्नेहसिक्त वातावरण है वहाँ का। आपके मृदु-व्यक्तित्व

का परिचय मुझे पहली बार मिला। किन्तु उसकी सुवास आज भी बनी हुई है।

आपको हर समय हर परिस्थिति में हँसते और अहसास करते देख बड़ी ईर्ष्या होती है आपसे। मुझे आपके मधुर स्वभाव से बड़ी-प्रेरणा मिली। कभी काशी आयें और दो चार दिन हम लोगों के साथ रहें। बड़ी प्रसन्नता होगी हमें। आपसे मिल बैठकर साहित्य और कला पर चर्चा होगी। मज़ा आ जायेगा।

मैं इधर काफी घूमता रहा। पटियाला, ग्वालियर, दिल्ली, मेरठ, बरेली, इलाहाबाद, लखनऊ, पटना। अब कल से कालेज खुल रहा है। व्यस्तता बढ़ जायेगी।

इधर क्या साहित्य का निर्माण हो रहा है लिखें। समीक्षावाद पर कुछ लिखने वाले थे।

क्या कुछ कर रहे हैं।

भाभीजी को मेरा प्रणाम कहें।

सादर

२-७-८० रामचन्द्र शुक्ल

नरेन्द्र कोहली

दिल्ली

प्रिय उपाध्याय जी,

मेरा पिछला पत्र मिला होगा, और 'दीक्षा' की प्रति भी। इधर मैंने आपकी भेजी हुई सारी सामग्री में से राम-संबंधी आपके निबंध पढ़ लिए हैं। उससे मुझे राम एवं सीता व अन्य लोगों के संबंधों के प्रति जन-धारणा को समझने में पर्याप्त सहायता मिली है। राम के कृषक रूप को बताने वाला उड़िया लोक-गीत, मेरे अपने काम की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। उचित स्थान पर उसका प्रयोग भी करूंगा।

इस सारी सामग्री को जुटाने के लिए आपका आभारी हूँ। अमृतलाल जी नागर के बाद आप दूसरे व्यक्ति हैं जिन्होंने आगे लिखने के संबंध में

इस प्रकार सामग्री विषयक सहायता की है। कृतज्ञ हूँ।

आपकी पुस्तक भेंट स्वरूप आई है, अतः रख ली है; किन्तु एक निबंध तो आपकी फाईल से निकला हुआ लगता है। यदि आपको आवश्यकता हो तो आपके निबन्ध लौटा दूं। संकोच न करें। स्पष्ट लिखें।

आपके मध्यप्रदेश सरकार द्वारा दिए गए पुरस्कारों का समाचार पढ़ा। कृपया मेरी विनीत बधाई स्वीकार करें। कामना है कि आप भविष्य में और अधिक सम्मानों के पात्र हों।

शेष कुशल।

ठीक होंगे।

आपका

२१-५-७६ नरेन्द्र कोहली

एस-३६२ ग्रेटर कैलाश I नई दिल्ली-४८

प्रिय उपाध्याय जी,

आपका स्नेह तथा प्रोत्साहन से भरपूर पत्र प्राप्त हुआ। आभार। 'दीक्षा' की प्रशंसा के पश्चात 'अवसर' को मैंने बड़े शंकित मन से पाठकों के सम्मुख रखा था। भय था कि कहीं 'दीक्षा' की रोचकता के सामने 'अवसर' की वैचारिकता पाठक को चिढ़ा न दे। किंतु आपके विचारों से आश्वस्त हुआ। वैसे तो 'अवसर' अक्तूबर में ही बाजार में आ गया था। किंतु यह संयोग है कि न तो अभी तक उसकी कोई समीक्षा प्रकाशित हुई है और न ही मुझे किसी का कोई अभिमत प्राप्त हुआ है। जिन लोगों का अभिमत मेरे लिए मूल्य रखता है, उनमें से सबसे पहले आपका पत्र ही मिला है। आप कल्पना कर सकते हैं, कि ऐसे में मुझे आपके पत्र से कितनी राहत मिली होगी। मैं आपके प्रति आभार किन शब्दों में व्यक्त करूं?

आपका व्यंग्यकार और निबन्धकार रूप में मेरे लिए अपरिचित नहीं हैं। अपनी पुस्तकों की सूची भेजकर आपने बड़ी कृपा की है। उससे आपके विषय में और अधिक जानने की इच्छा बढ़ी है।

ठीक होंगे।

आपका

१०-१२-७६ नरेन्द्र कोहली

एस० ३६२, ग्रटर कैलाश I नई दिल्ली-४८

प्रिय रामनारायणजी,

आपका पत्र तथा लेख मिला। आभार।

आपने मेरे लेखन को जो महत्व और स्नेह दिया, उसके लिए मैं किन शब्दों में अपना आभार ज्ञापित करूं—यह समझ नहीं पाता।

राम नवमी के दिन आपने मुझे स्मरण किया, यह मेरा सौभाग्य है। आपके प्रणाम के योग्य नहीं हूँ। अपना आशीर्वाद दें कि जो काम उठाया है, उसे सफलतापूर्वक पूर्ण कर सकूं।

कुछ अपने मन की स्थिति और कुछ प्रकाशक के आग्रह से, इस बार तीसरा और चौथा खंड प्रायः समानांतर ही चल रहा है। दोनों के ही काफी अंश लिखे गए हैं। इन दिनों किस्किंधा कांड की घटनाएं चल रही हैं। अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियां मेरे मन में बार बार किस्किंध को जीवित कर देती है। तो सोचा उसी को पहले लिख लूं।…जल्दी में मैं भी हूँ और मेरा प्रकाशक भी। किन्तु मेरा विवेक मुझे बार बार जल्दबाजी से मना करता है। जब तक कृति में अपेक्षित स्तर और गंभीरता न आ जाए, उसे प्रकाशित करना कृति के साथ न्याय नहीं होता। इसलिए जल्दी होते हुए भी मैं उस पर पूरा श्रम करना चाहता हूँ।

आपकी उत्सुकता मेरे लिए प्रेरणा है। यदि आप लोगों का इतना स्नेह न मिला होता तो कदाचित् 'दीक्षा' के पश्चात ही मेरा साहस जवाब दे जाता। किंतु अब तो इतना आगे बढ़ आया हूँ कि न लौटने का अवकाश है, न रुकने का।

अपना निबंध भेजने के लिए आपका विशेष कृतज्ञ हूँ। रामकथा के ऐसे विभिन्न रूप मेरे मन के आशय को और भी दृढ़ करते हैं। रामकथा के अंतिम भागों के लिए आदिवासियों की रामकथा विशेष महत्त्व की अधिकारिणी है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि न्याय के लिए केवल वह लड़ सकता है जिनके जीवन में विलास को स्थान नहीं मिला। आदिवासी तब के हों या आज के—ये न्याय युद्ध के अग्रिम पंक्ति में लड़ने वाले सैनिक हैं। आपने यह निबंध भेजकर बहुत अच्छा किया।

मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई।
आपका स्नेह मेरी स्थाई संपत्ति है। ठीक होंगे।

आपका
२-४-७७ नरेन्द्र कोहली

एस-३६२ ग्रेटर कैलाश-I नई दिल्ली-४८

प्रिय उपाध्यायजी,

पत्र मिला। आभार।

आपने तो प्रशसा का ढेर ही लगा दिया। भई ऐसी कौन-सी बात हो गई।

मैं घरेलू जीव हूँ। परिवार में ही प्रसन्न रहता हूँ और परिवार में ही रहना चाहता हूँ। मेरा तो दफ्तर है ही नहीं। खैर···

हमें आपका आना अच्छा लगा। हम चाहते हैं कि आप फिर दिल्ली आएं—अधिक समय लेकर आएं और हमारे साथ अधिक समय बिताएं।

'युद्ध' का काम बड़ी मंथर गति से हो रहा है—आशा है शीघ्र प्रवाह आएगा।

ठीक होंगे।

आपका
२५-४-७७ नरेन्द्र कोहली

वीरेन्द्रकुमार जैन

इंदौर

भाई मेरे

सस्नेह !

तुम्हारा पत्र मिला। इसके पहले भी खत मिला था। पर उत्तर कहाँ दे पाया। अपनी लज्जा को क्या कहूँ। पर अभिशप्त ही जो ठहरा मैं। मैं तो जिन्दगी में निरा बेहोश चलता हूँ। आगे पीछे आस-पास का कुछ भी तो ध्यान नहीं रहता। पहले सिरे का निकम्मा और लापरवाह आदमी हूँ मैं। मैं नहीं चाहता कि तुम मुझे माफ़ करो।

बात असल में यह है कि मेरे काम ने मुझे और भी निकम्मा बना दिया है। इधर जुलाई से जैन अकादमी का काम शुरू हुआ है। मेरा पौराणिक रोमांस (एक उपन्यास) अब पाँच महिनों में जाकर किनारे लग रहा है। नाम पता नहीं क्या होगा। जैन पुराण के आधार पर अंजना और पवनञ्जय की कथा उसमें उतरी है। कारण पुराण, तो केवल रेखाएं भर देता है बाकी तो सारा काम अपना ही है। करीब तीन सौ पृष्ठों का उपन्यास होगा। सच मानो रामनारायण इस किताब को लिखने में मैंने मेरा रक्त निचोड़ दिया है, पर कृति सफल होगी या नहीं, अन्तर्यामी ही जानता है। यदि यह उपन्यास फेल हुआ तो मुझे मर्णान्तिक धक्का लगेगा। दिन-रात अनेक संदेह, विकल्प पीड़ित करते रहते हैं, तिस पर पुस्तक का निर्माण अपनी खुराक मांगता है। समस्त प्राण को निरंतर मथ कर पात्र अपना स्वरूप पा रहे हैं और उसके बाद सफलता-असफलता का प्रश्न-चिन्ह लगा ही है। सृजनात्मक काम के कारण जीवन इतना अधिक अंतर्मुखी हो गया है कि बाहर की डोर मेरे हाथ से छूट गई है। इसी से बाहर के कार्यों के प्रति मुझसे घोर अवज्ञा का अपराध बन रहा है। पत्रोत्तर देने में मैं यदि चूक जाऊं तो अन्यथा न समझना।

तुम्हारा आत्मीय भाव-तुम जैसे दुर्लभ जीवन संगियों का निष्कपट, सहज, स्नेह भाव ही मुझ अकिंचन की आत्म-निधि है। प्रतिभायें, मित्रतायें, महानतायें बहुत देखी पाई हैं, पर अंतरंग के ऐसे निर्मल सहचर बिरल ही पा सका हूँ। निर्मल जलधारा सी तुम्हारी सरलता, पारदर्शिता और आत्म-दानशीलता मेरे हृदय को मुग्ध किये हुए है। गाँवों और ग्रामीणों को मेरे वंदन। भाई शिवनारायण को स्नेह। जब चाहो खत लिखना।

तुम्हारा

१४-११-४४ वीरेन्द्र कुमार जैन

विले पारले

प्रिय रामनारायण,

तुम्हें अनन्त प्यार, ता० १४-५-५१ का लिखा तुम्हारा कार्ड जवाब देने को आज सामने है। अपने इस दुर्भाग्य को क्या कहूं ? महज़ मेरी हवाई

आवाज से तुमने मुझे अपनी आत्मा के साथ तदाकार पाया, इससे बड़ा आनन्द मेरे लिए इस मर्त्यों की धरती पर क्या हो सकता है । दूसरे मेरे कठोर मौन के बावजूद सदा से जिस निरपेक्ष और आत्म भाव से तुमने मुझे प्यार किया है, वह भी इस जगत में एक अलभ्य वस्तु है । सच पूछो तो मैं तुम्हारे इस अगाध प्रेम के चरणों की धूल होने योग्य भी नहीं हूँ । इतनी ही और विनती मेरी है कि मेरी सारी लाचारियों के बावजूद तुम मुझे कभी गलत न समझना और अपने प्यार का यह अतुल बल मेरी दुर्बल पीठ के सहारे के लिए सदा रहने देना ! तुम जैसे दो-चार बिरले जनों ने ही जीवन में मुझे शक्ति की सौगत दी है । इस बात का मन में बड़ा खेद है कि तुम्हारी कोई सेवा मुझसे कभी न हो सकी । खैर, वह तुम जानते हो । एक बार तुम्हारे घर आने की बड़ी इच्छा है । देखो भगवान कब बुलाते हैं ।

सस्नेह

२९-७-५१ वीरेन

विलेपारले, बम्बई

प्यारे भाई,

तुम्हारा ६-६-५६ का प्यार में भींगा,···आत्म-विभोर पत्र मिला था । तुम्हारे उस स्नेहाभिषेक के सम्मुख क्या बोलता । मौन विनत हो गया था ।···

भाई वह कविता मेरी समस्त सत्ता का निवेदन होकर भी, मुझसे, मेरे व्यक्ति से उत्तीर्ण होकर, जैसे अपने आप में एक निर्व्यक्ति वाणी होकर रह गई हो, ऐसा ही कुछ घटित हुआ है । वह भगवान बुद्ध के प्रति मेरी ही नहीं, आज के मानव समस्त की अन्तरतम की पुकार थी, जिसने मुझ अकिंचन को अभिव्यक्ति का माध्यम होने का गौरव दे दिया ।···ढेरों पत्र आये हैं ।

बात काफी साहसिक थी, और जानता था मैंने काफी बड़ा खतरा उठाया है । यदि 'धर्मयुग' का साधन मुझे सुलभ न होता और पं० सत्य-काम जी कविता के विचारों से पूर्णतः सहमत न होते तो और कोई मौजदा

पत्र-पत्रिका उसे छापने को भी राजी होते या नहीं, इसी में मुझे सन्देह था। लेकिन प्यारे भाई, तुमसे कुछ विरल स्नेहियों की बाहें जो चारों ओर से मुझे दिशाओं की तरह थाम कर उठा देने को उत्सुक-तत्पर हैं, स्नेह के इस अनुरोध को कौन-सी शक्ति दबा सकती है।

जानता हूँ पहले ही दिन से मेरी विचार धारा तुम्हारे मन के बहुत निकट रही है। मेरी हर बात, तुम्हें अपनी सी लगी है। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है सम्पूर्ति है। 'रूमालों का मौसम' भी तुम्हें बहुत भाया था। मुझे याद है।

भाई अक्सर तुम्हारे पत्रों के उत्तर नहीं दे पाता। गलत तो नहीं समझते ? नाराज तो नहीं हो जाते ? नहीं हो जाते न। जानता हूँ। कितने अच्छे हो तुम अभी भी जब से तुम्हारा पत्र आया और बधाइयों के कई पत्र आये पर उत्तर तुरन्त लिखने योग्य समय मैं अपने इस गुलाम यांत्रिक जीवन में नहीं जुटा पाया। भीतर-भीतर मन दुखता रहता था। अब दो दिन से घर पर बीमार पड़ा था तो आज तुम्हें लिखने का सुयोग, बीमारी ने ही दे दिया। १० जून के 'लीडर' में बुद्ध कविता पर बालकृष्ण राव का नोट पढ़ा ? सानन्द हो न ?

भाई शिव, भाई नारायण की कवितायें मिलीं। पसन्द है। तुम्हारे लेख तो 'धर्मयुग' कदाचित ही लौटाता हो।

स्नेह

२५-६-५६ वीरेन

गोविन्द निवास, सरोजनी रोड, विले पारले (पश्चिम) बम्बई ४०००५६

प्रिय भाई,

१०-५ का तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। पिछली दो खंडवा यात्राओं में तुमसे मिलन न हो सका, यह खलिश मन में रह गई। बस गुजरा भर खंडवा से। आश्चर्य हुआ कि भोपाल में तुम आमंत्रित नहीं थे। वहाँ तथा-कथित युवा लेखकों की फालतू भीड़ ही अधिक थी। कई म०प्र० के साधक साहित्यकार अनामंत्रित रहे। मैं अशोक को लिखूंगा इस बारे में क्योंकि आगे भी ऐसे जल्से होते रहेंगे।

'सुख के नाम पाती' पुस्तक मुझे तब मिली थी जब मैं मृत्यु-शैया पर था। मेरा सम्पूर्ण नाड़ी भंग हो गया था : विक्षिप्त हो गया था। मेरे श्री गुरू ने मेरा परित्राण कर मुझे नवजन्म दिया है। यानी एक अपूर्व शक्ति-शाली नया जीवन मैंने आरम्भ किया है। वह बात मिलने पर होगी। मेरा नया कविता संग्रह 'शून्य पुरुष' ज्ञानपीठ से हाल ही में निकला है। १० प्रतियाँ मिली थीं—मेरे पास तो अब नहीं है। खंडवा में किसी से लेकर, कृपया उसकी भूमिका पढ़ना। उसमें अपने पुनरुत्थान की कथा लिखी है।

तुम्हारी यह पुस्तक पढ़कर चकित रह गया। ऐसा Sharp और समर्थ सचोट गद्य हिन्दी में विरल ही मिलता है। तुम्हारे व्यंग के जीनियस ने कई ख्यातनामाओं को मात कर दिया है। क्योंकि तुम्हारे व्यक्तित्व में एक निस्पृह चारिमिकता है। स्वस्थ होने के बाद से इतना व्यस्त होता जा रहा हूँ कि बहुत चाह कर भी तुम्हें लिख न सका। भगवान महावीर पर एक उपन्यास लिख रहा हूँ। बहुत कुछ नया होगा। 'सुख के नाम पाती' गुम कैसे होती; सुरक्षित है। हिन्दी के इस अराजक माहौल में ऐसी उत्कृष्ट कृतियों का सही मूल्यांकन नहीं होता। गुटबाजियों के जाल फैले हैं।

खंडवा आने की सोचते ही पहला आकर्षण होता है तुमसे मिलने का। बरसों से नहीं मिले। अब तो अनेक संभावनाएं हैं मिलने की। जल्दी ही मिलना होगा इसी वर्ष में। मुक्तिबोध लेख का उत्तरार्ध भी निकल गया। तुम्हें लेख पसंद आया मेरा सौभाग्य। और कोई नई किताब तुम्हारी? बहुत प्यार लेना।

तुम्हारा

१८-५-७३ अपना वीरेन

गोविन्द निवास-सरोजनी रोड, विलेपारले (पश्चिम)

बम्बई-४०००५६

प्रिय रामनारायण,

इंदौर से लौटते ही घोर व्यस्त हो गया। तुम्हारे पत्र का उत्तर बराबर मेरे मन में गूंज रहा था। दे पाऊं इससे पहले ही फिर तुम्हारी प्यार की पुकार आ गई। आज कौन किसी को पुकारता है। तिस पर तुम तो निरे 'आत्मा' हो।

इस बार उधर आने की परम सार्थकता यह रही, कि बरसों बाद तुम्हें देख सका, तुम्हारे व्यक्तित्व का वृहत्तर हो गया। प्रभामण्डल देख सका। तुम भी तो वैसे ही तरोताज़ा हो। शाश्वत चैतन्य तो शुरु से ही हो।

तुम्हारी-सी परिहास-मुद्रा यहाँ खोजे नसीब नहीं। साथ दो घंटे बैठें, तो दो नाश्ते और एक खाने की भूख भरपूर लग जाये। एकाध घंटे के मिलन में ही खासा जश्नों-महेफिल हो गया। मेरा सौभाग्य कि भाई शिवनारायण भी आ गया। कितने अपने लगते हो तुम सब। चिरन्तव—-आत्मीय, जनम-जनम के संगी।

'कुंकुम कलश' पढ़ने को आतुर हूँ। पर उपन्यास द्वितीय खण्ड-प्रेस में है। अंतिम चार अध्याय लिखने में अटूट व्यस्त हूँ। १५ अप्रैल तक फुरसत पाने पर जमकर दोनों किताबें पढ़ूंगा। फिर लिखूंगा ही तुम्हें। तुम्हारे कृतित्व-व्यक्तित्व पर कभी संस्मरणात्मक ढंग से डायरीनुमा कुछ लिखूंगा। या पत्र Form में। देर होगी अभी। तुम मेरी किताबें खरीद लाये! कितना प्यार, एकात्मक भाव और सद्भाव है तुम्हारा मेरे प्रति! अतिशय कृतज्ञ भाव से भर आया। शिव को प्यार देना। शुभ रहो। शायद मई में खण्डवा में तुम्हारे साथ जमने का प्रोग्राम है। दो-तीन दिन का। एवमस्तु।

तुम्हारा

२८-३-७५ वीरेन भाई

गोविन्द निवास-सरोजनी रोड, विलेपारले (पश्चिम)
बम्बई-४०००५६

प्रिय रामनारायण,

चौथाई सदी बाद शायद खण्डवा में, हम एक बदली हुई दुनिया में मिले। फिर भी लगा कि वक्त हमारे बीच में नहीं आ सका है। हम-तुम वहीं हैं। यह क्या कम उपलब्धि है मानव-संबंध की? यही तो भगवान को जीवन में जीना है।

नारायण भी सचमुच नारायण-मूर्ति अनुज है तुम्हारा। और वह चिरंजीवी भी एक और नारायण है। और मेरी पू० भाभी, तुम्हारी सहधर्मिणी भी साक्षात नारायणी जैसी। मैं एक बड़े अनुभव से गुज़रा

तुमसे मिलने में। और आखिरी वक्त तक दादा के जवाहरगंज में गूंजते तुम्हारे ठहाके।

'मन के मृगछौने' में कई कविताएं ऐसी हैं, जो अपने आप में एक निराली काव्योपलब्धि है। यह एक ऐसी किताब है, जिसका मूल्यांकन विशुद्ध कविता के रूप में होना चाहिए। क्योंकि कविता जहाँ है इसमें, वहाँ वह एक अलग इमेज खड़ी करती है तुम्हारी कवि के नाते। यदि इसकी कोई ईमानदार समीक्षा करे, तो एक विलक्षण काव्य-चेतना के रूप में इसकी चर्चा हो सकती है। इसमें बहुत कुछ ऐसा है, जो कविता नहीं है, काव्यात्मक गद्य है। यानी फ्लैट है। फिर भी इसमें जो अल्पअंश शुद्ध काव्य का है, वह आस्वाद्य और विचारणीय है।

तृतीय खण्ड पर काम करना है। सो कुछ छुटपुट काम निपटाने में भिड़े रहना होता है। द्वितीय खण्ड तुम्हें इंदौर से भिजवा दूंगा। तुम सब उसे पढ़ोगे, तो मैं कृतज्ञ हूंगा। इंदौर वालों को लिखा है, वितरण के विषय में चर्चा करने शायद वे तुम्हें बुलायें। कुछ हो तो करना। इंदौर वाले मानदेय देंगे ही—यानी क़ायदे की नियमित अर्थ-व्यवस्था। देखना, कुछ हो तो।

तुम्हारे काव्य में नये आलोक की खिड़कियां खुली हैं। तुम्हारे कविता में प्रकृत जीवन 'मृग छौने' सा खेल रहा है। अच्छा तुम सब प्यार लेना। यहाँ आने वाले थे न ?

तुम्हारा
वीरेन भाई

२०-१-७६

गोविन्द निवास-सरोजिनी रोड, विलेपारले
बम्बई-४००,०५६

प्रिय रामनारायण,

रमा वाले लेख पर तुम्हारी आत्मीय अनुशंसा पाकर सार्थकता अनुभव हुई। उसी अंक में मुझ पर तुमने जो लिखा है, उसमें मेरे पुराने पत्रों के ऐसे उद्धरण हैं, जिन्हें पढ़कर स्तम्भित रह गया। उनमें मेरे जीवन और सर्जन की एकात्मकता, उनके बीच की टकराहट, संघर्ष और यातनानुभवों का एक पूरा क्रमिक विवरण हाथ आ जाता है। अद्‌भुत है तुम्हारा

आत्मोपमभाव, और दूसरे में रस लेने की अकुण्ठ क्षमता। यही तो एक बड़े रचनाकार का लक्षण है। तुम वह हो, यह तर्कातीत है।

० ० ०

नेमी भाई (तीर्थंकर) खण्डवा में तुमसे मिलते ही होंगे। ऐसा समझो कि इस वक्त तुम उनके लिए वीरेन भी हो रहना। वह तुम हो सकते हो, अन्यत्र दुर्लभ है। तुम देखोगे कि खण्डवा में वे सुखी-प्रसन्न, सक्रिय रहें। तुम्हारा दायित्व है। 'तीर्थंकर' के स्थायी सहयोगी, उन्नायक तुम्हें रहना है। नेमी इस वक्त बहुत अकेले पड़ गये हैं। जैन-जगत से तुम अपरिचित नहीं। तुम हम लोग जैन-ब्राह्मणातीत विरादरी हैं। उनमें खप नहीं सकते।

० ० ०

'अनुचर योगी' दोनों खण्डों को तुम्हारे प्रकाशन के विक्रय क्षेत्र में प्रसारित कर सको, तो भारी काम होगा। तुम्हारा प्रकाशन विक्रय-तंत्र सक्रिय है। उसी में यह सहज शामिल हो सकता है। इन्दौर वाले अपनी ओर से कोई विक्रय संगठित नहीं कर रहे, करना भी नहीं चाहते। पुस्तक स्वत: जो बिक रही है, उसी से वे संतुष्ट हैं। यह दुखद है। मैं पीड़ित हूँ इस दूर्व्यवस्था और अवज्ञा से। अपना-अपना भाग्य। प्यार लेना। घर में भाभी को प्रणाम, भाई शिवनारायण तथा उनके चिरंजिवी (नाम भूल गया) को स्नेह-स्मरण।

तुम्हारा

१९-७-७६ वीरेन भाई

ठाकुरप्रसाद सिंह

३६० राजेन्द्र नगर, लखनऊ

प्रिय श्री उपाध्याय,

प्रसन्न होंगे।

स्मरण हैं आप। अभी-अभी सम्मेलन पत्रिका में निमाड़ी लोक गीतों पर आपका लेख देखा था। वह काफी बढ़िया लगा था। पहले निमाड़ी लोकगीतों का संग्रह देखा था। सम्भव हो तो पढ़ने का अवसर दें। अन्य

रचनाओं की प्रतीक्षा है। लोक गीतों पर काम करने वाले हर व्यक्ति पर मेरा मन टिका रहता है। आप मुझे याद रख रहे हैं इसके लिए अलग से आभारी हूँ। क्या एक बार खण्डवा आने पर उन क्षेत्रों में जाना सम्भव हो सकता है? मेरी उधर घूमने जाने की कब से इच्छा है।

और समाचार तो देंगे ही।

हाँ, मेरा एक कहानी संग्रह 'चौथी पीढ़ी' तथा बच्चों की एक पुस्तक 'कठपुतली' प्रकाशित हुई हैं। कई नाटक संग्रह छप रहे हैं। कविताएं भी सोच रहा हूँ किसी तरह छप जाएं।

और सब ठीक ही है।

आपका

१६-११-५७ ठाकुर प्रसाद सिंह

रॉयल होटल, लखनऊ

प्रिय श्री रामनारायण उपाध्याय,

आपका पत्र मिला और रचनायें भी। आपको विद्यानिवास का 'स्नेह पाती' लेख अच्छा लगा। इससे मन प्रसन्न हो उठा। वे अमेरिका में हैं और आप खंडवा में। पर मेरा मन तो आप लोगों के पास दौड़ रहा है।

आप प्रसन्न होंगे।

आपका

१६-२-६१ ठाकुर प्रसाद सिंह

लखनऊ

प्रिय श्री रामनारायणजी,

प्रसन्न होंगे। आपका पत्र मिला। मन प्रसन्न हो गया। कभी-कभी याद कर लेते हैं तो ऐसा लगता है जैसे जीवित हूँ। 'ग्राम्या' क्या समाप्त हो गई? आप लोगों की निगाह ही गुम हो गई। देखें आप लोगों के दर्शन कब होंगे? इधर मेरी दो-तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और यों भी छुट-पुट कुछ लिखता ही रहता हूँ। मित्रों को प्रणाम कहियेगा।

आपका

९-६-६३ ठाकुर प्रसाद सिंह

लखनऊ

प्रिय श्री रामनारायणजी,

प्रसन्न होंगे। आपकी पुस्तकें आने के साथ ही यथास्थान पहुंचवा दीं गयीं तभी आपका एक पत्र और मिला, असीरगढ़ की कटिंग के साथ जिसका आभार स्वीकारता हूँ। खण्डवा में आपने सपरिवार मुझे जिस स्नेह से घेरा उससे मुझे अपार प्रसन्नता हुई। जैसे एक घर के लोग, एकदम एक घर जैसे। मैंने पत्नी से कहा और वे चाहती हैं कि इस बार यात्रा में वे भी मेरे साथ रहें। ऐसा लगता है कि यह यात्रा सितम्बर में ही हो जायेगी और अगर हो गयी तो एक बार फिर शोर-गुल मचाने के लिए हम लोग एक-साथ होंगे। भाइयों को, बच्चों को तथा पत्नी को मेरी याद दिलायें और स्नेह कहें।

आपका

२७-८-६६ ठाकुर प्रसाद सिंह

लखनऊ

प्रिय श्री रामनारायण जी,

आपका पत्र और फिर आपकी पुस्तक दोनों से ही सुख मिला। 'हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़िया'—यह चिड़िया तो पहचानी हुई है, पूरब के बगीचों में होती है। आपको कैसे मिल गई। आपको देखने का मन तो मेरा भी बहुत दिनों से हो रहा है, देखें कब सौभाग्य मिलता है।

आपका

१९-४-७८ ठाकुर प्रसाद सिंह

कुबेरनाथ राय

नलबारी कालेज (असम)

श्रद्धेय भाई उपाध्याय जी,

दुर्गापूजा की छुट्टियों के बाद यहाँ आने पर आपका कार्ड मिला। पढ़कर प्रसन्नता हुई कि 'सम्पाती के बेटे' आपको पसन्द आई। निबन्ध के नायक गिद्ध दम्पति असमिया नहीं है। ये मेरे गांव (मतसा, पो० देवरिया,

जिला गाजीपुर, उ० प्र०) के खलिहान में स्थित एक पुराने पीपल पेड़ पर निवास करते हैं। गतवर्ष की दुर्गापूजा के अवसर पर घर पर ही इस निबन्ध को लिखा था। ठीक एक वर्ष बाद प्रकाश में आया। निबन्ध पढ़ने का शौक आम जनता में नहीं है। अतः इनके प्रकाशन में काफी समय लग ही जाता है।

प्रैस वालों की कृपा से कई जगह इसमें पूर्ण विराम, कामा और उद्धरण चिह्न का अर्धांश छूटता गया। अन्तिम पैरा में एक वाक्य में 'गढ़ी' के स्थान पर 'गढ़े' छप गया है। 'माध्यम' के अन्य लेखों में भी यह बात देखने में आती है। खैर।

आपकी ज्ञानपीठ वाली पुस्तक को मैं फिर पढ़ूंगा। यों पुस्तकालय में उसे एक बार उलट-पुलट कर देख चुका हूँ। आपके नाम से मैं पूर्णतः परिचित हूँ। एक लेखक के हिसाब से। अक्सर आपकी चीजें 'ज्ञानोदय' आदि श्रेष्ठ पत्रिकाओं में आती रहती है। 'वृहत्कथा के खोये हुये छह भाग', मेरे सामने है। आपकी सूक्ष्म और परिष्कृत व्यंग शैली से मैं प्रभावित हूँ। आपका पत्र पाकर मुझे परम सन्तोष हुआ कि, मेरी रचना से एक सुधी और समझ-बूझ वाला तो प्रभावित हुआ। अनेक बेसमझों से यह 'एक' अधिक मूल्यवान है।

मेरी कोई पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। यों पचासों निबन्ध छोटे बड़े पत्रों में निकल चुके हैं। इनमें ललित निबन्धों की संख्या १० है। इधर मैं 'सरस्वती', 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग' में प्रायः लिखता हूँ।

हाल की चीजों में गत अगस्त के ज्ञानोदय में एक ललित निबन्ध है। 'निर्गुण नकशे सबुज श्याम धरती'। गत २६ सितम्बर के 'धर्मयुग' में ईलियट पर एक लेख है और गत १० अक्टूवर में एक टिप्पणी है।

मैं आपके मत से सहमत हूँ कि, साहित्य की मानसिक और बौद्धिक स्तर की उच्चता की जांच निबन्धों द्वारा ही होती है। हिन्दी में इसकी सबसे कम पूछ है।

आपका

२०-१०-६५ कुबेरनाथ राय

नलबारी (असम)

श्रद्धेय भाई उपाध्यायजी,

आपके द्वारा प्रेषित "गरीब और अमीर पुस्तकें" मिली। आपका हृदय कितना स्नेहशील है, इसका अंदाज इसी से लग गया कि आपने इतना शीघ्र मुझे अपना बना लिया।

आपकी पुस्तक को पाते ही एक सांस में कालेज के एक Off period में बैठा-बैठा पढ़ गया। ऐसी पुस्तक ही नहीं कि दूसरे दिन के लिए छोड़ी जाय। रूपकों से तो बेहद प्रभावित हुआ।

आपकी पुस्तक के कवर पर आपकी जन्म तिथि है १६१८ ईस्वी। सो आप तो गुरुजन हैं। मुझसे सीधे-सीधे १७ वर्ष जेठे।

यह जानकर और संतोष हुआ कि एक परिपक्व मन (Mature mind) को मेरी चीज पसंद आई। पहले मैं आपको लेखन और शैली के कारण बिलकुल नई पीढ़ी का मानता था। मेरे प्रति स्नेह के लिए मैं क्या कहूँ—'सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई। देख पूर विधु बाढ़ई जोई' बस इतना ही।

आपका

१२-११-६५ कुबेरनाथ राय

नलबारी

प्रिय उपाध्यायजी,

आपके द्वारा प्रेषित 'धुंधले-काँच की दीवार' को रसपूर्वक पढ़ गया। भाई तारीफ नहीं कर रहा हूँ—सच्चाई कह रहा हूँ कि सहज गद्य का ऐसा नमूना प्रायः देखने को नहीं मिलता। सिद्ध लेखनी प्राप्त है आपको। आपकी कृतियाँ उस परम्परा में आती है, जिनमें तुलसी, कबीर, रहीम, प्रेमचन्द और मैथिली शरण गुप्त आते हैं। विदग्धता नहीं सहजता और सप्राणता इन्हीं पूर्व महाजनों की भाँति आपकी लेखनी का भी धर्म है। मैं विदग्धता का विरोधी नहीं। पूर्ण जीवन में विदग्धता (यानि सूरसागर और कामायनी) की उतनी ही जरूरत है जितनी सहजता की। पर आज के युग में जब सहजता का लोप हो रहा है, जब सहजता के नाम पर दूसरों

के चीथड़े बटोरना ओर कृत्रिम रूमानी नागरिकता लादना ही साहित्य धर्म बनता आ रहा है। एक ऐसे-कृतिकार को पाकर जो 'गरीब और अमीर पुस्तकें' तथा 'धुंधले काँच की दीवार' जैसी कृतियां देता है बड़ा ही सन्तोष का एक, शान्ति का अनुभव होता है। लगता है कि साहित्य अब भी जीवन से विछिन्न नहीं हुआ है। और भाई व्यंग निबन्धों के अतिरिक्त आपके रूपकों का तो रंग ही और है। मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि वे हिन्दी गद्य के Classic हैं। ईमानदारी का तकाज़ा है कि यह तथ्य स्वीकार किया जाय।

मैंने मार्च '६६' में 'सरस्वती' में 'सहज' हिन्दी बनाम सरल हिन्दी की समस्या पर पर एक लेख 'पुराने मुर्दे, नये प्रेत' लिखा था। उसमें एक स्थल पर आपके नाम का भी मैंने उल्लेख किया है। इधर एक दूसरा लेख Prose Style की सहजता के आयामों पर लिख रहा हूँ। उसमें आपके कुछ रूपकों से उद्धरण देना चाहूंगा। उस निबन्ध को 'आलोचना' या 'कल्पना' में भेजने का विचार है। आशा है आप इसकी अनुमति देंगे।

मेरा इधर 'ज्ञानोदय' जून में एक लेख 'निर्वासन और नील कण्ठी प्रिया' आया है। संभवतः विजयादशमी अंक में 'धर्मयुग' में मेरा एक लेख आयेगा। 'राघवः करुणोरसः' एक और लेख भी स्वीकृत है—'हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध' 'माध्यम' में 'चण्डीभान' बहुत दिनों से स्वीकृत होकर पड़ा है। देखें, उसका उद्धार कब होता है।

आपका

२५-७-६६ कुबेरनाथ राय

नलबारी

श्रद्धेय भाई उपाध्याय जी,

आपका स्नेह भरा कार्ड मिला।

नई पीढ़ी साधना करने से कतराती है। वह "यातना भोग" का नारा लगाती है। पर यातना जैसी निराला ने भोगी, वैसी भोगने की न तो उनके पास क्षमता है और न रुचि। कुछ लोग तो मुझे बड़े अशिक्षित जैसे लगे। बहुत उछाले गये व्यंग्यकार भी बहुत हलके लगे। उनके पास न तो

गहरी अनुभूति है और न 'डेप्थ आफ लर्निंग' ही है। वे बहुत कुछ कलम घसीट जैसे हैं।

खैर हम लोगों की तो कोई बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं। इसीलिए कोई मंच मिले या न मिले, कोई फोरम मिले या न मिले मैं ज्यादा परेशान नहीं होता···तब भी मन में कभी-कभी होता है कि उचित परिवेश और अवसर मिलने पर कुछ पराक्रम दिखाने का मौका मिलता।

आशा है आप प्रसन्न होंगे। एक प्रार्थना है पत्र में 'आदरणीय' की जगह 'प्रिय' ही लिखा करें। 'वन्दे' की आवश्यकता नहीं। यदि 'आशीर्वचन' लिखने में संकोच करें तो 'सस्नेह' ही काफी है। उम्र का तो लिहाज करना ही पड़ेगा। आखिर हम लोग 'हिन्दुस्तानी' हैं।

भवदीय

१०-१-६७ कुबेरनाथ राय

नलबारी

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका पत्र मिला। आपके पत्र आने के पूर्व ही बारह निबन्धों का अनुबंध 'ज्ञानपीठ' के साथ कर चुका था। नाम अंतिम निबन्ध 'निर्वासन' और "नील कण्ठी प्रिया' के आधार पर 'प्रिया नीलकण्ठी' ही दे दिया है। इस निबन्ध में क्रियेटिव्ह प्रोसेस की थीम का संकेत है। प्रतिभा एवं पार्वती (नीलकण्ठी) है जो जीवन का निरंतर गरल पान करती रहती है—मंगल की सृष्टि के लिए कवि के निर्वासन का विष उस नीलकण्ठी प्रिया के ध्यान स्पर्श के द्वारा दूर होता है यही निबंध का थीम है। ज्ञानोदय में ६५ में ही निकला था। ज्ञानोदय का मार्च अंक मिला होगा 'एक नगर नागफनियों का' छपी है। पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया लिखेंगे। इसी आकार और स्तर की दो और कविताएं हैं—(१) 'महावल्ली पुरम' (२) 'बसंत के स्वागत में'।

तीनों का एक संग्रह छापना चाहता हूँ। पर छापने से पूर्व इस कविता पर के रिएक्शन्स देख लूंगा। सिर्फ तीन कविताओं का संग्रह।

कविता तो कोई पढ़ता नहीं। जब तक 'इस्टेब्लिस्ड नेम' न हो।

पचास, साठ कविताओं के संग्रह में भी पाठक प्रारम्भ की सिर्फ दस कविताएं पढ़ते हैं। इसी को देखते हुए इसी प्रकार की तीन कविताओं का एक संग्रह यदि मित्रों ने कहा तो निकलवाऊंगा।

ललित निबंधों का एक छोटा सा और संग्रह अपने पास हो जायेगा जबकि सारे स्वीकृत निबंध छप जायें तो।

इस काव्य संग्रह का नाम रखना चाहता हूँ 'विरुपाक्ष' या 'तीसरी आँख' दोनों में एक। कविता पर आपकी प्रतिक्रिया जानना चाहूँगा। मेरा मैदान तो गद्य है। कविता तो प्रासंगिक उत्पादन ही समझिये।

भवदीय

१५-३-६७ कुबेरनाथ राय

नलबारी

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

आपका 'गांधी दर्शन' मिला। साथ ही बन्धु युगल की काव्य पुस्तक भी। उनको अलग से पत्र लिख दिया है।

'गांधी दर्शन' आद्योपांत पढ़ गया। 'धम्मपद' जैसा लगा। इसे बीसवीं सदी का धम्मपद कहूं तो यह उचित ही होगा। धम्मपद से यह जरा भी न्यून नहीं है। गांधीवांगमय सागर को मथकर आपने जो यह नवनीत प्रस्तुत किया है उसके लिए देश का धन्यवाद पाने के अधिकारी हैं।

मैंने इसे 'धम्मपद' जानबूझकर कहा। गीता नहीं कहा। वह इसलिए कि आप लगता है कि एक विशेष रास्ते को ही पकड़ सके हैं और गांधीवाद के कुछ संस्कारों को, गांधी वचनों की कुछ तीखी उक्तियों को जो मोह भंग के बाद स्वातंत्र्य युग में गांधी मुख से निःसृत हुई थी, आपने छोड़ दिया है।

और इसे छोड़ देने का एक अच्छा फल हुआ है कि पुस्तक सबके हाथों में दी जा सकती है। और इसका प्रभाव यदि पड़ेगा तो अच्छा ही पड़ेगा। नहीं तो तटस्थ न्यूटरल। परन्तु उन उक्तियों को जो गांधीवाद के तीखेपन को व्यक्त करती हैं दे देने से पुस्तक 'गांधी दर्शन' की एक ढकी हुई दिशा का संकेत कर देती है अधिकपूर्ण होती परन्तु तब वह 'सर्वजन उपादेय'

नहीं होती ।

आज के राजनीतिक युग में जब धर्म-ईमान और भाषा सभी राजनीति के मोहरे हैं तो गांधीजी के तीखे वाक्य, ध्वंसात्मक बुरे उद्देश्यों के लिए समिधा के रूप में प्रयुक्त हो सकते थे। अतः पुस्तक का प्रभाव बुरा भी होने की आशंका थी। इसी से आपने जो किया ठीक किया।

मैं गांधीवादी नहीं। पर गांधीवाद विरोधी नहीं। गांधीजी ने जो कुछ कहा, उसे मैं 'करेक्ट बट इन कम्प्लीट' अपूर्ण सत्य कहकर स्वीकार करता रहा हूं। यह सत्य है। अतः इसका खण्डन नहीं करता, पर चाहता हूँ इसके अगल-बगल की ओर कुछ बातों पर दृष्टिपात कर लिया जाये। साथ ही मनुष्य स्वभाव और इतिहास के सनातन तथा मौलिक तन्तुओं पर भी दृष्टिपात कर लिया जाये।

खैर ये सब अवान्तर बातें हैं। मेरी इन बातों से न तो गांधी जी का महत्व घटता है और न पुस्तक का। अतः संकलन निकाल कर आप सर्वथा बधाई के पात्र हैं।

ज्ञानोदय में 'देहवल्कल' देखा होगा। इधर कुछ लिखा नहीं। ६ अप्रैल धर्मयुग में 'महाश्वेता रात्रि'। देहवल्कल में कहीं भी जर्नलिस्टिक एंगर नहीं।

आपका

२-१-६९ कुबेरनाथ राय

नलबारी

प्रिय भाई,

आपने जिस विशाल सदृदयता से मेरी पुस्तक की समीक्षा 'ज्ञानोदय' में प्रस्तुत की है, वह अपने में अतुलनीय है। लगता है मेरा जितना कृतित्व है, उससे अधिक मित्रों की शुभाकांक्षा मिलती है। 'धन्यवाद' शब्द तो अंग्रेजी आधार पद्धति के कारण अपना अर्थ ही खो बैठा है। अतः इस शब्द का उच्चारण न करना ही ठीक है। पर मैं आपके स्नेह से अभिभूत हूँ— अधिक क्या कहूँ।

इधर 'विरूपाक्ष' और 'तमोगुणी' दो निबन्ध 'उद्धत ललित' की

दिशा में प्रयत्न थे। तमोगुणी मेरा Cynical चेहरा है। और वह भी हम सबके व्यक्तिव में कहीं न कहीं मौजूद ही है। तथा उसका सम्बन्ध भी हमारी सत्ता से 'जैविक और प्राणिक' (Organic and vital) किस्म का ही है।

पर मेरा व्यंगार्थ तो आप समझ ही गए होंगे कि मैं अपनी हिन्दुस्तानी जाति के लिए स्वास्थ्य, मजबूती और विस्तृत आकाश यही तीन चाहता हूँ। विशेषत: विरूपाक्ष का अंतिम अंश ध्यान से देखेंगे।

मेरे और दो निबन्ध आयेंगे ज्ञानोदय और धर्मयुग में। ६ माह के भीतर कभी भी। 'वेणुकीचक' और 'आदिम अभिसार' 'रस आखेटक' संकलन की Mss ही नहीं बना पाया इतना कार्यव्यस्त रहा और रहता हूँ। अन्यथा ज्ञानपीठ उसे लेकर छापने को तैयार है।

यों किसी और से बात भी नहीं की। पर 'ज्ञानपीठ' ही यदि तैयार है तो और किसी से क्या बात करूं, इनकी प्रचार की मशीनरी भी कम तगड़ी नहीं। मुझे साहित्य से पैसे की न तो लालच है, और न आशा है। मैं अपने को कहीं कौने में ही सही स्थापित कर लेना चाहता हूँ। बस यही।

आशा है कि आप सबाल गोपाल सबन्धु सानन्द होंगे।

आपका

११-७-६६ कुबेर नाथ राय

नलबारी

प्रिय उपाध्यायजी,

पुस्तक 'जिनकी छाया भी सुखकर है' प्राप्त हुई। यदि आप अपने गदहे को घोड़ों की पांत में रखकर खीर खिलावें तो बेचारे गदहे को क्या एतराज हो सकता है? मुझे अपने को उस पांत में पाकर ऐसा ही कुछ अनुभव हुआ। अधिक क्या कहूं!

'रस आखेटक' नामक संकलन रजिस्टर्ड बुक पोस्ट रूप में जा रहा है। बहुत कुछ आपके द्वारा पढ़ा हुआ है। शायद एक तिहाई आपकी नजर से न गुजरा हो। किताब के अंत में ४-५ मुख्य अशुद्धियों की लिस्ट दी गई है।

कृपया पढ़ने के पूर्व करेक्ट कर लेंगे। विराम चिह्नों के ऊपर भूलें छप गई हैं। स्वयं मौजूद था नहीं। ऐसे-तैसे बिन प्रुफ देखे ही लोगों ने छाप दिया। मेरे दोनों संकलन इन लोगों ने बड़ी असावधानी से छापे हैं। यूं इस बार गेट अप वगैरह अच्छा है।

भवदीय

३०-९-७०

कुबेरनाथ राय

नलबारी

भाई उपाध्याय जी,

आपकी ४-१-७१ की चिट्ठी आज २३-१-७१ को मिल रही है। इस बीच मेरा पत्र आपको 'सुख के नाम पाती' के संबंध में मिला होगा। 'वीणा' के संपादक ने अपने एक पत्र में इस पुस्तक को और आपको याद किया है—काफी अच्छे शब्दों में आपका गद्य 'बासमती चांवल मंह-मंह सुगंधित महकता है वैसा ही सादा शुभ्र और सुगंधित। आपका व्यंग्य मिश्री की छुरी है और आपके रूपक बड़े ही अनुभूति दीप्त हैं। गद्य के अन्दर ऐसे सस्कार प्रायः दुर्लभ हैं। और आज ? आज तो भाषा को जान-बूझ कर सरल के नाम पर कृत्रिम बनाया जाता है। कभी-कभी तो पूरा वाक्य पढ़ जाने पर भी; शब्दों का अर्थ ज्ञात हो जाने पर भी, 'अनुभव' (जो व्यक्त किया गया है) पकड़ में नहीं आता और आता भी है तो रेखा चित्रों या छाया चित्रों सा जिसमें एक ही रंग का प्रयोग हो और सारी सीनरी एक भूतों का संसार सा बन जाये। ऐसी सरल भाषा लिखने से लाभ जो Concreteness खो दे, जो रंगांध हो जाये जो असल abstract हो जाये, अक्सर नई कहानी या अकहानी में ऐसी भाषा चल रही है Monochromic speech। ऐसे लोगों की निगाह में आपकी सादी और सहज भाषा जानी चाहिये। पर वे महापुरुष तो दूसरों की चीजें पढ़ते ही नहीं। इधर एक बड़ा-सा रिर्पोर्ताज लिखा था—'यमद्वारे महाद्वारे'। मेरी इच्छा है कि कुछ रिर्पोर्ताज और लिखूँ आसाम के संबंध में। सवाल उठता है प्रकाशन का। लिखूं पर लोगों को पढ़ने का अवसर न मिल पाया तो

श्रम भी हुआ और वक्त भी गया। मन में तो बहुत कुछ है पर लिखने का अवसर और छपाने का सुयोग १०% को ही मिल पाता है। शेष ९०% विस्मृति के गर्त में चला जाता है। उसी में जो हो पाता है वही हो जाता है। चल रहा है किसी तरह से खें खाँ करके।

आपका

२३-१-७१ कुबेरनाथ राय

नलबारी

प्रिय भाई,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। मैं स्वयं लज्जित हूँ कि बहुत दिनों तक आपको कोई पत्र नहीं दे पाया। कुछ नया लिखने को नहीं रहता है, क्या पत्र दें! अपने लोगों का जीवन कुछ इस प्रकार है उसमें कुछ भी घटित नहीं होता और घटित भी कुछ होता है तो ऐसा ही होता है कि उसे चुपचाप पी जाने में ही शालीनता है। प्रेम की क्षमता तो कभी थी ही नहीं, लगता है कि क्रुद्ध होने की क्षमता का भी लोप हो जावेगा। इतना अधिक मिथ्याचार चारों ओर गाँव, घर, देहात और देश में घटित हो रहा है इसकी चर्चा करना निरर्थक है। क्यों चर्चा की जाए? सभी को तो उसे प्रत्यक्षत: भोगना पड़ ही रहा है तो फिर उस भोगी जाती हुई अपनी व्यथा के लिए विशेष आग्रह क्या करना? अवश्य ही इसका कोई हल हो, कोई मुक्ति मार्ग हो तो चर्चा अवश्य करेंगे। पर वैसा कुछ अपने हाथ लगा नहीं है। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि सारा देश जैसे-जैसे वामपंथी idiom भोगता जायेगा वैसे-वैसे भीतरी मानसिक आत्मिक स्थिति और विकृत होती जायेगी।

मेरी चौथी किताब है 'निषाद योग' उसका mood कुछ भिन्न है। इसमें १३-१४ ललित निबंध हैं और १३-१४ सादे निबंध (उसी के एक सादे निबंध का abridged form प्रकाशक ने अपनी पत्रिका में छापा है उसकी करतन भेज रहा हूँ। पढ़ कर आगे बढ़ा दीजियेगा, जो कोई मिले कवि हो लेखक हो, मास्टर हो, पत्रकार हो जो समझ-बूझ सके। उसे भी पढ़कर आगे बढ़ा देने का आग्रह कर दीजियेगा।

मेरी पाँचवीं किताब होगी—यक्ष मृदंग या पाहुननामा (नाम बदल भी सकता है) शुद्ध ललित निबंध पर Pt. of View इस बार दर्शन और काव्य नहीं anthropology भाषा विज्ञान। 'पुन: चण्डीथान' (वीणा जनवरी में) की तरह के निबंध। 'पुन: चण्डीथान' न पढ़े हों तो अवश्य पढ़ें। किताब का नाम भी दें—अभी वैसा खास कुछ ठीक कर नहीं पाया हूँ। अभी तक पांडुलिपि नहीं भेजी है। कुछ लेख पत्रों में स्वीकृत हैं। ये संपादक लोग बड़े हैरान करते हैं इनके मारे मेरी पुस्तकें ६ मास या १ साल देर करके निकल पाती हैं। समय और परिश्रम इतना नहीं कि दो-दो MSS बना सकूं।

और सब ठीक ही है। आशा है कि आप भी सबाल गोपाल प्रसन्न होंगे।

भवदीय

१२-४-७३ कुबेरनाथ राय

नलबारी (असम)

भाई उपाध्याय जी,

आपकी भेजी पुस्तक मिली गत सप्ताह में। प्रथम प्रभाव बड़ा ही मनोरम रहा। न केवल मनोरम बल्कि बौद्धिक श्री से मंडित। इधर मैं स्वयं अपनी शैली और तकनीक में लोक संस्कृति के आहरण के फेर में हूँ (मेरी नवीनतम पुस्तक 'निषाद बांसुरी' इस तथ्य को उपस्थित करेगी जो ज्ञानपीठ द्वारा छप रही है) और इस अवसर पर इस पुस्तक का पा जाना लक्ष्मी का भंडार पा जाने जैसा है। व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए। मैं हिन्दी भाषा में मागधी की शैली या अर्ध मागधी संस्कारों (अर्थात् भोजपुरी, अवधी, मालवी, छत्तीसगढ़ी, निमाड़ी आदि के संस्कारों) का सबल प्रतिनिधित्व चाहता हूँ। भीतर भीतर मेरी चेष्टा यही रही है। इससे हिन्दी का metalic धातुमय ठनकता टकसाली रूप खंडित होगा और प्रतिष्ठित होगा। धीरे-धीरे मृण्मय प्राणमय हरित श्यामल रूप। टकसाली खड़ी बोली ठनकती चाँदी है पर उसमें प्राण को नहीं जन्माया जा सकता। प्राण जन्माने के लिए खड़ी बोली में मागधी के संस्कारों को प्रतिष्ठित करना

होगा। इस दिशा में आपकी दो पुस्तकों 'निमाड़ी लोक गीत एवं निमाड़ी लोक संस्कृति' का कितना महत्त्व है इसे कहने की आवश्यकता नहीं। आपने इस पुस्तक को लिखकर हम सब को कृतज्ञ किया है। आप एक संग्रह प्रकाशित करें—निमाड़ी लोक कथाओं का जिन्हें आप अपनी भाषा में निमाड़ी का रस सुरक्षित करते हुए उतारें। सारे देश का कल्चरल Revival जरूरी है। उत्तर भारत की असली संस्कृति उर्दू तथा गजल कल्चर के प्रभाव से पथरा गई है जो क्षमता संपन्न वर्ग है वह उसे गँवारू मानकर रोज गाली दे रहा है, नृत्य गीत वाद्य को भोगकर वह भी कुत्सित भोग की वस्तुएं हो गईं। वे भांडों की चीज मान ली गईं। वास्तविक सांस्कृतिक जीवन से हम एक उधार कृत्रिम तहजीब के मूर्खतापूर्ण अनुकरण के कारण विछिन्न हो गए हैं। पश्चाताप का विषय है कि देश की सरकार राजनैतिक सांप्रदायिक कारणों से देशी लोक-संस्कृति को दबाने वाले इस तत्व को ही प्रोत्साहन दे रही है। ब्राह्मण और क्षत्रिय सांस्कृतिक विरासत से शून्य होकर इसी कृत्रिमता को ओढ़े रहेंगे। उनसे मैं कुछ आशा नहीं करता। आशा करता हूँ निम्न वैश्य और शूद्र से जो लोक संस्कृति को अब भी विरासत की तरह संभाले चल रहे हैं। पर इस वर्ग के पास खाने को नहीं—पहनने को नहीं अतः इसका गीत मरोणोन्मुख है तथा इस वर्ग में जो पढ़ लिख जाता है वह उसी कृत्रिम शहरी culture का दास हो जाता है क्योंकि आज कोई कहने वाला नहीं है कि मत फेंक—मत फेंक जिसे तू फेंक रहा है, वह हीरा है।

इधर दो-चार निकले हैं जो इस बात को दृढ़ स्वर में कहना शुरू किये हैं और उन दो-चार में मेरे प्रिय बंधु श्री रामनारायण उपाध्याय भी हैं जो परम संतोष एवं गर्व का विषय है।

मेरी चौथी पुस्तक 'विषाद योग' प्रकाशित हो गई है, 'विषाद बांसुरी' की छपाई काशी में शुरू है। लगता है कि साहित्य के दिन लद गये, इसी से कुछ लिखने की इच्छा नहीं होती, किन्तु अपने मानसिक संतुलन के लिए कुछ न कुछ लिखना पड़ता है।

भवदीय

२१-१-७४

नलबारी

प्रिय एवं आदरणीय भाई,

आपका कृपा पत्र मिला। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी Creative Urge (क्रियेटिव्ह अर्ज) इसी प्रकार साहित्यिक 'परिवार नियोजन' के प्रति विद्रोह करती रहे। कागज के अभाव के युग में भी।

पुस्तकों के बारे में पढ़कर कुछ कहूंगा। यो मैं उनकी क्वालिटी के सम्बन्ध में विना पढ़े भी आश्वस्त हूँ। आपकी कलम से कभी भी घटिया माल नहीं निकला है। और अव, जब जीवन के अनुभव परिपक्व होकर गाढ़ 'मधु' बनते जा रहे हैं। घटिया या मिलावट कहाँ से होगा। यह सब तो प्रारम्भिक स्तर में होता है और उनके संदर्भ में घटित होता है जिनके पास वस्तुतः जिनीयस कुछ नहीं।

आज तो सभी स्वीकार करते हैं कि मध्य प्रदेश में दादा माखनलाल चतुर्वेदी के बाद सर्वश्रेष्ठ गद्यकार दो ही हैं। सटायरिस्ट, ह्यूमरिस्ट श्री रामनारायण उपाध्याय तथा मात्र सटायरिस्ट श्री हरिशंकर परसाई।

आप में 'हो को को' की सादगी है जो आपकी क्षमता का मूल है। परसाई का सटायर उनकी कहानियों में निखरा है। गद्य की शुद्ध विधा में नहीं।

आप अपने ह्यूमर में पूर्ण सफल हैं साथ ही आपके सटायर की मीठी मार है। मैं तो कहूंगा कि आप 'मिश्री की छुरी' हैं। मीठी मीठी। आपने कहा है कि बहुत लिखता हूँ। मुझ से कम तो आप नहीं लिखते। १० वर्ष में ५ किताबें मैंने लिखी आपने १४-१५। यों आप हर माने में बड़े हैं। अतः इसमें भी बड़े रहें सो ठीक ही है।

मैं अपनी 'विषाद बांसुरी' की प्रति आपको नहीं दे सका। सारी प्रतियां ऐसे व्यक्तियों के हाथों चली गईं जो कभी नहीं पढ़ेंगे। मैं इस फेर में हूँ कि आपके लिए एक प्रति की व्यवस्था कर सकूं।······एक बात मैंने देखी है निबन्धों को बहुत कम लोग पढ़ रहे हैं। बहुत ही गिने-चुने लोग। अतः मन निरूत्साहित हो जाता है। अब मैं २-३ साल तक कोई किताब नहीं निकलवाऊंगा। पहले की रचनायें कुछ बिक जायें।

लो पुनः 'हेमन्त की संध्या' आपको पसन्द आई। यौं मैं ललित को

त्याग नहीं रहा हूँ। मेरा एक निबन्ध अर्थात ललित निबंध "मधु माधव पुनः पुनः" आ रहा है। धर्मयुग के होली अंक या बसंत के किसी अंक में। एक निबन्ध है 'झरते क्षणों का पर्णमुकुट' नया प्रतीक फरवरी ७५ में देखेंगे। दोनों ललित हैं। मैं तो ललित के प्रति 'काम लोलुप' की तरह आसक्त हूँ। सारे ऐब क्रोध के बावजूद। इसी में मेरा जीवन रहा है।

आपका अभिनंदन ग्रंथ मिल गया था। मेरे पत्रों को भी आपने उन बड़े आदमियों के पत्रों के साथ छाप दिया है। फलतः आपके साथ-साथ हम लोग भी आपसे संयुक्त हैं अभिनन्दित हो गये हैं। उस उत्सव में हम अनुभव करते हैं कि थोड़ा बहुत कुंकुम हम सबके ललाट पर भी लग गया है। सज्जन पुरुष की संगति का फल ही ऐसा होता है।

भवदीय

३१-१-७५ कुबेरनाथ राय

नलबारी (असम)

श्रद्धेय भाई,

आपको बहुत दिन हुये कोई पत्र लिखा नहीं। इसका खेद है। जीवन कुछ इस खिन्नता से गुजर रहा है कि कुछ लिखने की इच्छा नहीं होती। यों जोर जबरदस्ती कुछ लोग लिखा ही लेते हैं। कुछ लोग अर्थात कतिपय संपादक गण। विशेषतः भारती का मैं कृतज्ञ हूँ इसलिये कान्टेक्ट बकरार रखने के लिए कुछ न कुछ लिख देता हूँ। मेरा एक निबंध ईस्टर पर ११ या १८ अप्रैल को आ रहा है धर्मयुग में देखिएगा। वीणा में गत मास में एक ललित निबन्ध 'मणिपुर' पर आया है। मैं देखता हूँ हिन्दी के लोग बहुत कम जानते हैं सूर, तुलसी, कबीर, छायावाद प्रेमचंद, प्रसाद को छोड़कर। मैं यथा सम्भव पाठकों के मानसिक शितिज का विस्तार करने की चेष्टा कर रहा हूँ।

'मन के मृगछौने' को तो उसी दिन पूरा पढ़ गया। जिस दिन पुस्तक प्राप्त हुई थी। वस्तुतः पुस्तक ऐसी है कि एक या दो बैठकों में ही समाप्त की जावे। मन के तट पर लहर पर लहर आती है और मन का तट बार-बार नई पिचकारी से भीग जाता है। पढ़ते समय मुझे दो पुस्तकें याद आ

गईं। उनका भी अनुभव ऐसा ही होता है। एक तो है रविन्द्रनाथ की 'गार्डनर' और दूसरी किताब है खलील जिब्रान की 'प्राफेट'। फर्क यही है आप अपने अनुभवों को साधारण लौकिक रस की मनोभूमि पर ही प्रतिष्ठित किये हैं जबकि ये दोनों कवि असाधारण (स्प्रिचुअल) मनोभूमि के हैं। संभवत: आपकी महत्वाकांक्षा उन कवियों की तुलना में Humbler है। आप मात्र रस ही चाहते हैं। कोई बोध स्प्रिचुल एक्सपिरियन्स।

आपके द्वारा वांछित नहीं। परन्तु तकनीक और भंगिमा टैगोर और जिब्रान जैसी ही लगी। फिर कभी अगले पत्र में। इस किताब की एक रिब्यू शीघ्र ही लिख भेजूंगा। इस पत्र में तो एक प्रतिक्रिया मात्र व्यक्त कर दी।

आपका

१८-३-७६ कुबेरनाथ राय

नलबारी (असाम)

श्रद्धेय भाई,

'बख्शीशनामा' मिले बीस दिन हो गये। पढ़ तो उसी रात डाला था। पर पत्र नहीं दे पाया तुरंत। तीन चार और जन पढ़ चुके हैं और उसका आनंद उठा चुके हैं। यह पुस्तक हर दृष्टि से 'बहता नीर है' और सभी वर्गों के लिए लिखी गई है। सभी उसके भीतर कहीं न कहीं' अपनी मूर्ति आविष्कृत कर लेते हैं। इस तरह से "बख्शीशनामा" की ही नहीं आपके समूचे साहित्य की यह विशिष्टता है।

पुस्तक इस समय सामने नहीं है। एक सज्जन ले गये हैं। परन्तु 'एक दर्शनीय प्रदर्शनी', 'एक आदर्श विवाह योजना' 'मायवी नगरी और लपेट अंगूरी बेल की' में निहित मधुर मधुर तीक्ष्ण सुस्वादु व्यंग्य की स्मृति अब भी ताजी है। शायद बरसों नहीं भूल पाऊंगा।

'उन्नत खेती और अनुदान का बैल' तो लगता है कि कल्पना नहीं सही घटना है। और किसी से सुनकर लिखे हैं। इसी के समानान्तर अनेक घटनाएँ रोज हो रही हैं। हर जिले में हर प्राँत में।

'नये अवतार की प्रतीक्षा में' आप कुछ सीरियस हो गये। व्यंग्य

समाप्त हो गया है और बिलकुल सच्ची बात निकल आई है 'रावण और दुर्योधन से लड़ना सहज है पर राम और युधिष्ठिर का मुखौटा लगाकर लड़ने वाले आधुनिक रावणों से लड़ना मुश्किल है।' कुछ ऐसा ही एक वाक्य था जो मुझे स्मरण आ रहा है।

'बख्शीशनामा' तो वड़ा करारा चांटा है। पर इसे या तो प्रारम्भ में रखते, नहीं तो अंत में। यह वस्तुतः सारी पुस्तक की भूमिका है। और किताबों के बीचों-बीच रखने से उसका वह विशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ता जो पड़ना चाहिए। शायद आपने जानबूझ कर ऐसा किया है। खेल के बीच चाँटा लगा देने पर कोई ख्याल नहीं करता, पर प्रारम्भ या अंत में लगाने पर जन्म भर याद रखना होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक लक्ष्य है और आप अपने व्यंगाकार की भूमिका को 'मिसरी की छुरी' से ज्यादा तीक्ष्ण-तर करना नहीं पसंद करते ऐसा आपके गांधीवादी स्वभाव के प्रतिकूल होगा। इसलिए ''बख्शीशनामा'' शीर्षक रचना को आपने बीचों-बीच रखा है।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी ने बताया कि ''मणीप्रतुल'' के नाम पुस्तक आपके पास वे भिजवा रहे हैं। पुस्तक मिली या नहीं। न मिली हो तो फौरन आप मुझे बतायें मैं स्वयं भेजूंगा। पुस्तक आपके द्वारा जरूर पढ़ी जानी चाहिए। गांधीपन व्यू को अप्रिसियेट करने वाले कितने रह गये हैं। आज तो सर्वस गांधी को हथियार बनाकर उनका Caricature खड़ा किया जा रहा है। होड़ ऐसी लगी है कि कौन कितना ज्यादा गांधी को बदशक्ल करके बेच सके, भुना सके। किसी की हार जीत नहीं। हार है केवल गांधी और उसकी जनता की।

साल भर बाद कक्षाएं चालू हुई हैं और लोग अपेक्षा कर रहे हैं कि सालभर की पढ़ाई दो मास में करवा दो।

जिससे जनवरी में ही परीक्षा ली जावे। समझ में नहीं आता कैसे सम्भव है उनके लिए जो टेक्स बुक पढ़ाते हैं। इतिहास या पोलिटीकल साइन्स में यह शार्टकट भले ही चल जाये। लेकिन जैसे-तैसे कुछ कर देना है। जनवरी के बाद ही लिखने पढ़ने की फुरसत मिलेगी।

भवदीय

२७-१०-८० कुबेरनाथ राय

नलबारी

भाई उपाध्यायजी,

'मणीप्रतुल' की एक प्रति जुटाकर आपके पास रजिस्टर्ड बुक पोस्ट कर दिया है आज ही। अन्य पुस्तकों की यह हालत है कि मेरे पास एक पर्सनल कापी जो बची थी वह भी किसी पाठक के हाथों है। आपने जिन ग्रंथों का बाजार में इस मास में जिक्र किया है वे 'मणीप्रतुल' और 'कामधेनु' ही होंगे। 'महाकवि की तर्जनी' १९७२ में निकली थीं। फिर 'पर्ण मुकुट' १९७८ में।

रामायण पर कुछ और आइडिया मन में है। एक और रचना इस राष्ट्रीय महाकाव्य पर कर देने का विचार है। कुछ निबन्ध लिख चुका हूँ। कोई पढ़े या न पढ़े 'नेकी कर कुंये में डाल' मानकर निबन्धकारों को चलना है। मणीप्रतुल को आप खुद पढ़ेंगे और मित्रों से पढ़ायेंगे।

श्री लक्ष्मीनारायण जी भावसार जी से मेरा प्रणाम कहिएगा। वे भारतीय संस्कृति के सच्चे पुजारी हैं। जो काम अवनिन्द्र नाथ ठाकुर नहीं कर सके उसे उन्होंने उठाया। मैं इन्दौर आकर उनकी चित्रशाला का दर्शन जरूर करूंगा। आप लोगों का सौभाग्य है कि ऐसे आदमी आपके यहाँ हैं।

'पंचाप्सर' तीर्थ प्रसंग पर जो उनका चित्र समाद्रत हुआ है उसे आपने देखा होगा। मेरी रामायण पर नई किताब जो होगी उसमें पंचाप्सर पर एक ललित निबन्ध भी है।

'पुराश्च दंर्भाकुर मात्रवृत्ति
श्याम मृगेश्च ऋषि मघोनम
समाधि भीतेत किलो पनीतः
पंचाप्सरों यौवन कूट बंधन।'

पहले जो ऋषि दंर्भ खाकर, मृगों जैसा निष्पाप जीवन बिताता था उसके तप से भयभीत इन्द्र ने पांच अप्सराओं के यौवन के जादू में उसे बंद कर रखा। 'रघुवंश' का यह श्लोक ही शायद उनकी प्रेरणा है। यो पंचाप्सर का वर्णन वाल्मीकि में भी आया है। पर काल के कूट मंत्र में आबद्ध इस ऋषि का उद्धार करने रामचन्द्र नहीं जागे। चुपचाप अपने रास्ते चल देते हैं। ऋषि उनकी अप्सराओं को भी कवि सम्मुख नहीं रखता है वह

केवल काम संगीत की अदृश्य-प्रतिध्वनि ही सुनाता है अपने महाकाव्य में। राम के सम्मुख पड़ जाने पर तो सारा माया जाल ही टूट जाता। अगस्त्य से भेंट होने से ठीक पूर्व इस प्रतिध्वनि का नियोजन किया गया है। अगस्त्य 'श्री विद्या' के प्रमुख आचार्य हैं ललिता त्रिपुर सुन्दरी इस विद्या की देवता है। और उसी का अवतरण है लोपमुद्रा। परन्तु यह इच्छा-की देबता है। रामायण 'श्री विद्या' का महाकाव्य नहीं सावित्री विद्या का महाकाव्य है। इस थीम पर ५ निबन्ध मेरी नई किताब में हैं।

'सावित्री विद्या' के आचार्य थे विश्वमित्र। यही कारण है कि अगस्त्य के आश्रम पर जाकर भी रामचन्द्र की लोप मुद्रा से भेंट नहीं दिखाई जाती। 'श्री विद्या' कामाध्यात्मक है। पर पंचाप्सर तीर्थ की 'कामलीला' पशु आचार मात्र। इसी से बाल्मीकि इसकी प्रतिध्वनि उपस्थित करते हैं दृश्य को सम्मुख नहीं लाते। परन्तु कालीदास ने अपने अगले श्लोकों में कामलीला को दृश्यमान कर दिया है। भाव संदर्भित मेखलानि आदि—संकेतों द्वारा। यहीं पर दोनों कवियों की दृष्टियों का सूक्ष्म अंतर उपस्थित हो जाता है।

भावसार जी की यह पेंटिग बड़ी ही अर्थपूर्ण है।

मणीप्रतुल में निबन्ध है 'काम वृश्चिक और वेदना की गली' इसे पढ़ेंगे। अपने टॉपिक पर मणी-प्रतुल जैसी किताब हिन्दी में शायद ही कोई हो।

भवदीय

१९-१-८१ कुबेरनाथ राय

नलबारी

भाई उपाध्यायजी,

'जनम जनम के फेरे' रचना प्राप्त हुई। एक दिन में पढ़ गया। मुश्किल तो यह है कि आपकी रचना की समालोचना मेरे लिए संभव नहीं। क्योंकि अपने उद्देश्य, अपनी शैली में यह सर्वदा पूर्ण और सटीक लगती है। भोगे जीवन के संस्कारों में आप इतनी सब्जेक्टिव आनेस्टी से भाव और भाषा दोनों क्षेत्रों में उतरते हैं कि प्रश्नचिन्ह लगाने के लिए कहीं जगह ही नहीं मिलती।

कितनी बड़ी बड़ी बातें, पर कितने सादे ढंग से। आपकी कलम सच्चे अर्थों में गांधीवादी है। सरल (मानी निष्पाप इनोसेंट स्वभाव से ऋजु) स्वच्छ और उच्चगामी की जिस कसौटी को गांधीजी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर अधिवेशन में रखा था, उस पर आपकी कलम पूरा पूरा खरा उतरती है। गद्य में आप और कविता में पं० भवानीप्रसाद मिश्र और संयोग ही कहिये कि दोनों मध्यप्रदेश के ही जिसमें इंदौर नगर बसा है।

इस किताब के अन्दर जो कुछ है उस पर तो मुझे तारीफ के सिवा और कुछ नहीं कहना है। परन्तु एतराज है नाम पर। नाम पढ़कर मैं कुछ घबड़ा सा गया कि इस बुढ़ौती में कुछ और लायेंगे क्या आप ? परन्तु भीतर का कन्टेन्ट पढ़ कर आश्वस्त हुआ। तो भी कहूंगा कि इतने सरल स्वच्छता के साथ-साथ उच्चगामी साहित्य को प्रस्तुत करने वाली रचना का नाम उसकी प्रकृति की गरिमा के अनुकूल होना चाहिये। यदि मेरी किताब होती तो मैं इसका नाम देता 'धरती प्रकृति और पुरुष' संयोग से इस शीर्षक पर एक निबन्ध भी इसमें है।

भवदीय

१८-२-८१ कुबेर नाथ राय

नलबारी

भाई उपाध्यायजी,

आपकी दोनों पुस्तकें समय से मिल गई थी। परन्तु खेद है कि पत्रोत्तर में विलम्ब हो रहा है।

'मन के मृग छौने' के कुछ अंशों को पढ़ते समय मुझे दो पुस्तकों का स्मरण अचानक आया। एक है रवीन्द्रनाथ की 'गार्डनर' दूसरी पुस्तक है खलिल जिब्रान की 'गार्डन आफ दी प्राफेट'। इसी किस्म की भंगिमा इन दोनों पुस्तकों की भी है। यह अकारण, बिना सोचे, एक समानान्तर स्मरण अपने में एक महत्वपूर्ण तथ्य सा मुझे लगा। यह भी एक तरह की काव्या-लोचन की पद्धति है, इसी पद्धति का एक रूप मैथ्यू अरनाल्ड की 'टच स्टोन थ्योरी ऑफ पोयट्री' में मिलता है,। किसी रचना की श्रेष्ठता का

अनुमान श्रेष्ठ कवियों की समानान्तर भंगिमा में लिखी श्रेष्ठतम पंक्तियों के साथ तुलना करके किया जा सकता है। इस आधार पर कि आलोच्य रचना क्या वैसे हो मानसिक तरंगों का उछाल पैदा करने में समर्थ है।

आलोचना की इस प्रज्ञानवादी पद्धति पर मैंने 'मन के मृग छौने' को काफी अंशों तक सार्थक पाया है। 'ऊंचाई' 'आकाश,' 'वृक्ष' 'तुम आये' 'तुम्हें देखा तो', तनाव', 'आभास' आदि ऐसी अनेक रचनाओं से मैं तुष्ट हुआ। यों मैं श्री उपाध्याय की रचनाओं का इस तरह से भी स्वाभाविक प्रेमी हूँ। और जिससे प्रेम होता है, उसको चीर फाड़ कर परीक्षा करना संभव नहीं। इसी से मैंने विश्लेष्णात्मक पद्धति से 'मन के मृग छौने' पर विचार नहीं किया। परन्तु हरेक रचना को पढ़कर अनुभव का आघात या जेसाल्ट पैदा होती है वह आघात यदि मन को विस्तृत करता है या मन के संपुटित रूप को खोलकर विकसित करता है तो वह सही एवं सफल रचना है। इधर मैं काफी मायूस रहता हूँ, लगता है कि सारा जीवन एक मिसिंग डेट्स का, अवसरों की खोई अभिसर तिथियों का लेखा-जोखा मात्र रहा। चारों ओर अपने द्वारा आराधित मूल्यों की पराजय देख रहा हूँ। मानस मुकुल संपुटित-संपुटित रहता है। ऐसी मनोदशा में 'मन के मृग छौने' पढ़कर मुझे लगा कि कुछ दल संपुट मुक्त से होते जा रहे हैं, कि भीतर-भीतर खुलापन का अनुभव कर रहा हूँ, और मैंने मन ही मन लेखक को धन्यवाद दिया। इस क्षण कालीन मुक्ति के लिए मुझे विश्वास है कि मेरे जैसे अनेक पाठक भी ऐसा ही अनुभव करेंगे इस पुस्तक को पढ़कर।

अवश्य ही मैं पक्षपात नहीं कर रहा हूँ, मैं नहीं कहता कि सारी रचनाएं उक्त कसौटी पर सार्थक हैं परन्तु पूरे संग्रह में एक भी रचना ऐसी नहीं जो ऊबा दें, और अंत में एक चमत्कार, एक झटका तो देती ही है, ये बात दावे के साथ कही जा सकती है। श्री उपाध्याय में 'रवीन्द्रनाथ' और 'खलील जिब्रान' का 'मिस्टिक डेप्थ' (रहस्यवादी गहराई) नहीं है, परंतु उनकी दृष्टि का धरातल ऐसा है कि उसमें मिस्टिसिज्म के लिए अवकाश नहीं। उनकी दृष्टि सामान्य संवेगों को पकड़ने की ही लोभी-लालची है। इससे ज्यादा उनकी महत्वाकांक्षा नहीं। इसीलिए यह सहज धरातल की गद्य कविता है। 'कविता' शब्द को एक व्यापक अर्थ में यहाँ

पर प्रयुक्त किया जा रहा है। यह एक सामान्य संवेगों से बुना गया भाव पट का गद्य विस्तार है। परन्तु रह-रह कर सामान्य के भीतर असामान्य का चेहरा झाँक जाता है। सादा, सहज, निर्मल अवदमन मुक्त 'सामान्य' स्वयं में एक असाधारण, सत्ता है। यह एक गांधीवादी सौंदर्य बोध है जो रोमांटिक रवीन्द्र जैसा सम्मृद्ध नहीं, जो मिस्टिक जिब्रान जैसा अतल गंभीर नहीं, तो भी अपनी सारी सामान्यता के बावजूद सहज संवेद्य होने के कारण विमुग्ध करता है। जैसे सादे निर्मल जल की धारा हमें विमुग्ध करती है। इसी से मैं कहता हूँ कि अपने नाम 'मन के मृग छौने' के कारण या विषय के यत्र-तत्र रूमानी कल्प बिम्बों के कारण सतही नजर को यह पुस्तक रोमांटिक साहित्य की कोटि में लग सकती है। परंतु अल्प चिंतन करने पर ही प्रत्यक्ष हो जाता है कि यह गांधीवादी सौंदर्यबोध है। आधुनिक हिंदी काव्य में यह सौंदर्यबोध सूक्ष्म संवेदनाओं की वृद्धि के साथ श्री भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में उतरा है और सहज संवेदनों के बल के साथ श्री उपाध्याय के गद्य में। ये दोनों प्रतिभाएं मध्य प्रदेश की हैं, और दोनों ही जीवन और साहित्य में सिर से पांव तक 'देशी' हैं।

४-२-८२ —कुबेरनाथ राय

नलबारी

भाई उपाध्यायजी,

नमस्कार

आपको दो दिन पूर्व के पत्र में मैंने क्या संबोधन लिखा था ख्याल नहीं शायद 'प्रिय भाई' था पर होना चाहिए 'श्रद्धेय भाई'। यों आदत पड़ गई है प्रायः अनजाने लोगों के पत्रों का उत्तर देना पड़ता है और 'डियर सर' के मनोरम हिंदी रूपांतर 'प्रिय भाई' ही चला देता हूँ। परन्तु जिनको व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ उनके बारे में सावधानी रखता हूँ। सावधानी रखनी भी चाहिए। भारतीय संस्कृति का यही तकाजा है अतः वह संबोधन आप 'श्रद्धेय भाई' ही मानकर ग्रहण करें। भक्ति के आधिक्य में भक्त भगवान को भी कुछ कह बैठता है। तो भी भगवान बुरा नहीं मानते। वेदों से ले कर रामकृष्ण परमहंस देव तक। तो आप भी इस संदर्भ में मेरे प्रिय भाई के अन्यथा न ग्रहण करेंगे।

आपकी द्वितीय पुस्तक 'कथाओं की अंतर्कथायें' भी समय से मिल गई थी। 'मन के मृग छौने' के संबंध में आपको अपनी प्रतिक्रिया भेजी है। आपकी हर एक किताब के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त है कि आपकी क्षमता पर मुझे ईर्ष्या होती है। इतने साफ और सुन्दर ढंग से जानी सुनी बातों को भी आप ऐसे प्रस्तुत करते हैं, कि उनमें एक नया चमत्कार आ जाता है, और लगता है कि इसे रोज-रोज देखते हुए भी, आज तक इसके सही रूप से मैं अपरिचित रहा। पुस्तक पढ़कर लगा कि आप जनता के सूत पौराणिक हैं। वैदिक, पौराणिक और औपनिषदिक तथ्यों के जिस तरह सादी भाषा में और सहजगम्य अर्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है वह आश्चर्यजनक है। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध 'समुद्र मंथन' का मिथ लिया जा सकता है। इस वर्णन को पढ़कर पुस्तक की प्रकृति के संदर्भ में पाठक अपनी धारणा बना सकते हैं।

पुराणों में जो बात 'अद्‌भुत रस' की पद्धति में उतारी गई है उसी को 'सहज रस' की शैली में लेखक ने प्रस्ततु किया है। भारतीय साहित्य का सारा कथाकोष ही इस पुस्तक में संक्षिप्त सरल, और बोधगम्य शैली में तथा स्वाभाविक पुनर्व्याख्या के साथ प्रस्तुत है। यह पुनर्व्याख्या इतनी मनोरम और सटीक बनी है कि इससे प्रभावित हुए बिना कोई रह नहीं सकता।

समूची रचना के मूल में है—गांधीवादी जीवन दृष्टि। गांधीवाद पर हिन्दी में प्रशंसामूलक प्रशस्तियां हैं। परन्तु उस दृष्टि में जो सपूर्ण जीवन को आच्छादित करने वाला एक वेदांत है उससे अनुप्राणित होकर रचनात्मक साहित्य बिरलों ने ही लिखा है? जिन्होंने लिखा है उनमें एक श्री उपाध्याय भी हैं। यदि कोई गांधीवाद विचारक आधुनिकों द्वारा उपेक्षित भारतीय पौराणिक संस्कृति पर विचार करने बैठेगा तो उसकी उपलब्धि क्या हो सकती है, इसका अनुमान इस पुस्तक के माध्यम से लगा सकता है। गांधीवाद एक 'सहज सरल और उच्चगामी' भारतीयता से जुड़ा हुआ है। इसी भारतीयता का एक आयाम इस पुस्तक में झलकता है। मेरी दृष्टि में यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। हिंसा की वकालत और

क्रोध के दुर्गन्धमय नशीले वातावरण के बीच यह एक ठंडी साफ हवा का झोंका है।

५-२-८२ —कुबेरनाथ राय

विवेकीराय

डिग्री कालेज, गाजीपुर

आदरणीय उपाध्यायजी,

पुस्तक और बुक पोस्ट से भेजी हुई सामग्री मिली। जीवन चरित्र वाले पृष्ठ को छोड़कर शेष पढ़कर लौटा रहा हूँ। वास्तव में हम दोनों एक ही विषय के लेखक हैं। जीवन भी ऐसा कि नाम का ही अंतर है। हाँ, आपकी आयु हम से पांच वर्ष अधिक है। गाँव के विषय में जो आपका दृष्टिकोण है वही हमारा भी है। आपके कतरन वाले दोनों निबन्ध गाँव की वास्तविक स्थिति का अंकन करते हैं। यहाँ विकास के नाम पर विनाश हो रहा है। चुनाव एक अभिशाप बनकर आया जिसके आते-आते गाँवों की एकता में भीषण दरार पड़ गयी। पंचायतें, उसके चुनावों ने तो और गजब ढा दिया। धीरे-धीरे गाँव कहाँ जा रहे हैं, ईश्वर जाने। मुझे सोच-सोच कर बहुत खेद होता है।

और उसे उतारता हूँ, 'फिर बैतलवा डालपर'। ये सभी रचनायें 'आज' में प्रकाशित 'मन बोध मास्टर की डायरियों' से ही ली गई हैं। प्रति सप्ताह गाँव की इस अभिशप्त पृष्ठभूमि पर, कुछ कथा निबंध के रूप में लिखता हूँ। कुछ की कतरन भेजूंगा। आपकी दोनों पुस्तकें मेरे लिए अनमोल हैं। 'गरीब और अमीर पुस्तकें' पर ज्ञानपीठ पत्रिका में लिखूंगा, पढ़ रहा हूँ। बहुत आनंद आता है। जहाँ सच्चाई, ईमानदारी दिखाई पड़ती हैं वहाँ मन खूब रमता है। आपकी लेखनी में जादू है। क्या इस तरह की और कोई कृति नहीं दे रहे हैं। निमाड़ी के लोक गीतों की माधुरी का स्वाद लेकर तो उस पावन भूमि को देखने की इच्छा जग रही है। आपसे परिचित होकर मैं कृतकृत्य हुआ।

आपका

१४-७-६५ विवेकीराय

कमरा-३ क्षत्रीय छात्रावास गाजीपुर, यू० पी०

आदरणीय बन्धु,

नमस्कार,

बैठे बैठे मन में आया आज एक पत्र लिख ही डालूं आपको। वैसे मैं तब-तब बिला नागा, आपको खत लिखता हूँ, मन ही मन जब-जब आपकी रचनाएँ पढ़ता हूँ। इस पत्र में, उस पत्र में, आप सर्वत्र छपे मिलते हैं। उस दिन उठाया 'गांधी मार्ग' आपको पढ़ गया। लेकिन मज़ा आया डायरी में। डायरी पढ़कर उस संघठित निबंध में आपने मेरे प्रिय कवि 'भारतीय आत्मा' (दादा) के बारे में जो सूचना दी वह अनमोल रही। आज धर्मयुग के एक चुटकुले में आपको पाया। कहाँ, किस पत्र में आपका एक निबन्ध देखा था, बहुत पसंद आया था, याद नहीं आ रहा है। पत्र लिखते-लिखते रह गया। खैर, यह तो आप मानेंगे ही कि मैं रोज़-रोज आपको पत्र लिखता हूँ। भूगोल की दूरी मन को पार करते क्षण भर भी नहीं लगता है। देखिए, उधर आने का सुयोग जुटे। इधर हम लोग आचार्य रजनीश को खूब पढ़ रहे हैं। इच्छा है कि उनके किसी शिविर में सम्मिलित हुआ जाय— उधर से ही बम्बई की यात्रा और बीच में आप। आशा है सानन्द हैं।

आपका

६-२-६७ विवेकीराय

गाजीपुर

आदरणीय उपाध्यायजी,

आपका कृपा पत्र ऐसा लगता है कि बिना पत्र लिखे ही हम लोग रोज कहीं न कहीं मिला करते हैं, (स्नेह है न!) फिर पत्र लिखने की जरूरत ही नहीं रहती। अपने पुस्तकालय में या बाहर कोई पत्रिका उठाई कि भाई रामनारायण उपाध्याय मिल गये 'बात की' यही बात है असली। आप लिखते हैं 'आप तो खूब लिखते हैं और यह बात तो मैं आपके लिए लिखना चाहता था। सब पढ़ता हूँ। आप छिपाकर कुछ नहीं लिख सकते हैं। हाँ, एक सूचना देना चाहता था 'बबूल' के प्रकाशन की और सेवा में

भेजना चाहता हूँ पुस्तक। मगर प्रकाशक ने लेखकीय प्रतियां जो दीं वह तो आते-आते हवा हो गई। अब फिर प्राप्त कर लूं तब तक के लिए क्षमा करेंगे।

आपका पत्र पाकर सचमुच बहुत खुशी हुई।

आपका
विवेकीराय

२०-१२-६७

गाजीपुर

आदरणीय भाई,

पत्र मिला। इधर आपकी बहुत याद आ रही थी। पास न जाने का मतलब कि समाचार ठीक ही हैं। रचनायें पढ़-सुनकर मन ही मन बात कर ली जाती है। मगर इधर हड़ताल ने सचमुच सुनसान कर दिया है। गांधी जी पर आपने पुस्तकें लिखीं, समय उपयुक्त है। शती-समारोह में गांधी एक बार उभरेंगे। कुबेरनाथ राय जी वहीं हैं, कुछ अस्वस्थ हैं। मेरी एक भोजपुरी में पुस्तक छप रही है, पढ़ेंगे? लिखिएगा और क्या समाचार हैं? कभी इधर आइये।

आपका
विवेकी राय

१८-६-६८

ग्राम पोस्ट सोनवानी, जि० गाजीपुर

आदरणीय भाई,

प्रणाम।

आपकी पुस्तक 'सुख के नाम पाती' प्राप्त तो बहुत पहले हो गई थी परन्तु इधर शोध आदि कार्यों में व्यस्त रहने के कारण पढ़ नहीं पाया था। ग्रीष्मावकाश में आजकल गाँव में हूँ। और पुस्तक लाया हूँ। आपको धन्यवाद जो अवकाश के समय पुस्तक ने इतना मनोरंजन किया। आपकी समर्थ लेखनी हल्के-हल्के चल कर गंभीर काम कर डालती है। आरम्भ की फैन्टेसिया बहुत सजीव हैं और कविताओं में कुछ तो ऐसी हैं जो अद्वितीय

हैं। वाह क्या पूछना, एक से एक अनुरंजनकारी। आपको बहुत-बहुत बधाई और क्या आ रहा है।

आपका

१८-६-७१ विवेकी राय

प्रोफेसर कालोनी, सकलेनाबाद-गाजीपुर (उ० प्र०)

आदरणीय भाई,

नमस्कार,

कभी-कभी स्थिति यह हो जाती है कि पत्र लिखना बेकार लगने लगता है और ऐसा होता है परम आत्मीयता और अत्यन्त निकटता की अनुभूति के समय। कोई मनोविज्ञान है क्या कि पत्र वास्तव में दूरियों के सूचक हैं?—तो मैं कह रहा था कि 'माटी की गंध' मिली तभी से बराबर पत्र लिखने की सोच रहा था परन्तु उक्त मनःस्थिति में टलता गया। श्री लक्ष्मीशंकर त्रिवेदी रेखाचित्र पर शोध कर रहे हैं। उन्हें अब पुस्तकाकार उपयोग कर रहे हैं। उनको आपने पत्रोत्तर दिया था जिसमें नयी पुस्तकों के भेजने की चर्चा थी। सो उसको डाक से प्राप्त कर अतीव प्रसन्नता हुई। उनका भरपूर उपयोग होगा। दोनों पुस्तकें खूब भायी हैं। आपकी परिनिष्ठित शैली है, सतत् सजग साहित्यकार की शैली। खूब लिखते चलें। बधाई। आशा है सानंन्द हैं।

आपका

२६ जनवरी ७५ विवेकी राय

सकलेनाबाद, गाजीपुर (उ०प्र०)

भाई उपाध्यायजी,

तिवारी जी के पत्र में आपने जो उलाहना दिया है वह सत्य है। एक लम्बे अरसे से पत्र नहीं लिखा। वास्तव में एक ऐसी निकटता का अहसास रहता है कि पत्र की औपचारिकता व्यर्थ हो जाती है। वास्तव में पुराना वादा इतने अधिक दिनों से बाकी है कि उसके पूरे होने के पूर्व न देने-देने को मन रहता है। मेरी डायरी में नोट है:—**उपाध्याय जी को चुनरी** अब ऐसा समझें कि न चुनरी जा पा रही थी और न पत्र। खैर

अब लगता है कि अब पत्र गया तो चुनरी भी जल्दी ही चली जावेगी। चुनरी का अर्थ आप समझ ही रहे होंगे कि इधर आपने कृपा पूर्वक दो पुस्तकें भेज दीं। इन पर भी कुछ टिप्पणी देनी है।

मेरा शोध प्रबन्ध 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन' लोकभारती इलाहबाद से प्रकाशित हुआ था। जिसमें आप लोगों का जिक्र है। कहीं से मिले तो देख लेंगे। भेज न सकने की विवशता है। एक उपन्यास 'पुरुष पुराण' भारतीय ज्ञानपीठ से और एक संग्रह 'नयी कोंपल' बनारस से छप रही है। छपने पर दोनों को भेजूंगा।

तिवारी जी, और श्री लक्ष्मीशंकरजी को आपसे बहुत मदद मिल रही है। बहुत प्रसन्न हैं। उनका काम इस वर्ष पूरा हो जायगा। कर्मठ व्यक्ति हैं। आशा है आप सानन्द है।

आपका

२१-४-७५ विवेकी राय

निर्मल वर्मा

१४ ए/२०, डबल्यू० ई० ए० नई दिल्ली-५

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका स्नेहपूर्ण पत्र मिला, अनेक धन्यवाद। मैंने 'शब्द और स्मृति' पर आपका भावपूर्ण और निश्छल लेख 'साक्षात्कार' में देखा था—ठीक से पढ़ा भी नहीं, क्योंकि अभी तक पत्रिका का अंक मेरे पास नहीं पहुंच पाया है। मुझे शायद आपके लेख के बारे में पता भी नहीं चलता, यदि कुछ मित्रों ने विशेषकर नामबरजी ने मुझे उसके संबंध में न बतलाया होता। मुझे आश्चर्य है, अभी तक उन्होंने उसकी प्रति मेरे पास नहीं भिजवायी। शायद आती होगी।

आपकी कुछ पुस्तकें जल्दी ही प्रकाशित और पुनर प्रकाशित होने वाली है, यह जानकर बहुत खुशी है। मैं अवश्य उन्हें पढ़ूंगा, मुश्किल सिर्फ यह है, यहाँ हिन्दी पुस्तकें आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाती।

आपने अपने लेख में 'शब्द और स्मृति' से जो चुन-चुन कर उद्धरण

दिए हैं, उन्हीं से पता चलता है, कि आपने उसे कितमे ध्यान और मनोयोग से पढ़ा है।

आप सानन्द होंगे ।

आपका

१७-७-१९७६ निर्मल वर्मा

गोपीकृष्ण 'गोपेश'

६/१ बैंक रोड ,इलाहाबाद

आदरणीय भाई,

आपका १८ का पत्र अभी-अभी मिला···मगर, जनाब, बुढ़ापे में आपकी आदतें हाथ से बेहाथ क्यों हो रही हैं, आप दुनिया जहान की चिट्ठियां क्यों पढ़ते फिरते हैं ?···हद है ।

और, खत या लिखावट के बारे में इतनी 'प्रशस्ति' पढ़ ली, फिर भी वही ! आप तो 'क्रांतिकारी' आदमी हैं—क्यों गालिब को एक पट कान दीजिये आखिरी वक्त में मुसलमां हो जाइए' और चाल-चलन न सही, अपना खत तो सम्हाल ही लीजिए···क्या खयाल है ?···

मजाक खत्म···मुझे सचमुच बहुत अच्छा लगा कि चिट्ठी आपको पसंद आई । यहां भी एक-दो मित्रों को सुनाई उन्होंने भी उसकी बड़ी सराहना की···यह तो सच है कि पत्र मैंने बहुत दर्द और बहुत प्यार से लिखा है ।···

फ़ी-ज़माना हँसना-हँसाना बड़ा भारी सौभाग्य, बड़ी नेमत है···'हर तरफ ऐसी घुटन है कि बस ! आजादी का २९ वां साल अधिया गया है, मगर एक-चौथाई स्थिरता भी तो नहीं आई है, उल्टे गाड़ी खिर्स-गेयर में, रास्ते के सभी कुछ को उलटती-पलटती; पीछे की तरफ दौड़ती जा रही है ।—जिधर सुनिये, ऐम्प्लिफायर से घूंधे शब्द ऐम्पिलीफाई किए जा रहे हैं । यानी,

कुछ और भी तो हो इन इशारात के सिवा,
ये सब तो, ये निगाहे करम, बात, बात, बात ।

मिलने का मेरा भी बड़ा जी है···कोई जुगत भिड़ाइये—यों तो घर से निकलना होता नहीं।

स्वस्थ्य-सानन्द होंगे !···छोटे-भाई और सभी मित्रों को स्नेह।

आपका—

गोपेश

२० मार्च ६८

किताब महल, इलाहाबाद

आदरणीय भाई,

आपका २५ मई का पत्र अभी-अभी मिला। सचमुच दिली खुशी हासिल हुई। इन दिनों जब सभी कुछ महंगा ही महंगा होता जा रहा है, प्यार तो और भी अधिक नापसंद हो रहा है। ऐसे में आप जैसे एकाध थोक डीलर ही बाजार की लाज बचाये हुए हैं, वरना तो······

आपकी पुस्तक अभी तक मुझे नहीं मिली। मिलेगी तो अपनी राय निश्चय ही लिखूंगा। 'देवी जी' से भेंट होने पर अनुरोध करूंगा।

आपकी कलम अपनी जगह बेजोड़ है। 'धर्मयुग' में या अन्यत्र भी—कभी-कभी आपकी 'बदमाशियों' से दो चार हो जाता हूँ। और आपकी प्रतिभा और सूझ का लोहा मानकर रिटायर हो जाता हूँ।

अपने अनुज को मेरा स्नेह।

ऐसे ही जब तब याद कर लिया करें।

मैं हैपी और नार्मल हूँ।

आपका अपना

गोपीकृष्ण गोपेश

२७ मई १९७१

अमृतराय

१८-हेस्टिंग्ज रोड, इलाहाबाद

प्रियवर,

आपका कृपा पत्र मिला। जानकर खुशी हुई कि 'कलम का सिपाही' आपको इतना पसंद आया। पत्रों के बारे में आपने लेख लिखा है। देखना चाहूंगा।

कलम का सिपाही पर भी कहीं क्यों नहीं लिखते ? विशेषकर जबकि पुस्तक आपको इतनी रुचि है।

आशा है स्वस्थ्य और सानन्द हैं।

आपका

२-१०-७० अमृतराय

सुधा अमृतराय

इलाहाबाद

आदरणीय भाई,

आपका पत्र मिला। आपने माँ और काका की रचनायें टाइप करना शुरू कर दीं, जानकर बहुत अच्छा लगा। आप मेरे लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। इसके लिए मैं आपकी कितनी कृतज्ञ हूँ मैं बता नहीं सकती। आज-कल के व्यस्त जीवन में जो दूसरों से लिए भी कुछ समय निकाल सकें वह धन्य हैं।

आपको पत्र लिखना शुरू किया था कि आपका दूसरा पत्र आ गया। आपने कवितायें खोजकर टाइप करवा ली हैं, इसके लिए बहुत धन्यवाद। आप कृपया यह भी वतायें कि कर्मवीर कब से कब तक जबलपुर से निकला और किस सन् में खंडवा से निकलने लगा। कर्मवीर में काका की रचनायें भी आपने देखी थी क्या ? मैं तो समझ रही थी, कि आपने उन्हें भी टाइप करवाया होगा।

माँ और काका से क्या आप का परिचय था ? अभी तक आपको केवल टाइप करवाने के लिए लिखती रही। आपके अपने संस्मरण भी मेरे लिए बहुत उपयोगी होंगे।

सोच था अपने इसी कार्य के सिलसिले में एक बार खंडवा भी जाऊंगी, पर अभी तक तो संभव हो नहीं सका। आती तो आपके दर्शन भी कर लेती। यों आपके लेखन से मैं बहुत पहले से परिचित हूँ।

आपकी

२८-६-७२ सुधा अमृतराय

१८ हेस्टिंग्ज रोड, इलाहाबाद

आदरणीय भाई,

सबसे पहले आपसे क्षमा मांग लूं कि मैं आपको इतनी देर बाद पत्र लिख रही हूँ। करीब दो महीने पहले खण्डवा से मेरे पास श्री भवानी प्रसाद मिश्र का पत्र आया था। उन्होंने आपसे माँ और काका के लेख कवितायें आदि टाइप करवाने को कहा था। मैं एक बार स्वयं खंडवा आना चाहती थी, लेकिन यहाँ इस बीच इतनी उलझी रही कि कहीं जाना तो दूर आपको पत्र भी न लिख सकी। मैं जानती नहीं कि आपने काम शुरू करवाया है या नहीं पर यदि अभी तक शुरू न करवाया हो तो कृपा करके अब शुरू करवा दीजिये। पूजनीय दादा ने भी जो माँ, काका के विषय में लिखा है, उसे भी टाइप करवा लीजिएगा।

मैं जानती हूँ कि मैं आपको ये अनाधिकार कष्ट दे रही हूँ। जो काम मुझे स्वयं करना चाहिए था उसकी अपेक्षा आप से कर रही हूँ। शायद इसी विश्वास के कारण कि मैं केवल अपने माँ-काका की नहीं वरन् आप लोगों के भी सुहृद की जीवनी लिखने का प्रयास कर रही हूँ।

आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे और इस काम के लिए समय निकालेंगे। भवानी भाई ने टाइप के खर्च के विषय में भी लिखा था। वह जो भी हो आप मुझे लिखियेगा, मैं भिजवा दूंगी।

सादर

आपकी

९-१-७५ सुधा अमृतराय

वियोगी हरि

एफ १३/२ माडल टाउन, दिल्ली

प्रिय भाई रामनारायण जी,

सप्रेम नमस्कार।

आपका १३-१२-७८ का पत्र तीन दिन पहले मिला। मैं सोच रहा था कि मैं जो पुस्तकें आपके लिए इन्दौर में छोड़कर आया था, वह

आपको मिली या नहीं। आपको मेरी वे पुस्तकें मिल गई हैं और आपने उनको देखा भी है। मेरे इधर गांधी-मार्ग ने चार छोटे-छोटे लेख प्रकाशित किये, आपने उनको देखा होगा। इस प्रकार के और भी लेख मैंने पिछले वर्ष लिखे थे। दैनिक हिन्दुस्तान के रविवारीय अंकों में कुछ प्रकाशित हुए हैं और कुछ प्रकाशित होते रहेंगे।

आपका यह लिखना सही है कि गांधीजी के वे दिन आज जैसे लुप्त हो गए हैं। कहाँ तो शुद्ध साधन और कहाँ नैतिकता ? श्री मुरारजी भाई के विचारों में कभी-कभी कुछ झलक मिल जाती है, पर वे भी कुछ अधिक नहीं कर-करा सके। जयप्रकाश जी को भी लोग भूल गए हैं। हम स्वयं जितना बने गांधी के दिखाये रास्ते पर लंगड़ाते हुए चलते रहें, इसी में सन्तोष क्यों न किया जाय।

आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगे। कभी इधर दिल्ली आने का अवसर मिले तो मेरे निवास स्थान पर अवश्य आइएगा।

सस्नेह

२० दिसम्बर, १९७८ वियोगी हरि

रामानुजलाल श्रीवास्तव

जबलपुर

प्रिय भाई,

कार्ड मिला। आप भी काँटों में घसीटेंगे ऐसी आशा नहीं थी। एक परम्परा का निर्वाह करना था, कर लिया। योग्यता तो जानी-मानी है। तुक से तुक मिलाई, तुकबन्दी, गप्प से गप्प भिड़ाई तो गप्प। इसके आगे भैंस बराबर।

आशा है आप सानंद हैं।

भवदीय

१७-२-५९ रामानुजलाल श्रीवास्तव

जबलपुर

प्रिय भाई,

कार्ड मिला। यह कैसी उल्टी गंगा बहा रहे हैं। अब तो जो मुझे भूलकर भी याद कर ले वही दीन-बन्धु सम है। मैं तो मिल्टन के शब्दों के अनुरूप हूँ :—

Now, blind, disheartened, shamed, dishonoured, quelled.

To what can I be useful ? where in serve.
My nation, and the work from heaven imposed ?
But to sit idle on the house hold hearth,
A burdeanous dorne to visitants a gaze or pit······ objcct.

पूर्ण वधिर हूँ। चश्मे के कारण पूर्णान्ध नहीं हूँ। सब कुछ शिथिल, सब कछ बेबस। सभी की कुशल मानता हूँ और मुक्ति का प्रार्थी हूँ।

मुझको पूछा तो कुछ गजब न हुआ।
मैं गरीब और तू गरीब-नेवाज़।

भवदीय

५-१-६० रामानुज

जबलपुर

प्रिय भाई,

दिनांक १/१० का कार्ड मिला। बाल बच्चों का समाचार पढ़ कर आनन्द मिला।

दिल्ली के एक आचार्य श्री कृष्णदेव शर्मा, पूज्यदादा (पं० माखन लाल जी चतुर्वेदी) पर शोध ग्रन्थ लिख रहे हैं। सहायता चाही थी जो बन पड़ी, की। आपसे सम्पर्क स्थापित करने की सलाह दी।

प्रेचचन्द जी ने मुद्रण प्रकाशन के पीछे पड़कर बहुत दुख उठाया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त सफल हुए। यशपाल जी भी और अश्कजी भी सफल हैं। दादा ने यश तो भरपूर कमाया, पर अर्थ नहीं। इस युग में

बिना अर्थ के सब व्यर्थ है। बाबू भगवती चरण वर्मा जिन्दगी भर टिल्ले-नवीस रहे, पर अंत में केवल लेखनी द्वारा यश के साथ-साथ आर्थिक सफलता भी प्राप्त की। बच्चन जी सदैव सतर्क रहे। मैं सोचता था कि शायद 'ऊंट' की कविता बिके। सड़ रही है। १००-२०० भेज दूं। 'उनींदी रातें' ७०० बिकीं। ४०० हेड आफिस ने जिल्द बाँध कर ही नहीं भेजी। ठीक व्यापारी प्रवृत्ति हो तो सफल हुआ जा सकता है। किताब बेचने का पेशा तो किया पर प्रवृत्ति ठीक नहीं रही। इसलिए बुढ़ापे में कष्ट में पड़ गया हूँ। सोच-विचार कर फंसिए। खेती से श्रेष्ठ क्या। ५-६ एकड़ जमीन है। पत्नि खेती करती है। मैं तो बस खैर खल्ला हूँ। कल बिना मुझसे मिले रामेश्वर यात्रा को गई है। पहले बिना मुझसे पूछे बद्रीनाथ हो आई है मैं आस्तिक हूँ, पर कर्मकांडी नहीं।

प्रभात भाई अभी आये थे। प्रो० शर्मा को उनका भी हवाला दिया था। सहायता करेंगे।

भगवान सब सुख दे।

भवदीय

५-१०-५३ रामानुज

जबलपुर

प्रिय भाई,

पत्र और पुस्तक 'धुंधले काँच की दीवार' मिली। बड़े चाव से आद्योपान्त पढ़ गया।

व्यक्ति ही सब कुछ है, यदि अपने व्यक्तित्व को पहिचान ले और उभार ले। पं० भवानी मिश्र और पं० हरिशंकर परसाई प्रत्यक्ष हैं। पं० विनोद शंकर व्यास ने प्रयोग किए थे कि एक imression पर छोटी कहानी लिखी जाय। स्थायित्व नहीं प्राप्त हुआ। रोचकता की कमी थी। आपके impressions में स्वतंत्र अभिव्यक्ति तो है ही, व्यंग्य के कारण स्थायी पकड़ है। इसलिए आप एक निजी शैली के निर्माता हैं। 'अमीर गरीब पुस्तकें' में भी यही बात आई है। कामना है कि आपका स्वास्थ्य दिन-तिदिन विकसित होता जाय। यह भी कि आप निजी प्रकाशन मे भी सफल हों।

दादा की अस्वस्थ्यता से चिंतित हूँ। जो कुछ हो सकता है, आप भाई कर ही रहे होंगे। इधर फिर ज्वर आने लगा है। इस चीथड़े को दवा-दारू के पैबंद से कब तक चलाया जा सकता है ?

सदानन्द रहें।

भवदीय

३-१०-६६ रामानुज लाल श्रीवास्तव

जबलपुर-२

प्रिय भाई,

दिनांक २७-४ का कार्ड मिला। मेरे लिए पत्र ही भेंट-मुलाकात हैं। जीवन है, खटिया से कुर्सी और कुर्सी से खटिया। यह भी क्या कम है ? ६-७ घंटे लिख-पढ़ लेता हूँ। आनन्द है, विशेषतः संध्या-वंदन या नियमित 'Spritual exercise' लेने के बाद।

'मध्य देश' मेरे पास नहीं आता। लिखा है तो आपकी कृपा तथा स्नेह है। मैं क्या देखूंगा ? "हैराँ हूँ कि आइने में जब देखता हूँ, बूढ़ा सा कोई और नजर आता है।"

'धर्मयुग' के लेख में मेरे कितने छंद उद्धृत हैं, प्रायः सब अशुद्ध हैं। रामेश्वर भाई के स्नेह ने कवच का काम किया है। श्री के० पी० रावत ओबेदुल्ला गंज ने मुझ पर एम० ए० का शोध पत्र दिया है। कदाचित् स्वीकृत हो गया है। छापेगा कोई क्यों, और पढ़ेगा कोई क्यों ?

पेट के धंधे के लिए 'नैतिक शिक्षा' लिखी है। जून में भेजूंगा।

कहानियों के दूसरे संग्रह के निकलने की आशा हो रही है।

अनीस की सामग्री एकत्र हो गई है। कलमबन्द कौन करे ? एक कार्ड लिखने में हाथ थक जाता है।

आपकी पुस्तक की अच्छी समालोचनायें आ रही हैं। पढ़ता हूँ। और क्या चल रहा है। 'धर्मयुग' में सुन्दर हास्य-व्यंग्य पढ़ा।

पूज्यनीय दादा की लेखनी का रस यदा-कदा मिलता रहता है। अब दर्शन तो दुर्लभ हैं। ईश्वर से उनके स्वास्थ्य-लाभ की प्रार्थना करता रहता हूँ। अभिनन्दन ग्रंथ का कार्य अग्रसर हो रहा है क्या ? क्षेमचंद्र जी सुमन

(दिल्ली) का सुन्दर अ० ग्रंथ देखा। महादेवी जी का आजकल में आने वाला है। राष्ट्रकवि का श्रद्धांक शायद नहीं निकलेगा।

आशा है सकुटुम्ब सानंद हैं।

मुक्ति का आकांक्षी

३०-४-६७ रामानुज

राधाकृष्ण

२१-राधाकृष्ण लेन, रांची-१

बन्धुवर,

'कुंकुम, कलश और आम्रपल्लव' तथा 'गरीब और अमीर पुस्तकें' पाकर कृतार्थ हुआ। आपकी व्यंग्य कृतियों से मैं पहले से ही परिचित था। 'कुंकुम, कलश और आम्रपल्लव' में आपकी आत्मा का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ा, जो बहुत ही मनोहर है। मैं स्वयं गांधीवाद का पुजारी था, मगर अब बड़ा दुःख मालूम होता है, क्योंकि षड़यंत्र में पड़कर गांधीवाद नष्ट हो गया। आजकल गांधीवादी शीर्ष नेताओं का जो रूप उभरा है और उनकी वाणी जिस प्रकार आतमहीन हो गई है वह उत्साहप्रद नहीं है और न उससे आशायें होती हैं। आज यह भी देखता हूँ कि जनता ने गांधी जी को गांधीवाद के कारण नहीं अपने अंधविश्वास के कारण स्वीकार किया था। अब तो गांधीवाद का रहा-सहा प्रभाव भी नष्ट किया जा रहा है। इन बातों से मैं बहुत दुखी रहता हूँ, क्योंकि बहुत सोचने पर भी हमारा सांस्कृतिक मार्ग नहीं मिल पाता। यदि आप इस सम्बन्ध में अपने विचार भेजें तो कृतज्ञ होऊंगा।

पुस्तकों के लिए कृतज्ञ हूँ। शीघ्र ही दूसरा पत्र भी लिखूंगा। आजकल दमा के कारण बहुत कष्ट में हूँ। कृपा बनी रहे। आपकी कृतियों ने मेरे मन में आपसे मिलने की उत्सुकता भर दी है।

विनीत

जनवरी १६, १९७६ राधाकृष्ण

२१-राधाकृष्ण लेन, राँची

बन्धुवर,

आपका पत्र पाकर सन्तोष मिला। दमा से मेरी जान-पहचान हो गई है—यानी सन् '७३ से। इसीलिए ऐसे दुखदायी मित्र से बड़ी घबराहट होती है। मगर अब उपाय नहीं। पतिव्रता नारी की भाँति यह वेदना चिरसंगिनी बन गई है। आजकल मौसिम अच्छा है, इसलिए दम भी ठीक है। फिर जब गर्मी अधिक होगी उसी समय से परेशान होना आरम्भ हो जायगा। गान्धी जी अपने आप में बहुत महान थे। शायद कलियुग में इतना महान व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। मगर उन्होंने जिनको प्रिय पात्र बनाया, अधिकार दिया और अपने सिद्धान्त सोंपे, वे लोग बहुत घटिया किस्म के आदमी निकले। गान्धी जी की हत्या तो हुई ही, गांधीवाद की भी हत्या की गई। अब भारत फिर से गांधीवाद के पास पहुंच पायेगा इसकी आशा भी नष्ट हो गई है, क्योंकि आजकल सुनियोजित प्रतिध्वनियां आ रही हैं कि राम नहीं हुए, महाभारत का युद्ध नहीं हुआ, पुरातनकाल के अस्त्र-शस्त्रों की बात कोरी कल्पना है—यानी भारत की संस्कृति पर लगातार प्रहार। इस तरह की बात वे आज ही और इस तरह क्यों कहने लगे? मालूम होता है कि यह सब योजनाबद्ध रूप से हो रहा है। विनोबाजी आचार्यों की बात करते हैं केवल काम लेने के लिए। इस तरह अंट-संट बकने वाले को डाँटते क्यों नहीं? खैर। अब इन सारी बातों की चर्चा बेकार हो गई। अब बस भगवान का ही भरोसा है। मैंने तो किनारा-कशी कर ली। केवल राम-नाम का आधार है। बाकी चुप रहता हूँ।

"बालू जैसी किरकरी, ऊजरी जैसी धूप।
ऐसी मीठी कुछ नहीं, जैसी मीठी चुप ॥

आशा है आप प्रसन्न हैं। आपका पत्र और समाचार मिलता रहे तो कृपा मानूं।

आपका
राधाकृष्ण

८ मार्च, १९७६

केशवचन्द्र वर्मा

५० ए, टैगोर टाउन, प्रयाग

प्रिय भाई,

आपकी पुस्तक पूरी आद्योपांत पढ़ गया। शुरू किया था यह सोचकर कि थोड़ी-थोड़ी पढूंगा पर पढ़ना शुरू किया तो सच मानिए कि दो तीन बार हजामत का पानी गरम होकर मेज पर आया पर वह ठण्डा होता रहा और मैं किताब पढ़ता रहा। आपने बहुत अच्छा लिखा है। व्यंग निबन्ध बहुत अच्छे लगे। 'अंतर्देशीय लिफाफे का जन्म' 'ताश के बादशाह, मेम्बर महिमा, क्या दम रखा है, 'आदमी और समाचार पत्र' नये देश में 'बीसवी सदी' आदि लेख हिन्दी व्यंग के उत्कृष्ट नमूने लगे, मुझे तो भाई।

'पोस्टरों की खेती' और 'पोस्टरों के गाँव' वाले इस देश के लोग काश ! इस तरह की चीजें आँख खोलकर पढ़ते !!

मैं ६ मार्च को पूना जा रहा हूँ। यदि सौभाग्य हुआ तो स्टेशन पर आपके दर्शन चाहूंगा। निश्चित कार्यक्रम की सूचना दूंगा।

आपका

१-३-६० केशव चन्द्र वर्मा

'रूपक वाले लेख भी बड़े रोचक हैं—बड़े काव्यात्मक। बादल की हरकत बड़ी सुन्दर है।

डा० रामविलास वर्मा

राजमण्डी, आगरा

प्रिय उपाध्याय जी,

आपकी हिमालय और गंगा वाली बात इस तरह सार्थक हो गई कि, मैं पत्थर हूँ और पानी भी। निराला के शब्दों में—

"अशिव उपन्यासकार मंगल द्रवित जल निहार" की तरह।

स्वास्थ्य अच्छा न होने से पढ़ना लिखना कम हो गया है। आशा है आप स्वस्थ्य और प्रसन्न हैं।

आपका

२-१२-७० रामविलास शर्मा

विष्णुकांत शास्त्री

२८० चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-६

आदरणीय रामनारायण जी,

वर्धा में जिस अप्रत्याशित ढंग से हम लोग मिले, उससे मिलने का दूना हो गया। जीवन के अवांछित दु:खों से घबराता हुआ आदमी ऐसे ही अकल्पित आनन्द की संजीवनी पाकर पुनः अपने कर्तव्य में लग जाता है। आपकी सरलता और निश्चल आत्मीयता ने मुझे अनुभव ही नहीं होने दिया कि हम लोग पहली बार मिल रहे हैं। आपकी पुस्तकें अभी तक नहीं मिली हैं उन्हें जरूर प्रेम से पढ़ूंगा और अपनी बात को आपको लिखूंगा। प्रकाशन संबंधी आपकी जादूगरी ने तो मुझे विचलित ही कर दिया। हिन्दी में शायद आप अकेले ऐसे लेखक हैं जो प्रकाशक के मुंहताज नहीं। आनन्द रहे।

स्नेही

२७-१-७५ विष्णुकांत शास्त्री

२८० चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता

आदरणीय उपाध्याय जी,

सादर नमस्कार

आपका पत्र पाकर मैं चुरू के कार्यक्रम में गया था। आप मंच पर विराजमान थे, मैंने तीन बार आपको नमस्कार कर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहा, पर सफल न हो पाया। मुझे उसी के बाद एक कार्यक्रम में बोलना था। अत: जल्दी जाने की लाचारी थी। राम जी की इच्छा!

आपकी रचनाएं देखता ही रहता हूँ। राजनीति के कारण मेरा

लेखन अस्त-व्यस्त हो गया है । फिर नियमित रूप से लिखना चाहता तो हूँ, पर देखिए क्या होता है? धर्मयुग के सितम्बर के किसी अंक में "विधायक जीवन के अनुभवों" पर मेरा एक लेख आ रहा है । कृपा बनाये रखें ।

शुभेच्छु

८-८-८२ विष्णुकान्त शास्त्री

राजनाथ पांडेय

सुल्तानपुर (अवध)

प्रियवर भाई उपाध्याय जी,

नेह नमन ;

'सुख के नाम पाती' की आपकी भेजी एक प्रति मुझे कल मिल गई है । मैं इसे उलट-पुलट रहा हूँ । पूरी पढ़ डालने के बाद आपको कभी विस्तार में लिखूंगा ! अपने स्वभाव, व्यक्तित्व और लेखनी के बीच आपका तादात्म्य आज हिन्दी में दुर्लभ है ! अंग्रेजी के चार्ल्स लम्ब आप हिन्दी में है ! मध्यप्रदेश में बख्शी जी, माखनलाल जी और अख्तर हुसेन रायपुरी के बाद गद्य-लेखन में आपका, परसाईजी का और शरद जोशी का अप्रतिम स्थान है ! जोशी जुही, परसाई पारिजाता और रामनारायण गुलाब हैं।

मुझे तो मध्यप्रदेश ने अपनाया नहीं। उत्तर प्रदेश में अनजान हूँ क्योंकि तब के संगी साथियों में से कई तो चले गये और कई मुझसे और मैं उनसे अज्ञात ही हूँ। सब में कुछ अमृत कुछ विष होता है। अमृत मैं म० प्र० को दे आया । विष स्वयं पीकर पचा रहा हूँ। पर किसी से शिकायत नहीं, लेशमात्र भी नहीं। कृपा स्नेह बनाये रहेंगे। सदा आपका अपना,

स्नेह वाहन

२३-१२-७० राजनाथ पाण्डेय

प्रभुदयाल अग्निहोत्री

हिन्दी ग्रन्थ रचना अकादमी २७ **मालवीय नगर, भोपाल**

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

आपका पत्र मिला ! पुस्तक मुझे मिल गई थी। मैंने उसका बहुत-सा अंश देख लिया है। आपकी दृष्टि बड़ी पैनी है, और लेखनी बड़ी सशक्त। आपकी प्रायः सभी रचनायें मैंने देखी हैं। 'सुख के नाम पाती' में ईमानदार, देश भक्ति की लाचारी हर पृष्ठ पर मुखर है। जब साहित्य व्यवसाय और देश भक्ति वंचना नहीं होती तो ऐसी टीसें प्रायः उठा करती हैं। पुस्तक में उनकी सरल, सहज और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई हैं।

आपके लेखन के लिए मेरे मन में सदा ही प्यार रहा है।

सप्रेम

२८-१२-७० प्र० द० अग्निहोत्री

ई २/७३ **अरोरा कालोनी, भोपाल**

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

कृपा पत्र के लिए धन्यवाद। यह इस बात का द्योतक है कि हमारी पीढ़ी के साथी पारस्परिक सुख-दुःख का कितनी आत्मीयता से अनुभव करते हैं। इससे शक्ति प्राप्त होती है और जीवन के प्रति आस्था बढ़ती है। यों भी जब से मैंने सारी सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं से अपने को अलग कर लिया है, देश के कोने-कोने से स्नेह सम्मान का उत्स फूट पड़ा है। समाज के हाथों बिक गया।

सूचनार्थ—आल इण्डिया ओरियेन्टल कान्फ्रेन्स ने भी मुझे सर्व सम्मति से वैदिक शाखा का अध्यक्ष चुना है।

इस वर्ष केन्द्रीय शासन के शिक्षा विभाग ने मुझे 'शास्त्र चूड़ामणी' के टाईटिल के साथ १०००) मासिक की आनरेरी प्रोफेसर शिप दी थी। मैंने अस्वीकार कर दी निजी कारणों से।

सादर

६-१२-८२ प्रभुदयाल अग्निहोत्री

शिवप्रसाद सिंह

कामा कोठी, दुर्गा कुंड रोड, वाराणसी

प्रिय भाई, नमस्कार !

आपका कृपा पत्र मिला ! माध्यम में प्रकाशित मेरे निबन्ध पर आपने जो स्नेह सौजन्य व्यक्त किया है, उसके लिए कृतज्ञ हूँ !

आपके निबन्धों के दोनों संकलन भी प्राप्त हुए ! आपकी रचनायें इधर-उधर देखता रहा हूँ। अभी इसी 'धर्मयुग' में आपका व्यंग्य निबन्ध भी पढ़ा। आपकी रचनाएं सार्थक व्यंग्य का बेहतरीन नमूना पेश करती हैं। जब भी मिल जाती हैं, खूब मजे से पढ़ता हूँ।

निबन्ध संग्रहों को पढ़ूंगा। ज्ञानपीठ वाली पुस्तकें पहले भी देखी थीं। अब दोनों को काफी ध्यान से पढ़ूंगा और निबन्धों पर कुछ लिखते समय इनका ध्यान रखूंगा।

हिन्दी विभाग में निबन्धों पर होने वाले शोधकार्यों के सिलसिले में भी मैं आपके कृतित्व की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट करूंगा !

आशा है प्रसन्न हैं !

स्नेहाधीन

९-८-६६ शिवप्रसाद सिंह

कामा कोठी, दुर्गाकुंड, वाराणसी

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

नमस्कार !

कृपा पत्र मिला ! 'अश्मक का फूल' पर आपकी सम्मति काफी उत्साह वर्धक रही ! यह चीज आपको और आप जैसे दूसरे सुहृदजनों को अच्छी लगी, मेरे लिए यह बहुत है ! असल में यह नाटक किंचित आवेश की स्थिति में लिखा होने के कारण काफी भावनात्मक हो गया है। फिर भी लोगों को खूब पसन्द आया। प्रयाग से रेडियो पर ७ सितम्बर की रात को प्रसारित हुआ, फिर इसी महीने 'कल्पना' में छपा, परिणामतः इसकी काफी चर्चा हो गई बहुत से पत्र आए हैं !

आशा है आप स्वस्थ सानंद हैं ! मेरे योग्य सेवा निःसंकोच लिखें ।

आपका

२६-६-६६ शिवप्रसाद सिंह

यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मण्डल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

प्रिय भाई,

सप्रेम नमस्कार !

आपका भेजा चित्र मिला और लेख; आभारी हूँ। चित्र ने उन क्षणों की स्मृति सजीव कर दी, जो खण्डवा में आपके निवास पर आप सबके बीच व्यतीत किये थे। किसी महापुरुष ने कहा है—'मैं अपने जीवन में उन्हीं क्षणों को याद रखूंगा, जो आनंददायक थे। मैं भी यथासंभव ऐसा ही प्रयत्न करता हूँ। चित्र को भेजने के लिए आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूं।

आपके लेख का उपयोग करने का ध्यान रखूंगा ! आप सब सानंद होंगे।

सप्रेम आपका

२८-६-७२ यशपाल जैन

पदमसिंह वर्मा 'कमलेश'

गोकुलपुरा प्रयाग

प्रिय भाई,

२८-३-५३ का पत्र मिला। पत्रों में आपकी साहित्यिक साधना की झलक मिलती रही है। आपकी अनेक रचनाएँ मुझे भायीं हैं। यदि ऐसा पता होता तो मैं खण्डवा जरूर बिना मिले न आता। पूज्य दादाजी का इन्टरव्यू मेरी बहुत परिश्रम की रचना होगी। इसीलिए मैं ३-४ दिन रहा था। मैं इस क्षेत्र में नये प्रयोग करने जा रहा हूँ। आपकी शुभकामना

मेरे साथ है, यह मेरे लिए गौरव की बात है। मुझे आपके पत्र से बड़ा बल मिला है। आपके सुझाव को तीसरी किश्त में जोड़ दूंगा—वैसे अनेक साहित्यकारों के पते स्थायी नहीं हैं। फिर भी उनसे पूछकर ऐसा पता दूंगा जहाँ से पत्र मिल सके। तारीख तो दी है।

इस समय थीसिस में व्यस्त हूँ। तीसरी किश्त भी तैयार है, जो ५, ६ महीने में प्रकाश में आयेगी।

एक विनय है कि मेरी रचनाओं में जहाँ त्रुटियाँ दिखें, मुझे लिख भेजें। यह कार्य बड़ा आवश्यक है। मैं उससे लाभ उठाऊंगा। पत्र लिखते रहें।

आपका ऋणी

१-४-५३ पदमसिंह शर्मा 'कमलेश'

आगरा

बन्धु,

७-३-५४ का कृपा पत्र मिला। पढ़कर गद्गद् हो गया! आश्चर्य चकित भी! आप सबकी शुभ कामना से यह कार्य कुछ महत्त्व का हो रहा है यह अनुभव करके मुझे बड़ा बल मिला है।

तीसरा भाग जुलाई तक आ जायेगा। मैं कालिज में पिलता हूँ न! पी० एच० डी० के लिए थीसिस समाप्त करने में एक वर्ष लग गया है। अब जम रहा हूँ। अब उसी कार्य को पूरा करना है। अब सेवा कार्य लिखें। ऐसे ही कृपाभाव बनाए रहें।

विनीत

१७-३-५४ पदमसिंह शर्मा 'कमलेश'

श्री लाल शुक्ल

लखनऊ

प्रिय उपाध्यायजी,

कृपा पत्र और पुस्तक दोनों प्राप्त हुए! अनेक धन्यवाद! रचनाएँ तो आपकी बहुत पहले से पढ़ता आ रहा हूँ! अब इस व्यक्तिगत सम्पर्क का अवसर पाकर बड़ा हर्ष हुआ है।

आपकी शैली बिलकुल अपने ढंग की है। अधिक क्या लिखूँ, कभी अवसर मिला तो इस पर कुछ अलग से प्रकाशनार्थ लिखूँगा।

मैं एक महीने से अधिक हुआ, अपनी पुरानी जगह से बदलकर लखनऊ आ गया हूँ। अभी घर की निश्चित व्यवस्था नहीं हो सकी अतः इस दौरान पत्र-व्यवहार कृपया सरकारी पते से ही करें, वह इस प्रकार है :

डिप्टी सिक्रेटरी, फाइनेंस डिपार्टमेंट
उ० प्र० शासन
सिविल सिक्रेटेरिएट, लखनऊ

आशा है स्वस्थ एवं सानन्द हैं।

आपका
श्री लाल शुक्ल

१८-१-७१

हृषीकेश शर्मा

राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा (इन्दौर)

प्रिय बन्धु रामनारायण उपाध्याय जी

सादर प्रणाम !

उस दिन आप आये मन प्रसन्न हुआ। उसके दूसरे दिन श्री राजेन्द्र अवस्थी आये, काफी बैठे, उसके दूसरे दिन कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग के डीन डा० प्रो० देवीशंकर द्विवेदी जी अपने मित्र के साथ आये और बेतकल्लुफ दो घंटे बैठे ! उसके दूसरे दिन सिक्किम में भारत सरकार के भेजे हिन्दी विशेषाधिकारी एक तरुण सज्जन पधारे, वे भी बैठे; चाय पी गरम गरम और प्रसन्न होकर प्रसन्नता देकर चले गये ! इस हफ्ते साहित्यकारों का संतसमागम मुझे मिला ! राष्ट्र भारती के विशेषांक में जो जनवरी फरवरी का 'स्वतन्त्रता रजत जयन्ती' अंक होगा आपका कुछ प्रेरक उद्‌बोध लेख आना ही चाहिए। इन २५ वर्षों में 'भारत ने क्या पाया और क्या खोया' पर अपने तीव्र प्रहार करते विचार भेजें। ता० २६ तक भेज दें इन्दौर के पते पर।

राष्ट्रभारती के सम्बन्ध में कुछ खयाल करें।
प्रतीक्षा, कष्ट क्षमा।

आपका
२०-१२-७२ हृषीकेश शर्मा

भगवतशरण उपाध्याय

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रियवर,

आपके उत्साह वर्धक पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। जैसा आपने समझा है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिस प्रकार के लेखक संघ की बात मैंने अपने लेख में उठाई है उसका संगठन किया जाय। इस सम्बन्ध में एक लेखकों की सभा भी कल यहाँ हो रही है जिसमें उत्तर प्रदेश के अनेक लेखक उपस्थित होंगे। आप लोग भी कृपया, जहाँ जहाँ संभव हो, लेखक मित्रों में इसकी चर्चा करें जिससे किसी केन्द्रीय स्थान पर लेखकों का एक 'कन्वेंशन, बुलाकर मूल संगठन कर लिया जाय। आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद।

भवदीय
२६-१२-६२ भगवतशरण उपाध्याय

विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन

प्रियवर उपाध्यायजी,

आपके कार्ड के लिए अनेक धन्यवाद। 'घूमने का राज' आपको अच्छा लगा जानकर बड़ा सन्तोष हुआ। सच ही मैंने स्वदेश विदेश में कभी कोई अन्तर नहीं डाला। इससे यात्रायें आसान भी हो गईं, मन को बल भी मिला। आपके उदार माधुर्य के प्रति अनुगृहीत हूँ।

मैं आपके लड़के रमेश से मिलने की कोशिश करूंगा। और बुलवा भी लूँगा, पर उससे भी पहले आपसे मिलने की इच्छा है। मुझे बुरहानपुर अगले सोमवार को किसी एक संस्था में व्याख्यान के लिए जाना है। सुबह ही लोग यहाँ से मुझे कार से ले जायेंगे। अगर खण्डवा रास्ते में मिला तो

१०/११ बजे के आस पास आपसे वहाँ मिलने की कोशिश करूंगा।

स्नेह सहित

आपका

२६-९-७० भगवतशरण उपाध्याय

व्योहार राजेन्द्र सिंह

रेल में

प्रिय रामनारायण,

विनोबाजी से मिलकर लौट रहा हूँ। स्टाल पर आपकी पुस्तक देखी (युग-पुरुष गाँधी) तो ले आया। एक ही साँस में पूरी पढ़ डाली। बाधा दी सिर्फ आँसुओं ने जो बार-बार आते थे।

मैंने लुई फिशर की पुस्तक को पढ़कर निश्चय किया था कि वही गाँधी जी पर सबसे अच्छी पुस्तक है। आपकी पुस्तक को उसी के समकक्ष रखने का मन होता है। गाँधी जी पर जो पुस्तक मिलती है पढ़ जाता हूँ। अभी तेंदुलकर की 'महात्मा' पढ़ना शुरू किया है। आप भी पढ़ें वह ८ भागों में है। 'लास्ट फेज' तो पढ़ी ही होगी। काफी परिश्रम किया है आपने। मैंने भी 'बापू की कहानियाँ' ५ भागों में लिखी है छठवाँ छपने वाला है।

आज विनोबा पर रास्ते में लेख लिख रहा था उसमें भी आपका एक वाक्य उद्धृत किया है। बापू के आज वे ही प्रतिनिधि हैं। मन होता है कि उन्हीं के काम में जीवन लगा दूँ। आप सरीखे कुछ साथी चाहता हूँ।

बहुत दिन से मिले नहीं। किसी समय अवश्य आइये। शेष सब कुशल है।

आपका

२४-२-६४ व्योहार राजेन्द्रसिंह

बालकवि बैरागी

मनासा (मन्दसौर)

आदरणीय श्री रामा दादा,

सादर अभिवादन।

मंत्री पद से त्याग पत्र देकर मनसा आ गया हूँ। सदैव की तरह व्यस्त तो हो ही गया। एक दिन भी मुझे इस दूरी को पाटने में नहीं लगा। इन क्षणों में आपका पत्र मिला। मेरे आगामी जीवन के लिए आपका यह पत्र पाथेय तो है ही पर दिशादान की पूरी क्षमता इस पत्र में मैं पा रहा हूँ। एक फकीर आदमी को क्या चाहिए, जो ज़माने के लिए दुआ करे, जमाना उसे दुआ दे दे बस इतना ही। आपके इस पत्र ने मुझे अकेला नहीं रखा। लगा कि चाहे दूर हो पर कहीं कोई मेरा अपना है, जिसकी आशीषें मुझे आजीवन याचते रहना चाहिए। यह पत्र नहीं है प्रसाद है। यदि मैं इसके लिए आपका आभार न मानू तो प्रसाद अपना स्वाद और श्री खो देगा। अवसर शुद्ध है फिर भी ऐसा नहीं करूंगा।

मेरा विश्वास है कि आप सपरिवार सानन्द होंगे। मैं तो अपनी मिट्टी में आमूल रम गया। मेरे लायक सेवा आप उसी तरह बताते रहें जिस तरह अपने परिचर को बताया करते हैं। प्रभु मेरी विनम्रता बनाये रखे। मेरी कलम विपन्न नहीं हो। मैं सुखी हूँ।

मायावरी में आपके दर्शन होंगे ही। आपका स्वास्थ्य मैं अपनी उम्र से जोड़ता हूँ।

सबको मेरा आदर।

आपका लेख मुझ पर विशेष कृपा का द्योतक है।

विनीत

६-७-८१ बालकवि बैरागी

देवकृष्ण जोशी

३५ गोपालबाग (कलावीथिका) इन्दौर-४

प्रिय रामनारायण जी उपाध्याय

जयहिन्द

महोदय :—दिनांक ४-३-७८ को एक पत्र आपका मिला। उसके अनुसार दो फोटोग्राफ व एक मूल प्रतिलिपी व आपके द्वारा लिखित लेख थोड़े करेक्शन के बाद वापस संलग्न भेजा है। आपने बड़ा कष्ट किया है मैं आभारी हूँ।

मैं अब सही माने में अपनी महत्वपूर्ण चित्रों को बनाने में व्यस्त हूँ। अभी तक तथा वर्तमान में भी कलाकार्य करने में जो आर्थिक कठिनाइयाँ है उसे पार करने में अब मैं सक्षम हूँ। किसी भी हालत में अब मैं आधुनिक नवीन लोक चित्रकार के रूप में ही कार्य कर रहा हूँ। वह एक प्रदेश के गौरव और उसके सांस्कृतिक उत्थान की एक सामग्री धरोहर के रूप में जीवित रहेगी। इस आशा से तथा आप लोगों द्वारा जो प्रेरणा मिली है, मैं कार्यमग्न हूँ मैं इससे अधिक किसी काबिल नहीं हूँ।

आप मुझे बहोत ऊँचे स्थान पर न ले जावें। मैं जहाँ हूँ आनन्द से हू। वास्ते मूल पत्र से मैंने कुछ काँट-छाँट की है माफ करें। मैं अपनी प्रगति को रुकावट के मार्ग पर से दूर रहना ही मेरी नियति है। कष्ट के लिए आभारी (चलो, ऐसे चलो, मार्ग अवरुद्ध न हो जावें)।

आपका प्रिय

५-३-७८ देवकृष्ण जोशी

१८४-शहीद स्मारक पथ, जबलपुर—२

नर्मदा प्रसाद खरे

प्रिय भाई,

पत्र मिला। गीत पसन्द आया। यह आपकी गुण-ग्राहकता और संवेदन-शीलता का परिचय है। आज तो ऐसी रचनाओं को पुरातनवादी घिसी-

पिटी रचनाएँ मानते हैं। मैं तो सहज कवि हूँ। मन में जब जैसी लहर उठती है, वैसे उसे शब्दबद्ध कर देता हूँ। विनयकुमार और विपिन में भी यही बात थी। आज तो मुखौटों और नारों और वादों की कविता हो गई है। जो बात गद्य में व्यंग पूर्ण ढङ्ग से लिखी जाती है, उसे कविता का आग्रह क्यों लेना। मैं आपका प्रतिनिधि संग्रह छापूंगा। सुन्दर साज-सज्जा के साथ।

१५-३-७३ नर्मदा प्रसाद खरे

१८४, शहीद स्मारक पथ, जबलपुर-२

प्रिय भाई

पत्र और लेख मिला। तुमने तो मेरे निबंधों के माध्यम से मेरा जीवन-चरित्र ही लिख डाला। मेरी मान्यता तो यह है कि जहाँ तक निबंध-लेखन का प्रश्न है, तुम्हारे ललित निबन्धों की तुलना मेरे निबंध बहुत हेठे हैं।—शिल्प, भाषा और कथ्य तीनों में तुम बाजी मार ले गये हो। मैं तो मूल रूप से कवि हूँ। कवि की संवेदनशीलता, ईमानदारी और अकृत्रिमता ने सहज भाव से मन की बातों को शब्दों का चोला पहनाया है, वह बरबस हृदय स्पर्श करता है। एक यही विशेषता है उनमें।

आगामी वर्ष एक पुस्तक छपवाने का इरादा है—'सान्निध्य'। इसमें जिन साहित्यिक विभूतियों के सान्निध्य में आया हूँ, उन पर संस्मरणात्मक लेख होंगे। पुस्तक सचित्र होगी। स्वयं के जीवन पर एक उपन्यास लिखने का भी विचार है। अभी लखनऊ में उस बारे में काफी देर बात हुई। उनका कहना है कि यदि कुछ स्मृतियों का स्फुरण और अनुभूतियों की प्रमाणिकता लिखने को प्रेरित करती है तो अवश्य लिखिए। यशपाल जी से पहली बार मिला था। बहुत प्रभावित हुआ। पहली भेंट में ही आत्मीयता से नहला दिया उन्होंने। मैंने पिछले पत्र में भी पूछा था कि तुम्हें भोपाल 'साक्षात्कार' कार्यक्रम में तो आमंत्रित नहीं किया गया। पहले यह कार्यक्रम २ से ५ अक्तूबर तक होने वाला था, अब ५ से ६ अक्तूबर तक का कार्यक्रम है। ऐसी हालत में ६ अक्तूबर को कार्यक्रम में व्यवधान हो सकता है। मुझे बुलाया गया है। एक तो संभवतः स्वास्थ्य के कारण मैं

यात्रा न करूं—और यदि गया भी तो ५ के कार्यक्रमों में सम्मिलित हो ६ को सबेरे जबलपुर—लौट आऊंगा। यहाँ मित्र व्यवस्था कर लेंगे। अनौपचारिक अन्तरंग आयोजन होगा—बुद्धि जीवियों और साहित्यानुरागियों का।

तुम्हें तो घर पर ही ठहरना है इसलिए कोई असुविधा न होने पायेगी।

२४-९-७५ नर्मदा प्रसाद खरे

रामप्रसाद "रावी"

कैलास, पो० सिकन्दरा, आगरा

बन्धुवर उपाध्यायजी,

१२ ता० को पत्र मिला, १६ को पुस्तक। उसी दिन बारात में एटा जिला जा रहा था सो इस यात्रा और समारोह में आपकी रचना ने ही मेरा सबसे बड़ा और पूरा साथ दिया। इस भेंट के लिए बहुत कृतज्ञ हूँ।

सभी रचनाएँ मुझे विशेष प्रिय लगी क्योंकि वे बहुत ही निश्छल और निराडम्बर रूप में जीवन सन्निकट हैं। दैनिक जीवन के व्यवहारों को सार्थकतापूर्ण गहराई तक देखने की, और अनेक स्थलों पर एक कुशल कलाकार की दृष्टि से देखने की, प्रेरणा इन रचनाओं में है। आपके सम्बन्ध में भाई वीरेन्द्र कुमार की धारणा से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। इन्हें ही पढ़कर मैंने सोचा है कि ऐसी रचनाओं के गाँवों की साँध्य-सभाओं में नियमित पठन-मनन कर हम लोगों को कोई मार्ग निकालना चाहिए।

भवदीय

२२-२-१९५३ रावी

रामविलास शर्मा

इन्दौर

आदरणीय दादा,

आपका पत्र मिला। सोचता रहा उत्तर में स्वयं उपस्थित हो जाऊँ

किन्तु जिन्दगी तो मोटर के पहिये से बंधी है। संतोष यही है कि धूल के साथ गति तो है।

आप जैसे स्नेही मित्रों के उत्साह से ही अपने कुँए में जल बनाए हुए हूँ। जब भी बन पड़े बाल्टी-दो बाल्टी खींच लेता हूँ। सतर्क रहता हूँ उसमें पंक न आये।

आपके कुँए में तो पुरुषानबद्ध पानी है। दिन रात चरस चलती रहे फिर भी एकदम ताजा, निर्मल, मीठा।

यादों के इत्र को महक की संवेदना को परखने वाले मेरे आदरणीय मित्र आपको मैं कैसे भूल सकता हूँ। संग्रह छप चुका है, आया नहीं। मिलते ही निश्चित आपको भेजूँगा। आप उज्जैन तो आ ही रहे हैं। वहाँ भेंट होगी।

शेष कुशल।

सस्नेह
रामविलास शर्मा

शंकर पुणताम्बेकर

१६३, **जिल्हा-पेठ जलगाँव,** ४२५००१

आदरणीय महोदय,

आपका पत्र कल ही मिला। हृदय से आभारी हूँ। वास्तव में मैं आप जैसे विद्वान और दिग्गज साहित्यकारों के आशीर्वाद से ही 'श्रेष्ठ लघु-कथाएं' के संकलन का कार्य पूरा कर सका। आपकी प्रतिक्रिया से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और भविष्य के लिए प्रोत्साहन मिला। आगे मेरा विचार इसी तरह का दूसरा संकलन निकालने का है। जिसमें वे लेखक होंगे जिनकी कथाएँ इस पहले संकलन में नहीं आ सकी हैं। आप जैसे प्रतिष्ठित और जाने-माने लेखकों की एक-एक या दो-दो रचनाएँ भी इसमें होंगी। इस संकलन के रैपर पर आपके इस पत्र की पंक्तियाँ पहले संकलन के संदर्भ में देने का इरादा कर रहा हूँ। इस तरह की प्रतिक्रियायें अन्य

लेखकों से भी मिलने की उम्मीद है। इस पुस्तक की समीक्षा 'प्रकर' हिन्दी (जुलाई, ७७) में आई है। 'समीक्षा' (पटना) में भी शीघ्र आयेगी।

प्रूफ की काफी गलतियाँ हुई हैं। प्रकाशक ने भी स्वीकार की है।

विनीत

४-८-७७ शंकर पुणताम्बेकर

श्रीकान्त वर्मा

विलासपुर

प्रिय भाई,

आपका पत्र व निबन्ध मिले थे। अपनी अस्वस्थता व व्यस्तता के कारण शीघ्र उत्तर न दे सका। क्षमा करेंगे। आपका निबन्ध बहुत अच्छा है। वास्तव में इस प्रकार का प्रयास स्तुत्य है। आपने अपने प्रदेश के नये कवियों को इतनी सहृदयता से परखा, इसके लिए मेरा नमस्कार स्वीकारिये।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप हमारे कविताङ्क के लिए अपने प्रदेश के कुछ उत्कृष्ट लोक गीत अपनी टिप्पणी के साथ भेजें। हमें सहयोग दें।

श्री प्यारेलाल गुप्त यहाँ के वयोवृद्ध साहित्यसेवी हैं। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप उन्हें उनके कार्य में, बाँधव के नाते सहायता दें। वे एक महत्त्वपूर्ण खोज कर रहे हैं। क्या आप उन्हें कुछ समय के लिए पुस्तकें दे सकेंगे या उन्हें लिखें वे कहाँ उपलब्ध हो सकेंगी?

आशा है प्रसन्न हैं। रचना व पत्र की प्रतीक्षा में,

आपका

९-१२-५५ श्रीकान्त वर्मा

रवीन्द्र कालिया

इलाहाबाद प्रेस, ३७० रानी मंडी, इलाहाबाद

प्रिय भाई,

'सुख के नाम पाती' मिली। पढ़ गया। व्यंग्य लेखक विनीत रहकर भी इतना प्रहार कर सकता है, यह आश्चर्यजनक रूप से अविश्वसनीय लगा। आपने अन्य व्यंग्य लेखकों की भाँति अपने को मसीहा भी नहीं मान लिया, यह शुभ लक्षण है। भारतीय जन जीवन का इतना सटीक और आत्मीय और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण मुझे अन्यत्र नहीं मिला। हम दोनों की हार्दिक बधाई।

आपका

११-८-७० रवीन्द्र कालिया

धनञ्जय वर्मा

१३१ आजाद रोड, नरसिंहपुर

प्रिय उपाध्याय जी,

अगस्त की 'नई कहानियों' में आपकी रम्य रचना पढ़ी थी। और बेसाख्ता आपकी याद आई कि आप सामने बैठे हुए ठहाके, लगाते-लगाते मीठी चुटकियाँ ले रहे हों। निबन्धों में व्यक्तित्व का दर्शन होता है। आपको देखकर आपके निबन्धों की याद आती है। और आपके निबन्धों को पढ़ते आप साक्षात खड़े हो जाते हैं। सीधे, सहज, आत्मीय, और खुले।

आपसे मिले अर्सा हो गया। खूब इच्छा होती है, कि दो चार दिन मुक्त होकर जियें, लेकिन फिर कोई सूरत नज़र नहीं आती।

सादर

१३-१०-६९ धनञ्जय वर्मा

नरसिंहपुर (म० प्र०)

प्रिय उपाध्याय जी,

आपका पत्र मिला। मैं पिछले कुछ दिनों से वाकई गर्दिश में हूँ। ऐसी

मनः स्थिति में आपका आत्मीयता से भरा स्नेहपूर्ण पत्र पाकर वाकई राहत मिली। ऐसी जिन्दगी में जो मुफलिस की कबर की तरह हो और जिसमें दिन-ब-दिन दर्द के पैबन्द लगे जाते हों, आप सरीखे स्नेही शुभिषियों के प्यार भरे खतों का मूल्य क्या और कितना होता है, कोई मुझसे पूछे।

आपने 'अंधेरा नगर' पढ़कर जो कुछ लिखा उसमें अपने छोटे भाई के प्रति स्नेह का अतिरेक तो झलकता ही है, वह मेरे लिए संतोष और प्रेरणा का कारण है। आपका एक वाक्य मैं अक्सर दोहराता हूँ—'हे प्रभो सच को सच कहना तो बड़ा कठिन है, झूठ को सच नहीं कहना पड़े इतनी शक्ति दे।'

झूठ को सच न कहने के लिए ही जिस ईमानदारी, साहस, सहजता और विश्वास की जरूरत है, वह कितनों में मिलता है। आपका यही सही व्यक्तित्व हम सबके लिए आदर और आकर्षण का विषय है।

सप्रेम सादर

आपका

१६-१-७३

धनञ्जय वर्मा

दुष्यन्त कुमार

भोपाल

भाई उपाध्यायजी,

धनंजय ने आपकी इतनी तारीफ की थी, आप न लिखते तो शायद पहला पत्र मेरा ही मिलता। अच्छे और फक्कड़ आदमियों से मिलना इस जमाने में कम ही हो पाता है।

मैं खंडवा आने की सोच तो तभी से रहा हूँ जब से धनंजय गया है, पर छुट्टियाँ न होने के कारण मन मारकर रह जाता हूँ। वह बहुत प्यारा और जानदार आदमी है। उसके जाने से भोपाल सूना हो गया है मेरे लिए। अब आप भी कहते हैं तो आना तो पड़ेगा ही, पर कब; यह नहीं कह सकता। आप ही इधर आइये वैसे आपका तो काम निकलता ही रहता होगा, इधर आने का!

सस्नेह

२४-८-६४

दुष्यन्त कुमार

भोपाल

प्रिय भाई,

पुस्तक मिली। शानी भी यहीं आ गए हैं सो कल उन्हें मैंने पहला 'धुँधले काँच की दीवार' लेख पढ़कर सुनाया। रात में हम दोनों ने और भी लेख पढ़े। असाधारण महत्व की बातें साधारणता के साथ कह देने का यह आर्ट बड़ा दुर्लभ है। यह कला कहाँ से सिद्ध की आपने। विद्यानिवास जी ने इतनी ठीक बातें कही है कि आलोचना लिखते बचता हूँ कि वे ही बातें मुझे कहनी पड़ेंगी फिर भी लिखूँगा। निबन्धों का जो एक गुण होता है कि व्यक्ति उसमें हों, सो मुझे तो पुस्तक के बहाने रामनारायण जी से ही भेंट हो गई। हँसते, चुटकियाँ लेते सरल मगर प्रखर दृष्टि वाले उपाध्याय जी से मेरी यह चौथी-पाँचवीं भेंट हुई, बधाई···

सस्नेह

२१-१-६६ दुष्यन्त कुमार

मनमोहन मदारिया

१०५/५ (१४६४) **टी० टी० नगर, भोपाल**

प्रिय बंधु,

दिनांक २६-२ से ६-३-७२ तक लखनऊ में रहकर लौटा हूँ। होली के अवसर पर अनेक पत्र पत्रिकाओं में आपके ठहाका लगाते चेहरे को पढ़ता रहा हूँ। उस चेहरे पर गुलाल फेरने की तबियत होती रही है, सो देर से ही सही अब फेर रहा हूँ। इन शब्दों के रूप में कि, उम्र आपकी भले ही जो हो लेखनी अभी भी उदण्डावस्था में है। यह ऐसी ही रहे।

विस्तार से फिर पत्र नहीं दे रहा हूँ, लेकिन क्षमा नहीं मागूंगा। एक आश्वासन ही दूंगा कि अगली बार······। परिवार में सबको मेरा स्नेह नमन करें।

१२-३-७२ मनमोहन मदारिया

अनिल कुमार

भोपाल

प्रिय भाई,

सप्रेम।

पत्र मिला मैं महीने भर के लिए नागपुर जा रहा हूँ। आपने समीक्षा पसंद की यह आनन्द की बात है। मेरी समीक्षा से मित्र और साहित्यकार भड़क जाते हैं। मेरी पसंद नापसंद का दायरा है। नापसन्द का अर्थ निन्दा नहीं होता, लेकिन साहित्य लिखने वाला संवेदनशील प्राणी केवल प्रशंसा चाहता है। कुछ भी कटु नहीं सुनना चाहता। ऐसे में लेखक खासकर समीक्षा लेखक का काम दुष्कर हो जाता है। वैसे भी आपकी कई किताबों का सिर पर कर्ज था, सोचा था एकाध का तो बोझ उतार दूँ। कई लेखन दायित्यों में घिरा हूँ। उसमें से समय व तन्मयता निकाल कर यह काम करना पड़ता है। 'सुख के नाम पाती' की समीक्षा लिखने के बाद मुझे स्वयं ही बड़ा सुख व सन्तोष मिला था। शेष शुभ।

आपका

१५-५-७१ अनिल कुमार

दिनकर सोनवलकर

गौशाला पथ, जावरा (म. प्र.)

आदरणीय अग्रज,

सस्नेह नमन।

'सुख के नाम पाती' मिली। इस आत्मीय अक्षर प्रसाद को पाकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है कैसे प्रगट करूँ। इसे आपके स्नेह का आशीष समझकर सहेज रहा हूँ। व्यंग रूपक और ललित निबन्धों के रूप में प्रस्तुत आपकी यह समर्थ कृति त्रिगुणात्मक प्रतिभा का स्पष्ट प्रमाण है। व्यंग में आपकी निर्भीकता, रूपकों में काव्य दृष्टि और निबन्धों में जीवन अनुभव को अभिव्यक्ति मिली है। और इन सबको एक सूत्र में बांधकर प्रभाव-

शाली बनी रही है। आपके व्यक्तित्व की एक सहज नम्रता जो 'साधारण' जन के प्रति समर्पित है।

मेरी क्या विशाल कि आपके लिखे पर कोई मन्तव्य करूँ। आपका प्रेरक स्नेह मुझे मिलता रहा है, यह मेरी उपलब्धि है। भाई नारायण से नमस्कार कहें,

विनम्र शुभ कामनाओं सहित।

आपका ही
दिनकर

३१-३-७१

श्रीनिवास जोशी

लिमये बंगला ४०/१३ भोंडे कालोनी एरंडवन, पुणें-४

प्रिय भाई उपाध्यायजी,

आपके पत्र यथा समय प्राप्त हुए। मैं सम्मेलन के बहाने उधर काफी दिनों तक रहा। इस कारण यहाँ आते ही बम्बई के चक्कर शुरू हो गये। कल रात लौटा और आज आपको पत्र लिखने बैठा हूँ।

हम लोग इतने निकट होकर भी इतने दूर बने रहे इसका मुझे आश्चर्य हो रहा है। स्व० दादा और भाई प्रभाग जी के जमाने में उधर अक्सर आता भी रहा। पर आपसे भेंट का योग नहीं आ पाया।

मालवी निमाड़ी सम्मेलन '७३ मेरे लिए एक नई वस्तु थी। सुगठित रूप से इसका भव्य कार्यक्रम मालवी निमाड़ी का मैं पहली बार देख रहा था। आप सपरिवार सम्मेलन पर छाये हुए थे। गोष्ठी का आनन्द भी मैं भूल नहीं सकता। इस बार पूरा कार्यक्रम बहुत सुन्दर रहा। आपके योग-दान के बिना कार्यक्रम फीका रहता। विशेषकर मनोरंजन का कार्यक्रम।

आपकी पुस्तक मैंने दूसरे ही दिन से पढ़ना शुरू की मगर भाई राजेन्द्र जोशी और कैलाश जोशी ने पढ़ने के लिए ले ली। दो-चार रोज में वे भेज देंगे। तब इस विषय में विस्तृत रूप से लिखूँगा। मालवी निमाड़ी

पुस्तकों के प्रकाशन में आप इसी प्रकार योगदान दें तो बहुत बड़ा कार्य होगा।

देखिए अब कब भेंट होती है।

आपका

५-२-७४ श्री निवास जोशी

नेमीचन्द जैन

२०५, उषानगर, सुखनिवास मार्ग, इन्दौर २

प्रिय भाई,

आपका १ फरवरी का पत्र यथासमय मिल गया था।

मंडलेश्वर आना चाहता था नहीं आ सका। हिन्दी के मरे हुए लोगों से जी मरा हुआ था। सच, हम सब जड़ निष्प्राण हो गए हैं। स्थितियों में इतना विपर्यास है कि कोई भी निष्कलुप हृदय शान्त नहीं बैठ सकता। अहिंसक शौर्य प्रकट होने को बारबार खिड़की तक आ पहुँचता है। सारी तरुणाई देश की चकवाग्रस्त है। राजनीति से विषदंश उसके जिस्म पर इतने गहरे हैं कि कई बरसों तक वह अपने मूल रूप में नहीं लौट पावेगी। साहित्यकार और उसका व्यक्तित्व नीलामी में चले गए हैं। बड़े पत्र, आकाशवाणी, सरकारी क्षेत्र उन्हें लील गये है। चाहें जो कहे—हिन्दी को अब अव्यावसायिक पत्रों की जरूरत है। हम सबके कुछ खोने मिटने से हिन्दी का यदि कुछ मिलता बनता है तो हमें उतनी कुर्बानी के लिए अब तैयार हो जाना चाहिए। आप अक्षर कुबेर हैं, अपनी एक कलम की एक फाँक इस काम के लिए दे डालिये। मैं अप्रैल में एक पत्रिका ला रहा हूँ। अपना सर्वश्रेष्ठ इसमें डालिये। विशुद्ध साहित्यक परँपराएँ हम इस तरह मिटने न देंगे। मुझे विश्वास है आपका तथा आपके मित्रों का सहयोग मुझे अवश्य मिलेगा।

आपके पत्र के कुछ अंश बड़े मार्मिक हैं। 'आज लेखक की कृति को स्नेह से दुलारने वाले भी कम होते जा रहे हैं।' मैं आपके इस वाक्य पर सब कुछ उत्सर्ग कर दूँगा, कार्योत्सर्ग, आत्मोत्सर्ग। हिन्दी के लेखक को अपनी

योग्यतानुसार उसका देय अवश्य दूंगा। आपकी पुस्तक पर मेरी ही पत्रिका में जल्दी ही लिखूँगा।

विनीत

१३-२-७१ नेमीचंद जैन

श्याम सुन्दर व्यास

१४८ गाँधी पार्क कालोनी, इन्दौर १

भाई उपाध्याय जी,

आपकी पुस्तक 'सुख के नाम पाती' पढ़ चुका हूँ। आपके व्यंग्य बड़े ही सहज एवं सटीक हैं। इन 'वैष्णवी व्यंगों' की जितनी भी प्रशंसा की जावे थोड़ी है। ललित निबन्ध भी अच्छे बन पड़े हैं। आपकी लेखन शैली को आपके जीवन की सहजता मिली है। जो रचना जीवन बोलती हो, उसमें रस छलकता ही है। आपने इतनी सुन्दर रचना मुझे पढ़ने को दी, इसके लिए आपका अनुगृहीत हूँ।

आशा है आप सानन्द होंगे। कृपया इस विलम्ब के लिए क्षमा करें।

आपका

दिनांक २२ जुलाई १९७१ श्यामसुन्दर व्यास

रामचरण महेन्द्र

कोटा, राजस्थान

प्रिय उपाध्याय जी,

नमस्कार

यह पत्र मैं प्रातः ४-३० पर पूजा के समय लिख रहा हूँ। आपकी पुस्तक 'कथाओं की अंतर्कथाएं' मेरी पूजा की प्रिय पुस्तक है। प्रतिदिन स्वास्थ्य के लिए मैंने इसे चुना है और नियमित रूप से इसका एक चैप्टर पढ़ता हूँ। उससे मुझे नया प्रकाश मिलता है। प्राचीन हिन्दू देवी-देवताओं के स्वरूप, इतिहास तथा उससे संयुक्त जरूरी सभी जानकारी हमें यहाँ मिल रही है। यह दृष्टि सर्वथा नयी है। पढ़कर ज्ञान के नेत्र खुलते हैं।

मेरा सुझाव है कि अन्य भी जरूरी सामग्री, जो हमारी प्राचीन

संस्कृति और धर्म से संबंधित है। आप इसी प्रकार प्रकाशित करें या लेखों के रूप में पत्र-पत्रिकाओं में लिखें।

'कथाओं' में आपने जो मनुष्य को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दिलाई है, वह अभूतपूर्व है। धर्म के क्षेत्र में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान रहेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। नये वर्ष की शुभकामनाएं।

आपका

८-१-८३ रामचरण महेन्द्र

नयापुरा, कोटा (राज०)

प्रिय बन्धु, सप्रेम नमस्कार

कटिंग के लिए धन्यवाद। जिस सुन्दर ढंग से आपने मेरे लेख को प्रकाशित कराने की कृपा की है, उसके लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ।

वास्तव में धर्म को सर्व साधारण के लिए सर्वग्राह्य और उपयोगी व्याख्या बनाकर आपने वह कार्य किया है जो धुँरदर विद्वान नहीं कर सके। । भारी-भरकम बोझिल और दार्शनिक गुत्थियों में उलझकर विद्वान सिर्फ अपनी विद्वत्ता की ही धाक जमाया करते हैं। साधारण पढ़ी-लिखी जनता के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। आपने धर्म के उपयोगी पक्ष 'शिवम्' को उजागर कर धार्मिक जगत् में नया अध्याय जोड़ा है।

अपने ६३ साल के लम्बे अध्ययन में आपकी व्याख्या ने मुझे नया मार्ग ही नहीं सुझाया, धर्म के क्षेत्र में नये नेत्र भी दिए हैं। बधाई।

मैं निष्कपट रूप से आपको इस सफलता के लिए धन्यवाद दे रहा हूँ। जिस सुन्दर कथोपकथन, व्याख्या बातचीत, समाधान को बोधगम्य रूप में आपने पुराने तथ्यों को प्रस्तुत किया है, उसके लिए बधाई देता हूँ। आपने एक कलाकार की तरह काम किया है और यह एक असामान्य बात है।

कृपा कर इसी शैली की और भी पुस्तकें लीखिए। धर्म को उपयोगी तथ्यों से भरकर ज्ञान की भूखी जनता की तृप्ति कीजिए। निसंदेह आप यह कर सकते हैं।

यदि कोई और इसी प्रकार की आपकी पुस्तक हो तो पढ़वाइये।

आपका भाई

३१-१-८३ रामचरण महेन्द्र

विपिन

इटारसी

प्रिय रामनारायण भाई,

'ज्ञानोदय' में सील लगाते समय सहसा तुम्हारे नाम पर निगाह पड़ गई। 'धुँधले काँच की दीवार' पढ़ डाला। बड़ा स्वाभाविक और पुरदर्द पत्र है। वह पत्र सबके चेहरों के लिए साफ दर्पण का काम करेगा। मध्यम वर्ग का ऐसा उभरता हुआ, चुभता हुआ, काटता हुआ और कचोटता हुआ चित्र तुम्हीं खींच सकते हो, क्योंकि तुम हृदय के कुशल शिल्पी हो। सम्पादक प्रश्न चिन्ह भी पत्र का तत्व ग्रहण करवाने के लिए काफी सशक्त है। चित्र भावों की स्थूल अभिव्यक्ति है जो पत्र के नीचे दिया है। तुम्हारी कलम को मेरे स्थूल होंठों का सूक्ष्म चुम्बन। प्रियवर, शिवभाई को सस्नेह नमस्ते।

तुम्हारा ही

४-५-१९५९ विपिन

काका हाथरसी

हाथरस (उ० प्र०) कर्णवास

प्रिय श्री उपाध्यायजी। धन्यवाद।

'धुँधले काँच की दीवार' देखकर प्रसन्नता हुई। खूब लिखते हैं आप, व्यंग्य लगता है हास्य का बाप। अपनी निष्कपट सम्मत्ति ६ पंक्तियों के एक छक्के में इस प्रकार है :

'रजिस्टर्ड पैकिट मिला, साहित्यक उपहार।
खोला—धुँधले काँच की निकल पड़ी दीवार॥

निकल पड़ी दीवार, निष्कपट मन से देखी।
मिट्टी में मिल गई, हमारी सारी शेखी।।
कहँ काका कवि, काकी से यों कहने भागे।
गद्य-व्यंग्य में उपाध्याय हैं हमसे आगे।।'

२६-५-६१

काका हाथरसी

हरिनारायण व्यास

पूना

आदरणीय बन्धुवर,

सादर वन्दे

आपका ७-१-७६ का कृपापत्र मिला। आपके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मैं इसके लिए अपने को शौभाग्यशाली मानता हूँ।

मध्यप्रदेश की मिट्टी की मोहक सुगंध और उससे लिपटे हुए सरल जीवन की झाँकी को देखने का सौभाग्य भी मुझे आपकी कृतियों द्वारा प्राप्त हुआ।

हम अपने आसपास के कृत्रिम परिवेश से इतने आक्राँत हैं कि, इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ हमको एक ऐसे खनिज रम्य स्थलों का दर्शन कराती हैं, जो हम सपनों की तरह खो बैठे हैं।

कृपया पत्र देते रहें।

आपका

१०-१-७६

हरिनारायण व्यास

रमेश रंजक

२ आराम बाग स्क्वायर-चित्रगुप्त रोड, नई दिल्ली

बड़े भाई,

सात्विक और स्नेहिल नमस्कार स्वीकारें।

आपका पत्र मिला था। आपके पत्र से मुझे बहुत बल मिला। इतने करीब से मुझे अब तक कुछ ही पत्र मिल सके हैं। करीब और दूरी की

भाषा को मैं खूब पहचानता हूँ। आपने मुझे जिस "पत्र" से पुकारा थपथपाया है, निश्चय मैं इसके लिए एक लम्बी उमर तक आभारी रहूँगा।

जहाँ तक गीत क्षेत्र में सृजन का प्रश्न है, वहाँ मैं इतना ही जानता हूँ कि लिखकर भूल जाना, कलाकार को महानता की राह पर डाल देता है और अध्ययन को याद रखना उसके पाँवों को मजबूत करता है। मैं मजबूत पाँवों से इस सृजन पथ को तय करना चाहता हूँ और उसके लिए आपके आशीष की जरूरत कहीं बहुत भीतर से महसूस कर रहा हूँ। मुझे आपके आशीष मिलते रहेंगे इसी आशा में आपके उदार और विशाल हृदय तक अपनी श्रद्धा पहुँचा रहा हूँ।

आशीषों में बहुत बड़ी ताकत होती है। जैसे महान कविता की ताकत को सरसरी नज़र से देखा परखा नहीं जा सकता, वैसे ही आशीषों की शक्ति को भी ऊपरी तौर पर स्वीकार करना एक अन्दरूनी वेईमानी है। मुझे यह वेईमानी कतई पसन्द नहीं। भीतर वाहर एक-सा रह सकूँ यही मेरे जीवन की सबसे बड़ी इच्छा है। इसे पूरा कर सकूँ आशीष दें।

गाँव नंदरोई जिला अलीगढ़ उत्तर प्रदेश का निवासी हूँ। दिल्ली में राजकीय विद्यालय में अध्यापक हूँ। प्रथम संकलन 'किरण के पाँव' दूसरा 'गीत विहंग' तीसरा 'हरापन नहीं टूटेगा' प्रकाशित हो चुके हैं। आशा है स्वस्थ्य सानंद होंगे।

आपका अनुजवत्
रमेश रंजक

लक्ष्मीशंकर त्रिवेदी

नरही (२७७५०२-बलिया)

परम श्रद्धेय, सप्रेम चरणस्पर्श,

आज 'कुंकुम, कलश और आम्रपल्लव' पढ़ रहा हूँ। यह पुस्तक ग्राम्य एवं आपके जीवन की भाष्य है। ये पुष्प जिस सभा, जिस मंच, जिस आयोजन का एकाकी जीवन में सजा दिये जाँय वहीं 'रस' की धारा प्रवाहित हो जाय। इसमें आश्चर्य ही क्या है यदि किसान का बेटा, और कभी

रुग्णशय्या का रोगी, अनजान बहन, आफिस क्लर्क या अधपेट की मजदूरी करने वाला साइकिल मरम्मत बालक आपको स्नेह दे। अरे, जब मुझे बिना कहे एक-दो नहीं चार-चार पुस्तकें एक पत्र के उपलक्ष में भेज दिये तो आपके स्नेहिल हृदय की शाब्दिक अर्चना कर क्यों 'लघुता' में परिणित करूं। 'जीवन और साहित्य' शीर्षक पढ़ रहा था तो आधे में ही रोक कर 'मन' ने कहा कि पहले एक पत्र लिख लें, तब आगे पढ़ो, तो इसकी बात तो मानना अनिवार्य है।

और जब नदी उद्गम को प्रणाम कर सागर से मिलती है, तो प्राचीन संस्कृति क्यों छोड़ी जाय ? अकाट्य तर्क है न ? पर फिर भी कुछ लोगों को इसका विरोध ही अच्छा लगता है। 'रामायण' की इतनी सुन्दर व्याख्या यहीं पढ़ी। (सेक्सपियर और बाइबिल का योग) 'रामोद्विर्न भाषते' 'सूरज तम्बाखू पीने वाला किसान और चाँद मल्लाह' एकदम अछूते क्वाँरे उपमान का प्रयोग हुआ है। कुछ ऐसे ही उपमान भेज दें, ८-१० ताकि मैं उसे भी स्थान दूँ। 'सूरज, सितारों की मसहरी भी तो लगाता है' 'नाखून से तराशे गये चाँवल' बड़ी कठिन साधना है ? क्या आपके व्यंग्य भी ऐसे ही तराशे हुए ही हैं ?

अब आप ही बताइये; मैं कितना प्रसन्न हूँ कि एक साहित्यकार का आशीर्वाद, उसके हाथों के लिखे पत्र, उसका असीम स्नेह तो मुझे मिलता है। पत्र पाकर कुछ क्षण 'ब्रह्मानन्द' का समाँ बँध जाता है, विह्वल हो जाता हूँ। ऐसे हैं हमारे पं० रामनारायण जी उपाध्याय सरल, तरल, सहृदय, कारुणिक। आपकी पुस्तकों की आलोचना वृहद कर्म है मेरे पास न तो इतनी क्षमता है और न इतना स्थान ही है।

भाई विवेकी भी इधर मिले नहीं हैं। मैं बाहर रहा है किन्तु कल आपका उलाहना और अपना समाचार भेजा।

पुनः अगले पत्र में। लेख भाई ठाकुर प्रसाद जी को लखनऊ भेज दिया। आप भी एक पत्र लिख दें ताकि छप जाय।

आपका

१८-४-१९७५ लक्ष्मीशंकर त्रिवेदी

सतीशचन्द्र अग्निहोत्री

टी० बी० सेनेटोरियम, वृन्दावन, मथुरा (उ०प्र०)

आदरणीय पंडितजी,

सादर प्रणाम।

विनम्र निवेदन यह है कि मैं बहुत दिनों से प्राणघातक संक्रामक रोग से पीड़ित हूँ और अपना उपचार पिछले करीब ७ माह से इस क्षय आरोग्य सदन में करा रहा हूँ। आपका साहित्य पढ़ने की आकाँक्षा कुछ दिनों से है। लेकिन मेरी आर्थिक दशा इतनी सोचनीय है कि स्वयं खरीद सकने में असमर्थ हूँ। बहुत दिनों से सोच रहा था कि आपको पत्र लिखूँ। लेकिन कारणवश रुक जाता था। आज अपने लोभ का संवरण नहीं कर पा रहा हूँ, पत्र प्रेषित कर रहा हूँ कि मेरी प्रार्थना आप स्वीकार कर लेंगे। क्योंकि आप सुप्रसिद्ध साहित्यकार, सहृदय व दयालु हैं। मेरी इस रुग्णता की हालत में अपना स्नेह देने में संकोच न करेंगे। अतः आज पत्र लिखा है और करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि 'कुछ पुस्तकें' जिसमें संभव हो सके तो 'गरीब अमीर पुस्तकें' भी भेज कर अनुगृहीत करें।

इस महती कृपा के लिए मैं सदैव ही आभारी रहूँगा। क्या मैं आशा करूँ कि आप मुझे निराश न करेंगे। वैसे जैसी भी पुस्तकें आप उचित व सुलभ समझें अवश्य ही भेजने का कष्ट करें।

आपकी दीर्घायु, स्वस्थ जीवन एवं सम्पन्नता की कामना श्री बाँके बिहारी जी से करता हुआ। प्रतीक्षा में।

विनीत

८-४-६१ सतीशचन्द्र अग्निहोत्री

जहूर बख्श

सागर

प्रिय बन्धु,

आपका पत्र यथासमय मिल गया था। यह आपकी सरलता और

सहृदयता है जो आप मेरे प्रति ऐसी निर्मल भावनायें रखते हैं। मैं भी आपकी रचनायें पढ़ता और आनन्दित होता रहता हूँ।

कहीं से कोई पुस्तक भी प्रकाशित कराई है आपने ? 'हम पिरशिडेण्ट हैं' की एक प्रति सेवा में भेजूँगा। उस समय जब मेरे पास डाक के व्यय के लिए चौदह आने एकत्र हो जायेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि भौगोलिक दृष्टि से खण्डवा सागर के निकट है। परन्तु मेरे जैसे दरिद्र के लिए तो वह न्यूयार्क की अपेक्षा भी दूर है।

विशेष क्या कहूँ। यह पत्र भी आपको आठ दिन बाद लिख रहा हूँ। करूँ क्या कार्ड मिलता तब तो।

प्रार्थना है इसी प्रकार भविष्य में भी अपना निर्मल प्रेम देते रहिये।

आशा है आप सानन्द हैं।

विनीत

७-१२-६४ जहूर बख्श

बनारसीदास चतुर्वेदी

टीकमगढ़

प्रियवर,

प्रणाम। २६ ता० का कृपा पत्र मिला। भाई बैनीपुरी से अपना बहुत वर्षों से परिचय है। उनकी मुझ पर बहुत कृपा है अतएव उनके प्रेमपूर्ण अनाचारों को सहर्ष सहन कर लेता हूँ। उन चिट्ठियों का ऐसा कोई महत्व हो सकता है, जिसके कारण वे छापी गईं, इसकी कल्पना मुझे नहीं थी पर उनके छापे जाने पर मैंने बुरा भी नहीं माना। हंसी-मजाक करने का मेरा स्वभाव रहा है और वह पत्रों में भी प्रतिबिम्बित हो जाता है। पर पत्र तो महापुरुषों के ही छपने चाहिए, मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के पत्रों में रक्खा ही क्या ? खैर, अपने कुछ लेख बुक पोस्ट द्वारा भेजता हूँ। कृपया उन्हें पढ़ लीजिए।

'गणेश स्मृति ग्रन्थ' का यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। स्वर्गीय अमर

शहीद गणेश जी के लेखों, टिप्पणियों तथा संस्मरणों का संग्रह कर रहा हूँ। १९ वर्ष से यह श्राद्ध कर्म उपेक्षित है। हम सबके लिए यह गौरव-जनक बात नहीं।

ग्रामवासी के क्या हाल हैं? 'हिन्दुस्तान' में साहित्य जगत् प्रति सप्ताह लिखता हूँ।

विनीत

३-७-५० बनारसीदास चतुर्वेदी

टीकमगढ़

प्रिय उपाध्याय जी,

वन्दे ! कृपा पत्र मिला। लेख भी। 'यह शहर है' मुझे पसन्द आया। रेलवे बुक स्टाल के 'ग्रन्थों' का जिक्र श्री राष्ट्रपति जी ने आज से कई वर्ष पूर्व देवघर की मीटिङ्ग में किया था। जिल्द बढ़िया पर भीतर कुछ भी नहीं। लोक साहित्य के निर्णय की बात भी बहुत उपयोगी है। स्व० बापू पर मैं भी लिखना चाहता हूँ। मेरे संग्रहालय में उनके हाथ के लिखे १०१ पत्र हैं।

जो सेवा मुझसे बन पड़ी है वह अत्यल्प ही है। हाँ, मुझे विज्ञापन बहुत मिल चुका है। पर काम जितना करना चाहिए था उसका दशांश भी नहीं बन पड़ा। बहुत-सा वक्त प्रमाद में बीत गया—कितना ही गप्पाष्टकों में और शक्ति को केन्द्रित न कर इधर-उधर नष्ट करने में।

सच बात आपसे कह दी। मैं बनता नहीं। भ्रम में किसी को भी नहीं रखना चाहता। हाँ, भविष्य के लिए मैं आशा अवश्य रखता हूँ कि अधिक सेवा कर सकूँगा। पत्रों पर एक पुस्तक लिखने का विचार है।

विनीत

१-८-१९५० बनारसीदास

९९/नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली

प्रिय उपाध्याय जी,

प्रणाम।

'बोलता हिन्दुस्तान' निस्संदेह एक उपयोगी पुस्तक है। आज से ३७,

३८ वर्ष पूर्व मुझे भी माँडवगढ़ की तीर्थ-यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और ओंकारेश्वर के भी दर्शन मैंने किये थे।

यह पुस्तिका विद्यार्थियों के तो काम की है ही, साधारण पाठकों का भी इससे मनोरंजन होगा और उन्हें घर बैठे सिर्फ आठ आने में देश के भिन्न-भिन्न स्थलों की सैर करने का अवसर मिल जायगा। इसे पढ़ने के बाद मेरे मन में धारा क्षेत्र में स्नान करने की इच्छा प्रबल हो उठी है। कभी आपको पंडा बनाकर वहाँ की यात्रा करूँगा।

डेढ़ महीने बीमार रहा। अब भी कमजोरी है।

विनीत

१७-२-५६ बनारसीदास

नई दिल्ली

प्रिय श्री उपाध्याय जी,

वन्दे ! आपका कृपा पत्र मिला। बात दरअसल यह है कि पत्र व्यवहार मेरे लिए एक व्यसन हो गया है और बावजूद घोर प्रयत्नों के मैं उसे छोड़ नहीं पाता। महीने में २४-२५ दिन चिट्ठियों के लिखने में ही व्यतीत कर देता हूँ। स्व० पं० पद्मसिंह जी शर्मा का जीवन चरित कई वर्षों से बिल्कुल अधूरा पड़ा हुआ है। तुर्गनेव जब मरणासन्न थे तब भी उन्होंने किसी युवक ग्रन्थकार के लिए सिफारिशी चिट्ठी किसी प्रकाशक को लिख दी थी और स्टिफन ज्विग भी इसी आदर्श का पालन करते रहे थे। रोमा रोलाँ को भी सहस्रों पत्र लिखने पड़े थे। मैं इन तीनों का प्रशंसक हूँ, इस-लिए यह सम्भव तो नहीं कि मैं किसी संकटग्रस्त सज्जन के पत्र का उत्तर न दूँ बल्कि नवीन प्रतिभाओं के स्वागतार्थ तो मैं और भी प्रयत्नशील बनना चाहता हूँ पर फालतू चिट्ठियों का जवाब देना मेरे लिए असम्भव हो गया है।

अन्तर्जनपदीय परिषद् का उद्धार होना चाहिए। उसकी मीटिङ्ग भले ही न हो पर पत्र व्यवहार तो निरन्तर होते ही रहना चाहिए। म० प्रदेश को कई जनपदीय भाषाओं का सम्मिलन क्षेत्र होने का सौभाग्य प्राप्त है। आप इस बारे में कुछ लिखें।

विनीत

१२-१-६१ बनारसीदास चतुर्वेदी

फीरोजाबाद

प्रिय उपाध्याय जी,

प्रणाम ।

मैं प्रातःकाल में ५ बजे Bed Tea लेने का अभ्यस्त हूँ और तब स्वाध्याय के तौर पर किसी सद् ग्रन्थ के कुछ अंश पढ़ लेता हूँ। आज आपकी पुस्तक 'धुँधले काँच की दीवार' हाथ आयी। श्री विद्यानिवास मिश्र की भूमिका पढ़ ली और तत्पश्चात् प्रथम निबन्ध और अन्तिम निबन्ध भी। 'धुँधले काँच की दीवार' और रायल्टी वाली कहानी ये दोनों चीजें बहुत पसन्द आईं। सीधी-सादी जुबान में आप पते की बात कह लेते हैं। जब से दाहिनी आँख बनी है, मैं केवल एक आँख पर ही जोर डाल कर पढ़ता हूँ, इसलिए केवल सर्वोत्तम चीज ही पढ़ना ठीक समझता हूँ। ज्यादातर तो एमर्सन, थीरो, धम्मपद या गीता के ही एकाध वाक्य या श्लोक पढ़कर अपना काम शुरू कर देता हूँ। आधुनिक लेखकों को मैं उषाकालीन चाय के साथ नहीं पढ़ता। यह आकस्मिक घटना ही है कि आज अपवाद स्वरूप आपकी पुस्तक सामने आ गई। और उससे मुझे पछताना नहीं पड़ा वरन् सन्तोष ही हुआ। जो लोग घुमा फिरा कर द्राविड़ प्राणायाम जैसी भाषा लिखते हैं, उन्हें आपसे कुछ सीखना चाहिए। श्री भगवान दास माहौर की पुस्तक 'यश की धरोहर' का द्वितीय संस्करण (Atmaram & Sons) छाप रहा है। उसे भिजवाऊँगा।

विनीत

२५-३-६७ बनारसीदास

फीरोजाबाद

प्रियवर,

कृपा पत्र मिला। मैंने श्रद्धेय हनुमान प्रसाद जी पोद्दार गोरखपुर की सेवा में निवेदन किया था कि वे स्व० अग्रवाल जी के पत्रों को छपायें और श्री स्कन्द अग्रवाल हिन्दु विश्वविद्यालय काशी (स्व० अग्रवाल जी के सुपुत्र) को भी लिखा था, पर दोनों ने उत्तर भी नहीं भेजा। **आप भी उन्हें लिखें।**

स्व० अग्रवाल जी उच्चकोटि के विद्वान तो थे ही, बड़े सहृदय पत्र लेखक भी थे। उनके पचासों पत्र डॉ० सत्येन्द्र, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री कृष्णानन्द गुप्त प्रभृति के यहाँ बिखरे पड़ें हैं। कोई संग्रह भी नहीं करता। डॉ० मोतीचन्द जी तथा रायकृष्ण दास जी के पास तो सैकड़ों ही पत्र होंगे। राष्ट्र कवि गुप्तजी के यहाँ भी। आप अग्रवाल जी के पत्रों की नकल जरूर भेजें।

१. आचार्य पद्मसिंह जी
२. सैय्यद अमीरअली मीर
३. पीर मुहम्मद यूनिस
४. मुंशी अजमेरी जी
५. रामनरेश त्रिपाठी
६. शिवपूजन सहाय
७. नवीन जी

इत्यादि के पत्रों को मैं छपा चुका हूँ। पर अभी सहस्त्रों पत्र पड़े हैं। ७६वीं वर्ष में काम ज्यादा हो नहीं पाता। 'पत्र व्यवहार मेरा व्यसन' पुस्तक तैयार कर रहा हूँ।

नवीन जी के पत्र नर्मदा के विशेषांक में छपा दिये थे।

विनीत

१६-१-६८ बनारसीदास

ज्ञानपुर

प्रिय उपाध्याय जी, वन्दे।

आपने मेरे पत्रों पर जो श्रद्धापूर्ण लेख ब्रजभारती में लिखा है, तदर्थ मैं बहुत-बहुत कृतज्ञ हू। पर वे पत्र कभी इस ख्याल से लिखे ही नहीं गये थे कि आगे चलकर वे कभी छपेंगे। मैं तो साधारण पत्र लेखक ही हूँ। अपने खाली वक्त के सदुपयोग करने के विचार से मैं पत्र घसीटता रहा हूँ और अब तो वह मेरा व्यसन भी बन गया है। मेरे लिए वह Creation तथा re-greation दोनों का ही काम देता है। मैंने यह भली-भाँति अनुभव कर लिया है कि पत्र लेखन आनन्द प्रदान करने का एक जबरदस्त साधन बन

सकता है। यदि हम दूसरों को ईमानदारी के साथ appreciate करें और अपनी स्पष्ट सम्मति भी उन्हें लिखते रहें तो लोक-संग्रह की दृष्टि से भी यह सौदा घाटे का नहीं। हिन्दी जगत् में आचार्य पं० पद्मसिंह जी शर्मा के सर्वश्रेष्ठ पत्र, उनके पूर्व प्रतापनारायण मिश्र थे। Atmaram & Sons ने पद्मसिंह जी के पत्र छाप दिये थे। ७॥) रुपये कीमत रखी थी। मैं तो कभी-कभी महीने में २०-२५ दिन पत्र ही लिखता रहता हूँ। मैं कोई साधु-संन्यासी नहीं, जिसकी कोई समाधि बने। यदि होता तो अपनी समाधि पर ये पंक्तियाँ लिखने के लिए छोड़ जाता—

'सोता है वह क्षुद्र मनुज इस भूमि खंड में,
पत्र लेखकों का जिसने सम्मान किया था।'

नर्मदा के विशेषांक में नवीन जी के पत्र छापे थे।

विनीत
बनारसीदास

९-७-७३

फिरोजाबाद

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

सादर प्रणाम

आपका कृपा पत्र मिला। 'निमाड़ का सांस्कृतिक-इतिहास' प्रशंसित हो गया जानकर खुशी हुई।

आपको अपने संग्रहालय के बारे में जो चिंता है वैसी ही चिंता मुझे भी अपने संग्रहालय के बारे में रही है। उसका सर्वोत्तम भाग तो राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हो चुका है।

क्या मध्य प्रदेश में कोई आर्किटिक्स है ? न हो तो उसकी स्थापना होनी चाहिए।

वैसे इस प्रकार के मसाले का सदुपयोग किसी विश्व विद्यालय में भी हो सकता है। बहुत सोच-समझकर इस बारे में अन्तिम निर्णय लीजिए।

विनीत
बनारसीदास चतुर्वेदी

२९-१२-७९

फिरोजाबाद

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

आपने कल मेरे निवास स्थान पर पधारने की कृपा की इसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ। आपकी पुस्तक 'निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास' के कुछ अंश मैं पढ़वाकर सुनूँगा। आपके दो शब्द मैंने पढ़ लिये हैं। संक्षेप में आपने बड़े पते की बात कह दी है। आपके गद्य-काव्य कभी-कभी पढ़ने को मिल जाते हैं। यदि वासुदेवशरण जी जीवित होते तो उन्हें इस पुस्तक को देखकर हार्दिक हर्ष होता। यदि आपका कोई निकटतम साथी आपका रेखाचित्र प्रस्तुत कर सके तो बड़ी अच्छी बात हो।

श्रीराम इकबाल सिंह राकेश पी०/ओ० भवई, जिला मुज्जफरपुर बिहार से आपका परिचय है या नहीं वे भी अच्छे कार्यकर्त्ता हैं। स्व० जे० सी० माथुर आई०सी०एस० एक सर्वश्रेष्ठ जनपद जन थे। उनका जीवन चरित्र छपना चाहिए। क्या मधुकर का जनपद अंक आपने देखा था। प्रो० गीडीज (स्काटलेंड) और लुई ममफोर्ड (अमेरिका) ये दोनों जनपदीय कार्य के आचार्य हैं। गीडीज तो चले गए फोर्ड जीवित हैं। इनका भी विशेष अध्ययन हमें कर लेना चाहिये।

माखनलाल जी की चिट्ठियाँ मैंने सम्मेलन पत्रिका में छपा दी थी। आपने मेरे बारे में क्या लिखा था मैं भूल गया। "वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो।" (मानव)

विनीत क्षमाप्रार्थी

२३-४-८२ बनारसीदास

फिरोजाबाद

प्रिय भाई उपाध्यायजी,

प्रणाम।

आपका २६ तारीख का कृपा पत्र मिला। बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ। आपने मेरी रचनाओं के बारे में 'प्रभात प्रकाशन' से चर्चा की तदर्थ धन्यवाद। 'महापुरुषों की खोज में' पुस्तक धीरे-धीरे लिखवा रहा हूँ। सर्व सेवा संघ काशी वाले उसे छापना चाहते थे। दूसरी पुस्तक 'पत्र व्यवहार मेरा व्यसन' तैयार करने का प्रयत्न करूँगा। मेरी क्षुद्र साहित्य सेवा को आप

'ऋषि की साधना' बतलाते हैं। इस प्रमाण पत्र का अधिकारी मैं अपने को बिलकुल नहीं मानता। पिछले ७० वर्षों में जितना काम मुझे करना चाहिये था उसका दशांश भी नहीं कर पाया। अपनी त्रुटियों से भलीभाँति परिचित हूँ। फिर भी आप जैसे सहृदय मित्रों से उत्साहप्रद पत्र मेरे लिए प्रेरणाप्रद होते हैं। ९०वें वर्ष में मैं अधिक काम तो कर नहीं पाता। मानव (मेरे सहायक) नित्य आकर दो-ढाई घण्टा रहकर कुछ काम कर देते हैं। उनकी दो पुस्तकें तो आपको भेंट की ही जा चुकी है। आपने जो छोटे-छोटे गद्य काव्य लिखे हैं उनका भी संग्रह हो जाना चाहिये। प्रभात प्रकाशन को पत्र लिखूँगा।

विनीत

म० प्र० मानव लेखक

३०-४-८२ कृते पूज्य बनारसीदास चतुर्वेदी

रामनरेश त्रिपाठी

बसन्त निवास, सुलतानपुर

प्रिय उपाध्यायजी,

'निमाड़ी लोक गीत' की प्रति मिली; मैं साद्यान्त पढ़ गया। जिन गीतों का चुनाव आपने किया है, वे बड़े सरस हैं। चुनाव से आपकी सरस हृदयता की भी झलक मिल जाती है। गीतों के अर्थ भी आपने बड़ी सरल और मुहावरेदार भाषा में दिये हैं; इससे निमाड़ी बोलचाल न जानने वाले भी भावों की गहराई में पहुँच जाते हैं और रस लेते हैं। इन गीतों को देखकर अनुमान होता है कि निमाड़ तो मधुमय गीतों का समुद्र ही होगा। आपका प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है। इस समय जबकि देश का निर्माण हो रहा है, लोक साहित्य का संग्रह और अध्ययन परमावश्यक है। आपने उसके लिए मार्ग खोला है। संस्थाओं और सरकार को भी इस काम में सहायता करनी चाहिये।

मेरे 'ग्राम-साहित्य' के प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, बुकसेलर, कश्मीरी गेट दिल्ली हैं।

२९-९-५३ रामनरेश त्रिपाठी

कोहरीपुर (जि० जौनपुर)

आदरणीय उपाध्यायजी,

सप्रेम नमस्कार ! आपका २५-९-५८ का कार्ड और 'जब निमाड़ गाता है' दोनों साथ ही मिले। पुस्तक के लिए अनेक धन्यवाद। इसके रस भरे गीतों से हृदय स्निग्ध और मुग्ध हो जाता है। निश्चय ही नारी-कण्ठ से निकलते हुए सुनकर सहृदय मनुष्य को कविता का सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ने लगेगा। अब तक ग्राम गीतों पर हिन्दी में जितनी पुस्तकें मेरे देखने में आई हैं, आपका संग्रह मुझे उन सब में उत्तम लगा। मैं लगभग एक वर्ष से बीमार हूँ और अपने जन्म ग्राम में रह रहा हूँ।

ग्राम-साहित्य पर अभी तो आप से और कुछ अधिक पाने की लालसा कर रहा हूँ।

आपका

१-१०-५८ रामनरेश त्रिपाठी

परशुराम चतुर्वेदी

बनारस

प्रिय उपाध्यायजी,

जयहिन्द।

१७-१२-४७ का कृपा पत्र अभी मिला। 'सन्त सिंगाजी' नाम की एक पुस्तिका भी अलग मिली। उसके लिए अनेक धन्यवाद।

सन्त सिंगाजी के सम्बन्ध में इधर उत्तरी भारत में, बहुत कम जानकारी है। आश्चर्य है कि अब तक ऐसे प्रसिद्ध सन्त के विषय में सभी अपरिचित हैं। आप सज्जन सिंगाजी के स्वदेश के निवासी कहे जा सकते हैं। अतएव यह परमावश्यक है कि आपके यहाँ से इनकी रचनाओं का प्रामाणिक संस्करण निकले। मैं आपके परामर्शनुसार श्री पगारे जी को भी आज लिख रहा हूँ। यदि आपको सिंगा-सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में कुछ विशेष पता हो तो मुझे लिखने की कृपा करें।

आशा है, आप स्वस्थ एवं सानन्द होंगे ।

आपका
परशुराम चतुर्वेदी

पुनश्च :—आपसे मेरी एक और भी प्रार्थना है। श्री सन्त सिंगाजी के अतिरिक्त किसी अन्य ऐसे सन्त का परिचय भी यदि आप मुझे दे सकेंगे तो परम अनुगृहीत हूँगा । मध्य प्रदेश की ओर अनेक महापुरुषों का आविर्भाव होने की सूचना मिला करती है। किन्तु दुर्भाग्यवश हम लोग उनके परिचय से वंचित रह जाते हैं । मैं तो आपसे यह भी निवेदन करूँगा कि आप मुझे धर्मदास के विषय में कोई प्रामाणिक सूचना देने की कृपा करेंगे। धर्मदास जी का ऐतिहासिक परिचय और उनकी प्रामाणिक रचनाओं का पता इधर नहीं मिला ।

भवदीय
१६-१२-४७ परशुराम चतुर्वेदी

अगरचन्द नाहटा

बीकानेर

श्रीयुत् उपाध्यायजी,

पत्र एवं पुस्तक मिली—धन्यवाद ! 'निमाड़ गाता है' पुस्तक देखी। गीतों का चयन विविधता एवं सरसता लिये हुए है। भावार्थ भी सुन्दर शैली में दिया गया है। आपका लिखित परिचय भी महत्त्व का है, उससे लोकगीतों के महत्ता व सरसता आदि की अच्छी जानकारी मिलती है। डॉ० अग्रवाल जी की भूमिका से महत्त्व और भी ज्यादा बढ़ा है। पुस्तक बहुत सुन्दर है।

आपने निमाड़ी लोक कथाओं, सन्त एवं साहित्यकारों सम्वन्धी भी कुछ लिखा हो तो भिजवा दें। आपने अपने प्रदेश व भाषा के लिए जो सेवा की है उसके लिए साधुवाद। लेखों के re-prints जितने मिलें भिजवा दें।

आपका
१८-५-५६ अगरचन्द नाहटा

बीकानेर

श्री उपाध्याय जी,

नमस्कार,

आपका पत्र व ग्रंथ मिला। नमस्कार। ग्रंथ बहुत उपयोगी है। निमाड़ी लोक साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी बहुत अच्छी जानकारी आपने इस एक ग्रंथ में दे दी है। सफलता के लिए बधाई।

इसमें राजस्थानी और जैन सम्बन्धी कुछ अधिक बातें दी जाती तो अच्छा होता। अन्त में जो माँडणे आदि के चित्र दिए हैं इससे ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ गया है।

आपने पहले एक पत्र में अभिनन्दन ग्रंथ संबंधी लेख भेजने का लिखा था। सो भेज दिया या नहीं। मुझे ठीक से याद नहीं सो नहीं भेजा हो तो शीघ्र भेज दें। आपके लेखों के रिप्रिण्ट्स भेजें।

आपका

२-१-७४

अगरचन्द नाहटा

सत्येन्द्र

क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

प्रिय श्री उपाध्यायजी,

आपका कृपा पत्र मिला। एतदर्थ कृतज्ञ हूँ। आपने लोक-साहित्य के क्षेत्र में जो काम किया है, मैं उससे परिचित हूँ। लोक-साहित्य के विश्व-कोष के सम्बन्ध में अभी तो इतना ही कह सकता हूँ कि उसके लिए एक नमूना 'ब्रज' को लेकर तैयार किया जा रहा है। विद्यापीठ द्वारा वह स्वीकृत हो गया तो विस्तृत योजना प्रस्तुत की जाएगी। आप कोई सुझाव देना चाहें तो देने की कृपा करें।

भवदीय

६-३-६१

सत्येन्द्र

कृष्णदेव उपाध्याय

चौपाटी, बम्बई

प्रिय उपाध्यायजी,

सप्रेम नमस्कार,

आशा है आप सपरिवार सानन्द होंगे। विशेष यह है कि मैं आगामी लोक संस्कृति सम्मेलन का आयोजन करने के लिए बम्बई आया हुआ हूँ। लौटती बार खंडवा स्टेशन पर आपका दर्शन करना चाहता हूँ। मैं १७ अक्टूबर शनिवार को कलकत्ता मेल से यहाँ से चलूँगा। यह गाड़ी खंडवा १८-१० रविवार को प्रातः काल ६-१५ मिनट पर पहुँचाती है। मैं III class के कम्पार्टमेंट में रहूँगा। आपको मुझे खोजने में परेशानी न हो अतः मैं III class के कम्पार्टमेन्ट के दरवाजे पर अथवा खिड़की के पास खड़े होकर आपको बुलाने की मुद्रा में हाथ हिलाता रहूँगा। इससे आपको परेशानी न होगी। आपके दर्शन करने की बड़ी इच्छा है। अतः १८-१० को प्रातः ६ बजे खंडवा स्टेशन पर अवश्य दर्शन देने की कृपा करेंगे। आशा है आप स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे।

भवदीय

१२-१०-५९ कृष्णदेव उपाध्याय

गवर्न० डिग्री कालेज-ज्ञानपुर (वाराणसी)

प्रिय भाई उपाध्यायजी,

सप्रेम नमस्कार।

आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुआ। इस १० अगस्त को खण्डवा स्टेशन पर आपका दर्शन कर जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं कर सकता। सन् १९५८ ई० से ही मैं आपसे मिलना चाहता था। अतः उस दिन कई वर्षों की संचित कामना पूरी हुई। आपके सरल स्वभाव तथा सादगी से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। आपने मुझे जो चाय पिलायी और केले दिये वे आपके हृदय की सरसता तथा मधुरता के प्रतीक थे। उस कुछ क्षणों में आपसे वार्तालाप कर के जो जिस आनन्द की प्राप्ति हुई वह अवर्णनीय है। मैंने अपने मानस के भीतर जो मूर्ति आपकी स्थापित की थी उसके अनुकूल ही आप निकले। दुःख यही है कि अधिक

समय तक आपके साथ सत्संग करने का लाभ न उठा सका। 'सन्त सिंगाजी' पुस्तक के लिए अनेक धन्यवाद। हि० सा० वृ० द० का जब संशोधित संस्करण निकलेगा तब निमाड़ी वाले अंश के लिए आपको कष्ट दूँगा। शेष कुशल है।

भवदीय

३०-८-६५ कृष्णदेव उपाध्याय

ज्ञानपुर

प्रिय उपाध्यायजी,

सप्रेम नमस्कार।

आपका २२-११-६६ का कृपा पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद। आपने मेरी विदेश यात्रा के सम्बन्ध में जो जानकारी चाही है वह निम्नांकित है—

१. विदेशों में लोकसाहित्य सम्बन्धी शोध कार्य करने के लिए अनेक शोध संस्थायें Folklore research Institute स्थापित हैं जहाँ यह कार्य होता है। कुछ विद्वान व्यक्तिगत रूप से भी यह कार्य करते हैं।

२. इस कार्य को सरकारी संरक्षण प्राप्त है तथा विश्व विद्यालयों के अन्तर्गत भी फोक लोर इन्स्टीट्यूट स्थापित हैं। गांन्टीगन में जहाँ मैं गया था ऐसा ही एक शोध संस्थान है। बान, फ्राइ बुर्ग, हाइडल वर्ग फ्रेंक फर्ट विश्व विद्यालय के अन्तर्गत भी ऐसे संस्थान हैं। डेन्मार्क में जो लोक-संस्कृति शोध संस्थान है उसे नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड तथा डेन्मार्क की सरकारें सम्मिलित रूप से विपुल धन देती हैं इन संस्थानों के कार्यों को देखकर मानव आश्चर्य में पड़ जाता है। वहाँ फोक म्युजिक के भी archives हैं जो हज़ारों की संख्या में लोक गीत टेप तथा डिस्क पर रिकार्ड करके रखे गये हैं।

३. लोक साहित्य के काम में जनता की भी रुचि है। वहाँ स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में भी लोकगीत कथाएँ रखी गई हैं। जिन्हें बालक चाव से पढ़ते हैं। ऐसा अपने देश में होना चाहिए। रूसी सरकार ने तो लोक गीतों को अपनी पार्टी प्रोपेगेंडा का माध्यम ही बना लिया है। वहाँ के लोग इसकी रक्षा व निर्माण में संलग्न हैं।

४. शिष्ट साहित्यकार भी लोक साहित्य को अच्छी दृष्टि से देखते हैं। अपने देश के कवि पुंगवों अथवा स्वयंभू लेखकों की भाँति लोकगीतों से घृणा नहीं करते। अंग्रेजी के टॉमस हार्डी ने लोक-संस्कृति के तत्वों को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है।

५. लोक साहित्य के सभी तत्वों व विधाओं पर वहाँ काम हो रहा है। परन्तु विशेष उल्लेखनीय ये हैं लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक-संगीत तथा लोक-कला। लोक कथाओं के अध्ययन के लिए एक सम्मेलन भी होता है।

International Congress of folk narrative research.

६. भारतीय लोक-साहित्य के प्रति वहाँ के लोगों में बड़ी उत्सुकता है। वे भारत के विषय में जानना चाहते हैं परन्तु अंग्रेजी व जर्मन भाषाओं में पुस्तकों का अभाव है। अत: तुलनात्मक अध्ययन की सभी सुविधायें होते हुये भी भाषा की बाधा बहुत बड़ी है। हाँ 'Folk lore around the world' नामक पुस्तक अमेरिका से प्रकाशित है। जिसमें सभी देशों के लोक साहित्य का वर्णन है।

७. मैंने अपने भाषण अंग्रेजी में दिये थे। जिसकी एक ही प्रति मेरे पास है। इन लेखों को पुस्तक रूप में अंग्रेजी तथा जर्मन भाषा में छपवाऊँगा। हाँ मेरे भाषण की लगभग तीस पृष्ठों की फोटो स्टेट कापी भी मेरे पास है। यदि आपकी आज्ञा होगी तो उसे आपके पास भेज सकता हूँ।

८. विदेशों के मेरे संस्मरण बड़े ही मनोरंजक हैं। अगले पत्र में कुछ संस्मरण आपके पास लिख भेजूँगा।

आशा है, आप सपरिवार सानन्द होंगे।

आपका

२-११-६६ कृष्णदेव उपाध्याय

ज्ञानपुर

प्रिय उपाध्यायजी

सप्रेम नमस्कार!

आपका ४-११-६६ का कृपापत्र मिला, धन्यवाद। पश्चिम जर्मनी के

गार्टिगन विश्वविद्यालय ने विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में मुझे भारतीय लोक साहित्य पर भाषण देने के लिए बुलाया था अतः मैं गत मई मास में ही जर्मनी गया था। वहाँ से मैं फ्रान्स, इङ्गलैंड स्विट्जरलैण्ड, डेनमार्क, स्वीडेन, चेकेस्लोवाकिया, आदि देशों में भी लोक साहित्य पर व्याख्यान देने गया था। यूरोप के बाद अमेरिका भी इसी उद्देश्य से गया था जहाँ ब्लूमिगटन शिकाँगों, फ्लोरिडा, सिराम्यूज आदि वि० वि० में मैंने भाषण दिया। इस प्रकार यूरोप और अमेरिका के अनेक वि० वि० में भारतीय लोक संस्कृति पर भाषण देने के बाद ६ मास के पश्चात दस मास में भारत लौटकर आया हूँ। इसीलिए आपको पहले पत्र न लिख सका था, क्षमा करेंगे। आजकल मैं अपनी यूरोपीय यात्रा के संस्मरण पुस्तक रूप में लिख रहा हूँ। आप मुझे अपना अन्तरंग समझते हैं यह मेरे लिए सौभाग्य का विषय है। शेष कुशल है।

आपका ही

९-११-६६

कृष्णदेव उपाध्याय

वाराणसी

आदरणीय उपाध्याय जी,

सप्रेम प्रणाम।

आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। इसके साथ ही आपकी लिखी पुस्तक 'हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़िया' भी मिली। पुस्तक को पढ़कर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आपने अन्तर प्रान्तीय लोक गीतों की माधुरी का आस्वादन लोक साहित्य के प्रेमियों को कराकर उनका बड़ा ही उपकार किया है। सच तो यह है कि ऐसी पुस्तकों के द्वारा राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकीकरण को बल तथा सम्बल प्राप्त होगा। सरकार जो कार्य कानून पास कर, करने में असमर्थ है उसे आपने लोक साहित्य के माध्यम से सम्पन्न कराने का सफल प्रयास किया है। तदर्थ यह पुस्तक लोक-साहित्य का अमूल्य निधि होने के साथ ही राष्ट्रीय भावना तथा एकता को जगाने

में उपयोगी सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है। इस पुस्तक के लिए समस्त लोक साहित्य के विद्वानों के आप बधाई के पात्र हैं।

भवदीय

१३-४-७९ कृष्णदेव उपाध्याय

रामइकबाल सिंह राकेश

भदई, मुजफ्फरपुर

आदरणीय श्री उपाध्याय जी

सादर वंदे !

कृपा पत्र के लिए कृतज्ञ ! अस्वस्थ रहने के कारण समय पर पत्र का उत्तर लिखना मेरे लिए संभव न हो सका, विलम्ब के लिए क्षमा करेंगे।

'मैथिली लोक गीत' नामक संग्रह के प्रति आपके प्रशंसात्मक हार्दिक उद्‌गारों को पढ़कर बड़ी खुशी हुई। आपके समान गुणग्राही और उदार व्यक्ति कम ही हैं, जो दूसरों के गुणों को समादर की दृष्टि से देखते हैं।

आपके पत्र से मुझे निश्चित रूप से उपयुक्त प्रेरणा मिलेगी।

आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं। योग्य सेवा लिखें।

विनीत

३-९-५९ रामइकबाल सिंह राकेश

उदयनारायण तिवारी

हिन्दी विभाग-जबलपुर (वि० वि०)

प्रियवर उपाध्याय जी,

सस्नेह नमस्कार।

आपका १५ जनवरी का पत्र मिला। स्मारिका में मेरा जो लेख छपा है और जिसका उल्लेख आपने किया है वह बहुत बड़ा था। उसका व्याकरण वाला अंश जल्दी में न छप सका। यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि इधर लोक साहित्य के क्षेत्र में आप निरन्तर कार्य कर रहे हैं। आप जैसे

कर्मठ व्यक्ति ही यह कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। यहाँ जबलपुर विश्व-विद्यालय में वैकल्पिक रूप से एम० ए० के द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में 'लोक साहित्य' का एक प्रश्न पत्र है। इसमें आप द्वारा लिखित भी एक पुस्तक पाठ्यक्रम में निर्धारित है। आप लोक साहित्य संबंधी साहित्य का प्रकाशन करते जायँ और यदाकदा मुझे भी सूचित करते रहें। आशा है, आप सपरिवार सानन्द हैं।

भवदीय

२६-१-६८ उदयनारायण तिवारी

प्यारेलाल गुप्त

राजेन्द्र नगर, विलासपुर

श्रद्धेय उपाध्याय महोदय,

सादर नमस्कार।

मैं छत्तीसगढ़ी उपभाषा का इतिहास लिखना चाहता हूँ पर कठिनता यह आ रही है कि रिफ्रेंस के लिए पुस्तकें उपलब्ध नहीं है। सर्वश्री बाबू राम सक्सेना, मंगलदेव शास्त्री, भारतभूषण, श्याम सुन्दरदास जी ने अपनी भाषा विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों में छत्तीसगढ़ी का उल्लेख मात्र (Passing Reference) किया है, विवेचन नहीं। अतएव प्रिय श्रीकान्त वर्मा से सुझाव पाकर आपसे विनय करता हूँ कि आप मुझे इस सम्बन्ध में सुझाव, सहायता और सहयोग दीजिए। आपके पास इस सम्बन्ध में कोई पुस्तक या निबन्ध हो तो भेज दीजिए। मैं उन्हें आपके निकट आपकी दी हुई अवधि के भीतर लौटा दूँगा व दोनों ओर का पोस्टेज मेरे जिम्मे। मुझे उन पुस्तकों की तालिका, मूल्य और मिलने का पता सहित लिख भेजिए जिन्हें मुझे पढ़ना चाहिए। एक बात और—अवधी-छत्तीसगढ़ी के सम्बन्ध में डा० ग्रियर्सन की मान्यताओं पर आपकी क्या सम्मति है? श्री रामज्ञा द्विवेदी अवधि की (Evolution of Oudh by Saksena) और ग्रामर आफ गौंड़ी आपके निकट हो तो भेजने की कृपा कीजिएगा। बड़ा कष्ट दे रहा हूँ क्षमा कीजिएगा। विशेष विनय।

भवदीय

६-११-५५ प्यारेलाल गुप्त

गणेश चौबे

पो० बंगरी-मोतीहारी

आदरणीय भाई उपाध्याय जी,

सादर प्रणाम ! आपका कृपा पत्र मिला 'निमाड़ी और उसका लोक साहित्य' की समीक्षा लिख कर मैंने 'फौकलोर' में भेज दी है। दिसम्बर वाला मैटर तो प्रेस में चला गया होगा। अब यह जनवरी के अंक में छपेगा। छपने पर मैं आपको सूचित करूँगा और आप सम्पादक से सीधे उस अंक को मंगा सकते हैं। श्री सेन गुप्त बार-बार लिखने पर भी रिप्रिन्ट नहीं देते हैं। उनकी मनोवृत्ति व्यावसायिक है। लोकयान का कोई भी अंक इधर नहीं मिला है और मेरा विश्वास है कि वह पत्र बन्द हो गया।

पुस्तक पढ़ गया। जिस वार्ता की चर्चा ८३-८४ पृष्ठ पर की है वह मेरे यहाँ भी प्रचलित है उसे हम एक्यूमलेटिव्ह ओरल कह सकते हैं। जिन कहावतों की चर्चा आपने की है, उनमें अधिकांश मेरे यहाँ भी प्रचलित हैं किन्तु भाषा में किञ्चित भेद है। यदि आपको आवश्यकता हो तो उनका भोजपुरी रूप मैं भेज सकता हूँ। पुस्तक में मुझे सबसे सुन्दर अंश जंचा, वह जहाँ लोकचित्रों, लोकवाद्यों एवं लोक नाट्यों की चर्चा है। यों तो सम्पूर्ण पुस्तक में अनेक ऐसी बातों का उल्लेख है जो लोक भाषाओं एवं साहित्य के विद्यार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी है। पुस्तक क्या है गागर में सागर भरने की चेष्टा है। समीक्षा में मैंने आपकी पूर्व के दोनों पुस्तकों की भी चर्चा कर दी है। भाई निमाड़ के लोक गीत मैंने नहीं पढ़ा है। यदि जीर्णशीर्ण भी कापी मुझे प्राप्त हो जाय तो मेरा काम चल जायगा। आशा है सानन्द होंगे। कृपा भाव बना रहे यही प्रार्थना है।

भवदीय

२३-११-६४ गणेश चौबे

पो० बंगरी, पिपराकोठी, चम्पारन

भाई उपाध्याय जी,

सादर प्रणाम। सेवा में एक पत्र भेज चुका हूँ, जो मिल गया होगा।

आपका अभी का पत्र मिला है। बड़ी प्रसन्नता हुई है। आगरा में आपके दर्शन हुए और मेरा वहाँ जाने का परिश्रम सार्थक हुआ। जब आप जाने लगे तो मुझे ऐसा लगा, आपका सदा साथ रहता। इसी परिस्थिति में तुलसी दास की चौपाई याद आयी :—

मिलत एक दारुन दुख देहीं।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक मिलने पर प्रबल यातना देता है और दूसरे प्रकार के व्यक्ति का विछोह प्राण संकट उपस्थित कर देता है। आप इसी दूसरे कोटि में आते हैं। अब मैं सोच रहा हूँ कि अपनी पुस्तकें तैयार कर दूँ। जैसे जैसे समय बीतता जायगा, परिस्थिति उलझती जायेगी।

अन्तर्जनपदीय परिषद् के सम्बन्ध में श्री वृन्दावनदास जी को पत्र लिखने जा रहा हूँ।

आशा है सानन्द होंगे।

भवदीय
गणेश

२७-४-६८

पो० बंगरी, चंपारन (बिहार)

प्रिय भाई उपाध्याय जी,

सादर प्रणाम। लगभग एक महीना हुआ ब्रज भारती का अंक मिला, जिसमें आपका हिन्दी अन्तर्जनपदीय परिषद् पर एक संस्मरण छपा है। पढ़ा और पसन्द आया। लेख के द्वारा आपने जो मेरे प्रति सौहार्द व्यक्त किया है उसके लिए कृतज्ञ हूँ। छोटी-छोटी बात को भी आप इतने सुन्दर ढंग से रखते हैं कि उसमें एक मोहकता आ जाती है। मेरा लड़का शैलेन्द्र इस संस्मरण को पढ़कर खूब हँसा और प्रसन्न हुआ।

भोजपुरी कोश निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया है। व्यस्तता के कारण प्रगति मंद है। अभी तक लगभग तीन हजार शब्द संकलित हुए हैं। मुस्तैदी होने पर काम में तेजी आ सकती है। इधर मैंने मैथिली कोश मंगवाया है। उसमें शब्दों के अर्थ कुछ इस प्रकार दिये गए हैं कि वह

दुर्बोध हो गया है। जैसे पेट-पोसा-उदर भरण परायण, अनादरणीय। इसी प्रकार 'नोचब' (नोंचना) का अर्थ दिया गया है 'वक्रवस्तु के अग्रभाग से घर्षण' वस्तुतः ऐसे कोश से हमारा काम नहीं चल सकता। कोश में अर्थ सरल भाषा में होना चाहिये। आपके कोश का काम तो चल रहा है। आशा है सानन्द होंगे।

भवदीय स्नेहाधीन
गणेश

२४-११-६८

पो०—बंगरी बरास्ता-पिपराकोठी, चम्पारन

आदरणीय भाई उपाध्याय जी,

सादर प्रणाम।

आपका ता० २०-१२ का पत्र २९-१२ को और पुस्तक १०-१ को मिली। रेलवे की अव्यवस्था का इससे बढ़कर क्या प्रमाण हो सकता है।

पुस्तक के लिए धन्यवाद। भाई सचमुच आपने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। निमाड़ी लोकवार्त्ता के किस अंग पर आपने प्रकाश नहीं डाला है, इस पुस्तक में शायद उसे खोजने के लिए माथा-पच्ची करनी होगी। पुस्तक उलट-पलट कर देख गया हूँ। पढ़ने के बाद समीक्षा लिखूंगा। ब्रजभारती (मथुरा) या 'समीक्षा' (पटना) में छप सकती है। पुस्तक खपाने का प्रयास होना चाहिए। विदेशी एवं देशी विश्वविद्यालयों में पुस्तकें सप्लाई करने वाली एजेन्सियाँ हैं। वे खपा दे सकती हैं। ऐसी पुस्तकों की तलाश रहती है। अमेरिकन दूतावास भी सहायक हो सकता है। मेरे रेडियो प्रसारणों का संग्रह एक दो महिने में प्रेस में चला जायगा। रुपये की व्यवस्था हो चुकी है। अब तो केवल पाण्डुलिपि तैयार करना है। आशा है सानन्द होंगे।

नये वर्ष की शुभकामनाएँ स्वीकारें।

विनीत
गणेश

१०-१-७४

पो० बंगरी, बरास्ता-पिपराकोठी, चम्पारन

भाई उपाध्याय जी

सादर प्रणाम

ता० ५-६ को मैं मोतिहारी गया था तो 'जोखिम' को देखकर आपको याद आयी। मैंने सम्पादक से आपको भेजने के लिए एक अंक ले लिया। घर आने पर आपके पत्र के साथ 'निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास' मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन जोखिम आपकी सेवा में भेज दिया। आशा है वह आपको मिल गया होगा। इस पुस्तक को मेरे अनुज ने देखा जो अवकाश प्राप्त अधीक्षक अभियंता है। उन्होंने कहा कि लेखक ने अपने जानते निमाड़ के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं छोड़ा है। मेरे जामाता ने उसका कुछ अंश पढ़ा। उन्होंने कहा कि पुस्तक की भाषा इतनी सशक्त है कि पढ़ना आरम्भ कर देने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता है। आपने तो मेरे पास इतिहास भेजा है, लेकिन मैं इसे निमाड़ी संस्कृति का विश्वकोश मान रहा हूँ। पढ़ने पर फिर लिखूंगा। और किसी पत्र में इसकी समीक्षा भी करूंगा। पुस्तक भेजने की कृपा के लिए शत-शत धन्यवाद।

पटने में बिहार सरकार ने भोजपुरी अकादमी की स्थापना की है। अब मैं आशा करता हूँ कि मेरी संकलित सामग्रियाँ छप सकेंगी। उससे मुझे पत्र मिला है कि मैं भोजपुरी प्रकाशन के सौ वर्ष (विवरणात्मक साहित्य सूची) और भोजपुरी लोक-कथाओं पर पुस्तक तैयार कर दूँ। मैंने स्वीकार कर लिया है। छपने पर वे सेवा में जायेगी ही। काम में हाथ लगा दिया है। लेकिन आँखों में मोतियाँबिन्द है, जिससे पढ़ने-लिखने में कष्ट हो रहा है। भाई श्यामनारायण जी का क्या समाचार है ? सानन्द तो हैं ? देखें, दर्शन का फिर कब सौभाग्य मिलता है।

स्नेही

८-६-८२ गणेश चौबे

शिवसहाय चतुर्वेदी

देवरी (सागर)

प्रिय बन्धु

बहुत दिन पश्चात् आपको पत्र लिख रहा हूँ। आशा है आप सह कुटुम्ब सानन्द होंगे। हाथरस के पश्चात अभी तक भेंट का सुअवसर नहीं आया। यदा-कदा आपके लेख पत्रों में देखने को मिले हैं। अपनी साहित्यिक गति विधि से सूचित करते रहिए। मैं लोक कथाओं का एक ऐसा संग्रह तैयार करना चाहता हूँ कि जिसमें हिन्दी की सभी जनपदीय बोलियों की एक-एक उत्तम चुनी हुई कहानी हिन्दी अनुवाद सहित रहे। कुछ कहानियाँ ऐसी संग्रह की जा चुकी हैं। मैं चाहता हूँ कि उसमें आपकी लिखी हुई एक निमाड़ी कहानी भी रहे। अतः आप से प्रार्थना है कि एक उत्तम कहानी निमाड़ी बोली में हिन्दी अनुवाद सहित लिख भेजने की कृपा करें। जिससे कहानी सुनें उसका नाम भी नोट कर दें। कहानी जहाँ तक हो नैतिक भूमिका या उपदेशात्मक हो तो सोने में सुगन्ध होगी। संग्रह में कहानी आपके नाम ही से प्रकाशित होगी। आशा है कि आप यथा संभव शीघ्र एक उत्तम कहानी भेजकर मेरे इस कार्य में सहायक होंगे।

उरगेशजी का पत्र आता रहता है। पत्रोत्तर देने की कृपा करेंगे।

भवदीय

२३-१-५४ शिवसहाय चतुर्वेदी

वृन्दावन दास

प्रकाश भवन, डोरी बाजार, मथुरा

प्रिय उपाध्यायजी,

आपका पत्र यथा समय मिल गया धन्यवाद। इस पत्र के साथ मण्डल द्वारा प्रचारित दो परिपत्र भेजे हैं।

कोश निर्माण का कार्य आपने आरम्भ कर दिया यह बहुत ठीक है। सर्व श्री कृष्णानन्द जी और गणेश जी भी क्रमशः बुन्देली और भोजपुरी पर कार्य कर रहे हैं। यदि यह काम सुचारू रूप से सम्पन्न हो गया तो यह हिन्दी जगत की एक ऐतिहासिक घटना समझी जायगी ! ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह इस महान कार्य के लिए आवश्यक साधन जुटा दें और हमारे मार्ग में बाधाएँ उपस्थित न हों।

आशा है आप सपरिवार प्रसन्नतापूर्वक हैं।

आपका

९-९-१९६८

वृन्दावन दास

मथुरा

प्रियवर उपाध्यायजी,

कृपा पत्र मिला। आपने ठीक सुना मैं काफी अस्वस्थ हो गया था। घोर परिश्रम ने मुझे झकझोर दिया था। स्नायुनैर्बल्य से स्वास्थ बड़ी अवनत दशा को पहुँच गया था। काफी विश्राम करने के बाद अब ठीक हूँ। ७१वें वर्ष में अब काम तो अधिक कर ही नहीं सकता।

जनपदीय आंदोलन में आपकी प्रगाढ़ निष्ठा है। आप सहर साहित्यिक मनीषियों के पोषण से ही जनपदीय आंदोलन को बल मिलेगा। वस्तुतः जनपदीय आँदोलन ही हिन्दी की आधारशिला है। जनपदीय स्तर पर हिन्दी की आभा को विकीर्ण करना इस आंदोलन का मुख्य ध्येय होना चाहिए। यदि हमने भाषा के प्रकाश को जनपदों में फैला दिया तो वह सर्वव्यापी होकर अज्ञान रूपी अंधकार को मिटा देगा। जनपदीय आंदोलन की नींव पर हिन्दी का विटप सदा लहलहाता रहेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। राष्ट्र की आत्मा जनपदों में रहती है। उसका विकास प्रेम सेती होना चाहिए। आशा है आप स्वस्थ एवं सानंद हैं।

'ब्रजभारती' बन्द हो गई। मैंने उसे १२ वर्ष चलाया परन्तु अब कोई धनी-धोरी नहीं है। दुःख होता है।

आपका

७-३-७७

वृन्दावन दास

विनयमोहन शर्मा

गवर्नमेंट डिग्री कालेज, रायगढ़

प्रियवर

आपकी जबलपुर प्रेषित 'गरीब और अमीर पुस्तकें' मिल गई। धन्यवाद। मुझे आपके ये व्यंग्यात्मक लघु निबन्ध बहुत पसन्द आये। आप में मौलिक चिंतन की क्षमता है और अपने को व्यक्त करने की अपनी शैली भी है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये।

शुभाकांक्षी

२६-८-५८ विनयमोहन शर्मा

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

प्रियवर उपाध्याय जी,

आपकी 'निमाड़ी और उसका लोक साहित्य' तथा 'संत सिंगाजी एक अध्ययन' पुस्तकें मिलीं। धन्यवाद। दोनों पुस्तकें पढ़ कर बड़ा संतोष हुआ। 'निमाड़ी और उसका लोक साहित्य' निमाड़ी जीवन और संस्कृति का बड़ा मोहक चित्र उपस्थित करता है। निमाड़ी के सम्बन्ध में आपका यह निकर्ष, ठीक है कि वह मालवी का रूप नहीं है। उसकी प्रकृति परुषा है। वह अपनी पड़ोसिन गुजराती और मराठी में अधिक प्रचलित है। सीमावर्ती भाषाओं का प्रभाव स्वाभाविक है। मालवी की कुछ छाया उस पर भी पड़ी है पर इससे उसे उसकी शाखा नहीं कहा जा सकता। सन्त सिंगाजी पर श्री गंगराड़े ने भी कार्य किया है। आपका कार्य आपकी मौलिक शोध के कारण विशेष महत्व रखता है।

आपका

२५-६-६५ विनयमोहन शर्मा

ई १/१४३ अरोरा कालोनी, भोपाल

प्रिय भाई रामनारायण जी,

रतलाम में आपसे मिलकर बड़ा सुख मिला। मार्ग में आपके निबन्धों की पुस्तक पढ़ गया। आपके लेखन में सरलता और हृदय की निश्छलता के दर्शन होते हैं। आप अनुभव करते हैं और तब लिखते हैं, यह बड़ा भारी

गुण है। आज बहुत से तथाकथित लेखक या तो बाहर से आयात विचारों पर जिन्दा रहने की आशा करते हैं या अपने ही सहकर्मियों से छल करते हैं। पर ये भूल जाते हैं कि उधार ली हुई सामग्री से उनका व्यक्तित्व नहीं बनेगा प्रत्युत कुंठित होगा !

कभी भोपाल आयें तो घर पर ही आयें। पता ऊपर लिख दिया है।

सस्नेह

आपका

१०-६-७१ विनयमोहन शर्मा

श्री कृष्णदास

2/डी मिन्टो रोड : इलाहाबाद-२

आदरणीय उपाध्याय जी, प्रणाम !

आपका स्नेहपूर्ण कृपा पत्र आज ही मिला। धन्यवाद। आपने मेरा जो चित्र भेजा था, वह यथा समय मुझे मिल गया था। क्या उसके साथ के और भी चित्र मिल सकते हैं ?

प्रथम एशियाई लोक संस्कृति सम्मेलन अब तो सितम्बर-अक्तूबर मास में ही संभव हो सकता है। प्रयत्न कर रहा हूँ। प्रशासकीय प्रश्रय पूरी तरह न मिलने के कारण सम्मेलन आयोजित करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। एशियाई सम्मेलन में यदि अधिकांश एशियाई देश के प्रतिनिधि न सम्मिलित हुए तो वह सम्मेलन किस काम का होगा ? मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ कि प्रथम एशियाई लोक संस्कृति सम्मेलन वास्तव में प्रतिनिधि और सफल सम्मेलन हो। आशा करता हूँ कि आप सब स्वजन बंधुओं की कृपा से सम्मेलन वास्तव में एक सफल आयोजन का रूप ले सकेगा।

आपकी पुस्तकें प्रयाग से प्रकाशित होती हैं, इसका आभास मुझे था। आपकी सारी पुस्तकें हमारे संस्थान के पुस्तकालय में होनी चाहिए। संस्थान पत्रिका का दूसरा अंक प्रायः तैयार है। निकट भविष्य में ही आपकी सेवा में पहुँचेगा।

प्रयाग में आपका स्वागत करने के लिए हम व्यग्र हैं। वह दिन भी

आएगा जब आप सभी आचार्य और विद्वान प्रयाग में सम्मेलन के मंगल-मय अवसर पर एकत्र होंगे।

सविनय

७-५-७५ श्री कृष्णदास

शांतिकुमार नानूराम व्यास

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

प्रिय उपाध्याय जी,

नमस्कार !

आपका ता० २६-८-५८ का पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। उत्तर में विलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। माहिष्मती को महेश्वर मैंने श्री नन्दलाल दे की Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India के आधार पर माना है। पूना के प्रो० गोट्टे की मार्फत भी मैंने इस सूचना की पुष्टि कराई थी और उन्होंने वहीं के एक विशेषज्ञ का यह अभिमत मुझे भेजा था कि महिष्मती मान्धाता नहीं है। उसका नाम मुझे स्मरण नहीं आ रहा है, आप चाहें तो पता लगाकर बता सकता हूँ और आप उनसे अन्य प्रमाण प्राप्त करने के लिए पत्र व्यवहार कर सकते हैं।

आपकी 'गरीब-अमीर पुस्तकें' देखी थी। स्वच्छ सुन्दर व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है उसमें आपने।

अपनी पुस्तक के लिए आपकी प्रशंसा से प्रोत्साहित हुआ हूँ। आशा है, 'रामायण कालीन समाज' के साथ-साथ मंडल से प्रकाशित मेरी दूसरी पुस्तक 'रामायण कालीन संस्कृति' भी देखी होगी।

आपका

२२-९-१९५८ शांतिकुमार नानूराम व्यास

श्याम परमार

बहादुरगंज उज्जैन

प्रिय बन्धु

आपका स्नेह भरा पत्र मिला। आपको मैंने बताया ही होगा कि मैं

उत्तर देने में प्राय: आलस कर जाया करता हूँ। किन्तु इस बार आलस करने के बजाय कुछ ऐसा रहा कि मैं उत्तर चाहते हुए भी न दे पाया। इन्दौर, देवास के चक्कर में आये हुए पत्रों को सम्भाल भी न पाया। 'लोक गीतों' की भाषा ऊपर से भिन्न हो पर अन्दर से यह एक ही है। इसलिए इस दिशा में काम करने वालों के मन मिल जाना स्वाभाविक है। फिर निमाड़ और मालवा तो भाई-भाई हैं। सुबह के बिस्तरे से जैसे दो छोटे भाई एक दूसरे के गले में हाथ डाले पड़े रहते हैं, उसी प्रकार इन दोनों भूभागों की सीमाएँ मिलती हैं। मालवा लोक साहित्य परिषद् की स्थापना की जा चुकी है। कृपया निमाड़ में भी निमाड़ लोक परिषद् की स्थापना कर डालें। मैं छपी हुई सामग्री शीघ्र भेजूँगा। अभी तो आप केवल एक मीटिंग कर उसकी घोषणा कर दें। मा० लो० सा० परिषद् का सहयोग आपको मिलेगा। परिषद् के अध्यक्ष व्यास जी हैं। 'नवीन जी हरिभाऊ जी आदि स्थायी समिति में हैं। शेष फिर।

आपका

२६-४-५२ श्याम परमार

८१ स्नेहलता गंज, इन्दौर

प्रिय बन्धु

पत्रोत्तर के विलम्ब के लिए क्षमा। कारण मैं कई दिनों से बाहर था। आजकल इन्दौर मैं हूँ। आपको रचनाएँ पसन्द आईं, इसके लिए धन्यवाद ! चलो, प्रयत्न तो सफल हुआ। पिछले धर्मयुग में 'पलाश और महुआ' कथा पढ़ी, पसन्द आई। मैं आपके लेख काट कर अपने पास रख लेता हूँ। सम्मेलन पत्रिका का लेख भी अच्छा लगा। 'सोना बाई' की कथा अकेले मालवा में ही नहीं दक्षिण में भी मिलती है। जरा रूप बदल जाता है। कथाएँ यात्रियों के साथ यात्रा करती हैं। उनकी प्रवृत्ति पौरुष प्रधान होती है। गीत स्त्रैण प्रवृत्ति के होते हैं। निमाड़ और मालवी की अनेक कथाएँ समान हैं। क्योंकि निमाड़ की ओर जाने वाले यात्री प्राय: मालवा की ओर से होते हुये गये हैं। कुछ कथाएँ प्रकाशित करवाइये। मालवी की लोक कथाओं का एक संग्रह 'आत्माराम एण्ड सन्स' निकाल

रहा है। आप उससे बातचीत कर बालकों के लिए निमाड़ी कथाओं का संग्रह कीजिए, पत्र दें।

आपका

२०-७-५४ श्याम परमार

डा० महेन्द्र भानावत

भंडारियों की घाटी, उदयपुर (राजस्थान)

आदरणीय उपाध्याय जी

वन्दे !

आपका १२-५-६५ का कृपा पत्र मिला, आभारी हूँ। 'निमाड़ी और उसका लोक साहित्य' पुस्तक भी मुझे मिल गई है। पूरी पुस्तक मैंने पढ़ भी ली है। लोक नाट्यों विषयक सामग्री तो उसमें अति संक्षेप में ही संजोई गई है परन्तु मेरा काम चल जाएगा। इसके अलावा सांझी कला पर मुझे इसमें अच्छी सामग्री मिल गई है। इस पर मैं एक पुस्तिका— 'सांझी कला और विज्ञान' तैयार कर रहा हूँ। इसमें अन्य प्रान्तों की सांझी कला का तुलनात्मक अध्ययन रहेगा। राजस्थान में ८ प्रकार की सांझी प्रचलित है। स विषयक बालिकाओं के करीब ७५ गीतों का मैंने संग्रह कर लिया है। अच्छी सामग्री मैंने जुटा ली है। इसमें तो मैंने 'दशामाता' व्रत और कथाएँ, पुस्तक पूरी की है। इसे करीब १५-२० दिन में प्रेस में प्रकाशनार्थ दे रहा हूँ। दशामाता की ४० कहानियाँ के साथ-साथ विस्तृत भूमिका तथा अंत में शब्द कोश रहेगा। दशामाता के ३ थापे भी इसमें रहेंगे। लोक नाट्यों के राजस्थान में प्रचलित ३५ प्रकार मैंने अपनी शोध में पाये हैं। 'हिन्दुस्थानी' में कठपुतली विषयक लेख भी इसमें से एक है। आपकी महती कृपा के लिए मैं बहुत आभारी हूँ।

विनीत

१६-३-६५ डॉ० महेन्द्र भानावत

प्रफुल्ल कुमार मौन

म० मो० कालेज, विराट नगर (नेपाल)

श्रद्धेय महाशय,

आपकी पुस्तकें एवं दो निबन्ध मिले। सहयोग के लिए आभारी हूँ। आपकी साधना के आगे श्रद्धावनत हूँ। आपने अपनी लेखनी के माध्यम से निमाड़ के कण-कण को उजागर कर दिया है। विशेष टिप्पणी बाद में लिखूँगा। नेपाल के सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री (संयोग से मेरे सहकर्मी) प्रो० बालकृष्ण पोरवटेल ने आपकी 'निमाड़ी और उसका लोक साहित्य' को बहुत उपयोगी बताया और सच ही आपका अनुमान सही है कि नेपाली और निमाड़ी के शब्दों में साम्य है। मेरा छोटा परिचय 'साहित्यालोक' (पृ० ७५) में है तथा उत्कर्ष (फरवरी ६८) के अंक में जिसमें आपकी रचना 'भाई भाई भेड़िये भेड़िये' है। बतलाइये हम कितने निकट हो गये। इस सहयोग को मैं वरदान मानता हूँ जिसने एक दूसरे को निकट लाया। मैंने हिन्दी को 'आंचलिक रिपोर्ताज' (एक विशिष्ट) विधा दी है, समीक्षकों का कहना है। मेरा प्रिय विषय है अंचल संस्कृति, साहित्य, भाषा आदि। आप मुझे थोड़ा और सहयोग करें। श्री सूर्य किरण पारिक, श्री श्याम परमार, कृष्ण देव उपाध्याय, डा० सत्येन्द्र का पता दें ताकि मैं उनसे सम्पर्क कर सकूँ। आपके लिए 'नेपाली जन साहित्य' शीघ्र ही प्राप्त कर भेजने की कोशिश करूँगा। अभी उपलब्ध नहीं है। नेपाली भाषा में है। यदि उत्सुक हों तो लिखें। मैंने थारू लोक साहित्य की दो प्रतियाँ आज ही रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेज दी हैं। सं० विराट नगर २२६, १३-११-६८ एक प्रति अतिरिक्त भेजी है। कोई सुयोग्य पाठक या पुस्तकालय को चाहें तो दे सकते हैं। अथवा भाई शिवनारायण जी को मेरी ओर से, क्योंकि उस पर भी शायद आपका नाम चढ़ गया है। उनसे भी भिजवा दें। विनिमय में जो रुचि रखते हों उनसे मैं सम्पर्क चाहूँगा।

शेष कुशल।

१८-११-६८ प्रफुल्ल कुमार मौन

गोविन्द अग्रवाल

चूरू (राजस्थान)

सम्मान्यवर,

सादर वन्दे। राजस्थान लोक साहित्य का रत्नागर है और इसमें लोक साहित्य का विशाल भंडार है। अब तक इस साहित्य का अधिकांश भाग लोक जुबान पर ही चलता रहा और लिपिबद्ध नहीं किया गया। लेकिन सदियों से चलती आ रही यह परम्परा अब टूट चुकी है और फल-स्वरूप यह सारा साहित्य लुप्त होने लगा है और इसे तुरन्त संरक्षण नहीं मिला तो यह आगामी कुछ ही वर्षों में सदा के लिए अदृश्य हो जाएगा। यद्यपि यह काम बहुत बड़ा है और सरकार या साहित्य अकादमी जैसी संस्थाएँ ही इसे भली प्रकार कर सकती हैं। लेकिन इस तरफ से दोनों ही उदासीन हैं, यह देख कर पीड़ा होती है।

इधर मैं पिछले कुछ वर्षों से लोक साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहा हूँ और यद्यपि लोक साहित्य के विभिन्न अंगों पर काम हुआ है लेकिन कथा साहित्य पर कुछ अधिक काम हो पाया है और ये कथाएँ पिलानी से निकलने वाली शोध पत्रिका 'मरुभारती' में निकल रही है। अप्रैल ६७ तक १०७२ लोक कथाएँ प्रकाशित करवा चुका हूँ। पिछले अंक में प्रकाशित कथाओं के Reprint आपके अवलोकनार्थ बुक पोस्ट से भेज रहा हूँ। मेरा लक्ष्य ५००० कथाओं का एक बड़ा लोक कथा कोश तैयार करने का है। लेकिन सहयोग के अभाव में मेरा उत्साह मन्द पड़ने लगा है। यदि कुछ भी सहयोग मिला होता तो अब तक इससे दुगना काम हो गया होता। आशा है मेरा यह लघु प्रयास आपको पसन्द आयेगा। अंतर्जनपदीय परिषद को पुनः जीवित कीजिये।

१८-५-६७ गोविन्द अग्रवाल

चूरू (राजस्थान)

सम्मान्यवर,

सादर वन्दे। विविध जानकारियों से भरपूर 'निमाड़ी और उसका

'लोक साहित्य' पुस्तक रजि० डाक द्वारा प्राप्त हुई जिसके लिए बहुत आभारी हूँ।

लोक साहित्य के साथ-साथ आपने निमाड़ी के 'सन्त साहित्य' और निमाड़ की लोक कलाओं पर भी बखूबी प्रकाश डाला है। निमाड़ का संक्षिप्त इतिहास और निमाड़ी के चुने हुए शब्द देकर आपने पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। इस पुस्तक के माध्यम से आपने पाठकों को घर बैठे निमाड़ की सुन्दर सजीव झाँकियाँ देखने का सुअवसर प्रदान किया है, इसके लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करें। मेरी राय में ऐसी उपयोगी, सरस और जानकारी से भरी-पूरी पुस्तकें सभी प्रादेशिक भाषाओं के सम्बन्ध में निकलनी चाहिए।

सादर साभार

७-६-६७ गोविन्द अग्रवाल

गोविन्द चातक

बंगाली स्वीट शॉप, चकराता रोड, देहरादून

प्रिय उपाध्यायजी,

सस्नेह अभिवादन।

आपका पत्र मुझे कल ही मिला। मैं बाहर गया था। कल ही लौटा हूँ। इसलिए उत्तर में जो विलम्ब हो गया उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। आपने मेरे कार्य के प्रति रुचि ली उसके लिए कृतज्ञ हूँ। निमाड़ी लोक साहित्य के लिए आप भी जो कुछ कर रहे हैं उससे भी मैं अवगत हूँ। यह बड़ी खुशी की बात है कि कार्य के अतिरिक्त हम व्यक्तिगत रूप से भी एक-दूसरे के नजदीक आ सकें। सचमुच पत्र लिखकर आपने बड़ा अनुग्रह किया। हम अब एक ही पथ के पथिक हैं। जितना एक-दूसरे के निकट रहें उतना अच्छा। आपने जो स्नेह दिखाया वह चिरायु रहे, इसी कामना के साथ।

आपका

२८-२-६८ गोविन्द चातक

सुकुमार पगारे

इटारसी

प्रिय रामनारायण,

एक पत्र खण्डवा के पते से मैंने तुम्हें डाला, वह मिला या नहीं— मेरी तबियत अत्यन्त अशक्त है और परिवर्तन की आवश्यकता जान पड़ती है अतएव रविवार या सोमवार को किसी गाड़ी से खण्डवा आ जाऊँगा। वहाँ रहकर तुम्हारी राह देखूँगा, उचित तो यह है कि उसके पूर्व ही तुम आ जाओ, तुम नहीं हुए तो करूँगा भी क्या ? एक हफ्ते के लिए उस ओर आना चाहता हूँ ! खण्डवा, सनावद, मोरटक्का अथवा इन्दौर घूम फिर कर चला आऊँगा। तुम यदि खण्डवा ठीक समय पर नहीं आये तो फिर तीन दिन के बाद सिवा इटारसी लौटने के और क्या चारा रहेगा ?

इन दिनों बीमारी में जान बूझकर शरद बाबू का 'श्रीकान्त' बुलाकर पढ़ता रहा ! आह, शरद में कितनी अद्भुत शक्ति है, उसकी वस्तु पढ़कर आप दिनों तक उसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। पढ़ते समय पाठक घटना चक्र से गुँथ जाता है और अपूर्ण या पूर्ण किताब छोड़ने के बाद पाठक एक अनिद्य स्वप्नलोक में भ्रमण करता रहता है। श्रीकान्त के तीसरे पर्व में जिन गाँवों का जिक्र आया है उन्हें मैं स्वयं देख आया हूँ, इसलिए सारी घटना और भी कुतूहलप्रद रही। सांइथियाँ स्टेशन, बोलपुर के पास का गाँव रामपुरहाट, इसी गाँव की लड़की है सावित्री सिंह, जिसने काँपि से कुछ पत्र भेजे थे। महमूदपुर, यह सत्य चटर्जी का ससुराल है। काली पहाड़ी जहाँ हम ठहरे थे, हम लोग शान्ति निकेतन गये और चटर्जी महाशय महमूदपुर। यह सब वीरभूमि जिले में है, इसी जिले में और इन्हीं में से १०-१२ मील के इर्दगिर्द में शान्ति निकेतन है। यहीं कहीं राजलक्ष्मी (श्रीकान्त उपन्यास की नायिका) का वह ग्राम गँगा माटी भी होगा, जो श्रीकान्त के जीवन का केन्द्रस्थल बना रहा ! अभी ही समाप्त किया है भाई, और वह कमललता वैष्णवी आँखों में घूम रही है। एक साथ राज लक्ष्मी, अथवा कमललता और न मालूम कितनी अज्ञात स्त्री रत्नों का प्यार पाने वाला श्रीकान्त स्वयं कितना निर्मोही, कितना निरासक्त। वह

कभी किसी वस्तु को पकड़कर नहीं बैठा। अपार सौन्दर्य और धन राशि पाकर भी जीवन की उसकी टीस बनी ही रही, वह क्या भाव था जो कभी पूरा नहीं हुआ।

श्रीकान्त अपने एक मुसलमान मित्र के गाँव में ठहरा है वहाँ वैष्णवों का मठ है, उसी में अनेक वैष्णवियाँ भी हैं। श्रीकान्त उसी मठ का मेहमान है। आने का प्रथम दिन ही है और भगवत प्रेम में रमी हुई, वैष्णवी कमललता आकर कहती है 'मैं जानती हूँ, तुम यहाँ रहने नहीं आए हो, और रहोगे भी नहीं? चाहे जितनी प्रार्थना करूँ दो-एक दिन में चले ही जाओगे? पर यही पूछती हूँ, इस व्यथा को कब तक सम्हाले रहूँ?' यह कह कर सहसा उसने अपनी आँखें पोंछ ली। मैं चुप ही रहा। इतने थोड़े समय में इतनी स्पष्ट और प्रांजल भाषा में किसी रमणी के प्रणय निवेदन की कहानी इसके पहले न तो कभी किसी किताब में पढ़ी, न लोगों के जुबानी सुनी। और मैं अपनी आँखों देख रहा हूँ यह अभिनय भी नहीं है। (श्रीकान्त)

इस एक घटना में लेखक ने कितने युगों-युगों का सत्य उंडेल दिया है। ऐसी घटनाएँ किसी न किसी के जीवन में ठीक ऐसे ही ढंग से अप्रत्याशित रूप से घटती ही रहती हैं। यदि यह न हो तो यह संसार-चक्र रसहीन, संज्ञा हीन, जीवन शून्य हो जाय। केवल एक बात है, घटनाएँ साधक के ही जीवन में घटती हैं। दुनिया अन्धी है, कुछ भी कहे किन्तु कुछ खोकर निरन्तर रक्त सुखाने वालों का जीवन व्यर्थ कभी नहीं जाता। उन्हें कष्ट भी मिलता है, प्यार भी मिलता है। ऐसे व्यक्ति न मालूम कितने हैं, और वे चुपचाप अपने पीछे न मालूम कितने उपन्यासों की भूमिकाएँ तैयार करते जा रहे हैं। इसी साधना का प्रतिफल होता है, रवीन्द्र, शरद और प्रेमचन्द का जन्म! और फिर इन साधक व्यक्तियों की अनुभूति लाख-लाख गुना प्रबल होकर उस देश की मिट्टी से निकलकर शरद जैसे लेखकों की कलम से अविरल प्रवाहित हो उठती है। उपन्यास और उपन्यासकार के विषय में आज तो इतना ही सोचा है मैंने। और ज्यादा तुम लोग जानो जो चिंतक हैं, लेखक हैं।

तुम्हारा ही भाई
६-४-४५ सुकुमार पगारे

कान्ति (कोटाँई)

प्रिय रामनारायण,

कल शाम यहाँ पहुँचते ही तुम्हारा पत्र सिस्टर के पत्र के साथ मिला। मैं मध्यप्रान्त से निकलकर युक्त प्रान्त और तपोमय बिहार का दर्शन करता हुआ साहित्य संगीत और कला के घर बंगाल के अन्तिम छोर पर आ पहुँचा हूँ, जहाँ से समुद्र छोर केवल पाँच मील रह जाता है। पिछली १५ तारीख के बाद के यह दस दिन विविध घटनाओं से भरे पूरे रहे। ऐसा मालूम होता है, मैं एक नये लोक में हूँ। यात्रा करते हुए दूर-दूर तक फैले हुए धान की नई फसल से भरपूर हरे-भरे खेत, उन खेतों के बीच नारियल के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के झुण्ड, और उनमें छिपे हुए फूस से आच्छादित घरों वाले ग्राम, इस सबको देखते-देखते मन थकता ही नहीं। फसल सब हरी-भरी खड़ी है। एक प्रश्न उठता है वाणिज्य और इस तरह की सुनहरी फसल से सम्पन्न बंगाल? तुमने लिखा है, मैं गया, बनारस, देवधर आदि होता आऊँ। यही बात तुमने खण्डवा में भी कही थी, तो जाने को तो बहुत है, पुरी यहाँ से २०० मील है। कटक केवल ८ स्टेशन, और फिर यदि वहाँ तक जाता हूँ तो, वाल्टेयर से सीधा मद्रास होते हुए लौट सकता हूँ। किन्तु मैं तुम्हें बताऊँ. नगर आदि स्थान देखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है न मेरी उस ओर दिलचस्पी है! मुझे ऐसा मालूम होता है, जैसे मैं बंगाल के जीवन को स्पर्श कर रहा हूँ। बहन बारबरा के कारण मैं कितना देख सका हूँ; इन दिनों? बंगाल के महलों से लगाकर कोल मील के मजदूर, उनकी झोंपड़ियों, उनका आन्तरिक जीवन और मैंने उन झोंपड़ियों में भी प्रवेश पाया है जहाँ एक वर्ष पूर्व मानव चावल के एक-एक दाने को तरसता था। मैं यहाँ की जमीन, यहाँ के रीति-रिवाज, यहाँ की स्थिति, जाग्रति, यहाँ के संगीत, साहित्य और कला का दर्शन करना चाहता हूँ। संक्षेप में मैं यहाँ के लोक जीवन से परिचित होना चाहता हूँ। तुम मुझे फल्गु की रेत वहाँ के पण्डों का अनाचार, बनारस की तंग गलियाँ, देखने को बार-बार क्यों कह रहे हो। और फिर जानते हो आर्थिक दृष्टि से भी वह अब संभव नहीं है? हमारे वहाँ की स्थिति से यहाँ के भावों का कोई मिलान नहीं है? एक बार के साफ सुथरे खाने के दो रुपये लग जाते

हैं और फिर ट्रेन्स; आदमी एक बार बैठ कर यही चाहेगा कि किसी भी प्रकार वह अंतिम छोर पर ही जाकर उतरे। आजकल गाड़ी में जगह पाना बड़ी समस्या है।

हाँ, तो एक पत्र शान्ति निकेतन से मिला होगा। शान्ति निकेतन सचमुच एक संस्था है, जिसे देखकर हम गुरुदेव का सच्चा दर्शन पा सकते हैं। उन्हें सशरीर हमने नहीं देखा तो क्या हुआ ? गुरुदेव की आत्मा का दर्शन आज भी हम यहाँ आकर कर सकते हैं। वैसे साधारण दर्शक को जो वस्तु सुलभ नहीं होती, वह सिस्टर के कारण सब सुलभ है, क्योंकि सिस्टर अभी भी गुरुदेव के कुटुम्ब की सदस्या मानी जाती हैं। पूजा की छुट्टियों के कारण शान्ति निकेतन की क्लासें आदि सब बन्द थीं, विद्यार्थी भी नहीं थे, यह मेरे लिए और भी अच्छा था। आजकल अकेले, एकान्त और शान्त रहने की आदत और भी बढ़ गई है। इसलिए और भी अच्छा लगा, फिर भीड़ से बचकर गुरुदेव की संस्था का सम्पूर्ण दर्शन कर उसे आत्मगत करने में खूब ही आनन्द आया। उत्तरायण जहाँ स्वयं कवि रहते थे वहाँ हम सर्व प्रथम गये। भवन स्वयं एक राज प्रासाद है; वैभव और सुरुचि का जो अपूर्व संकलन आप यहाँ पाएँगे वह कहीं भी नहीं मिलेगा। सब कमरे साफ हो रहे थे, और फर्नीचर जम रहा था, रश्मि और प्रतिमा देवी कलिम्पांग में हैं। एक कमरे में आपको केवल गुरुदेव के बनाये चित्र मिलेंगे। उन वस्तुओं को देखा जिनका उपयोग स्वयं गुरुदेव करते थे। उनकी थाली, उनके कपड़े, उनके उपयोग का छोटा-बड़ा सामान, उनकी अपनी लायब्रेरी, उसके बाद उनकी स्वयं की प्रकाशित पुस्तकों का संग्रह, बंगला अंगरेजी तथा संसार की अन्य भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों के प्रथम संस्करण, उनकी पाण्डुलिपि का संग्रह ये सब वस्तुएँ उत्तरायण में है। ऊपर उनका शयनगृह, वह बरामदा जहाँ कवि ने बैठकर न मालूम कितने गीत रचे थे। उनका सुन्दर स्नानगृह आदि, वहाँ रखे हुए कलापूर्ण बर्तन आदि सब वस्तुएँ नजदीक से देखीं।

हम ठहरे उस भवन में थे, जो सच्चा शान्ति निकेतन है जिस स्थान पर बैठकर गुरुदेव के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ को अपने दो साथियों के साथ प्रकाश का आभास हुआ था। ८० वर्ष पूर्व यह गृह महर्षि ने इस जन शून्य

स्थान पर बनाया था। अब यह घर शान्ति निकेतन का गेस्ट हाऊस है। मुझे यह स्थान खूब ही अच्छा लगा। हम लोग, विश्व भारती (अँगरेजी) पत्रिका के सम्पादक श्री कृष्ण कृपलानी तथा उनकी स्त्री श्रीमती नन्दिता देवी से मिले जो गुरुदेव की बहन की लड़की है। श्री कृपलानी, आचार्य कृपलानी के रिश्ते के भाई हैं। शान्ति निकेतन के स्तम्भों में से एक है ! गुरुदेव के दामाद हैं। अँगरेजी के सुन्दर लेखक और अपने काम में अत्यन्त दक्ष माने जाते हैं वहाँ। यहाँ एक महाशय हैं, श्रीकान्ति घोष, उनकी पत्नी हंगेरियन स्त्री है। यह देवी बड़ी ही भली लगी। एक दिन चाय वहीं हुई। खूब बातें हुईं। वह महाशय भी मजे के जीव थे, लन्दन के लिए परेशान थे। कह रहे थे इस जीवन में अब और लन्दन देखने को मिलेगा भी या नहीं ? Oh poor old London I love you आदि आदि। श्रीराम किंकर, शान्ति निकेतन के एक कलाकार हैं। मूर्तिकार और चित्रकार दोनों। इनकी कुटिया, कला भवन के पीछे, केले के पेड़ों में छिपी हुई स्वयं अपने आप एक आश्रम है। यद्यपि विद्यार्थी कम थे फिर भी शान्ति निकेतन संगीत हीन नहीं था। जब तक सिस्टर, श्रीराम किंकर से स्थापत्य कला की बारीकियों की चर्चा कर रही थी, मैं मन्त्र-मुग्ध हो कला भवन की एक कुटिया से आने वाले सितार के स्वरों को सुन रहा था। पास ही एक विद्यार्थी ग्रामोफोन पर एक के बाद एक बंगला के श्रेष्ठ रिकार्ड रख रहा था। अचानक एक रिकार्ड प्रारम्भ हुआ और राम किंकर अपनी बातचीत का सिलसिला तोड़कर एकदम रुक गये बोले This is Gurudeo speaking गुरुदेव स्वयं एक गद्य काव्य बोल रहे थे, हम स्तब्ध हो सुन रहे थे। सितार का स्वर भी धीमा हो गया और सब मन प्राण से एक हो गुरुदेव को सुन रहे थे। शान्ति निकेतन की वह शान्त सन्ध्या मुझे सदा याद रहेगी।

यहाँ एक पार्सी बहिन है, मिस रोती पेटिट (Miss Roti Patit) चित्रकार है, अभी संगीत का अध्ययन कर रही है। तिब्बत के छोर तक एक बार हो आई है, अपने भंडार से अनेक चित्र निकाल कर बताये उन्होंने, तिब्बत जाने को पागल हैं वे। शीघ्र ही फिर जाएँगी। चित्रों के रूप से कहानियाँ लिखकर बच्चों के लिए दो पुस्तकें भी लिखी हैं। खाना यूरो-

पियन गेस्ट हाउस में हम लोग उनके साथ खाते थे। वहीं पास में हमारे महाकोशल के परिचित बन्धु 'लालजी', नहीं शान्ति निकेतन के अध्यापक और शान्ति निकेतन में सबके प्यारे श्री भाई मोहनलाल जी वाजपेयी भी रहते हैं। उनका भी खूब साथ रहा। उन्हें खूब कष्ट भी दिया। श्री बाजपेयी का दृष्टिकोण विशाल है। उनकी सोसायटी अन्तर्राष्ट्रीय है। उनके अपने कई विदेशी मित्र हैं। गुरुदेव के साथ ही श्री अरविन्द में भी खूब दिलचस्पी रखते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद के दर्शन हिन्दी भवन में जाकर किये। तुम यदि 'हिन्दी ज्ञान के इस आगार' के श्री चरणों में कुछ दिन रह सको तो अपने साथ ही मेरा भी कुछ भला कर सकते हो। बड़े ही सरल हैं। हिन्दी के सच्चे प्रतिनिधि हैं वे यहाँ। हिन्दी का सम्मान उनके हाथों पूर्ण सुरक्षित है यहाँ। सन्त सिंगाजी के सम्बन्ध में उनसे चर्चा की। कुछ सुझाव उन्होंने दिये और इस सम्बन्ध में सदैव ही परिचित कराते रहने के लिए कहा।

मैं २ तारीख तक यहाँ रहकर सीधा इटारसी आऊँगा। यदि सब सुनना चाहते हो तो वहीं आओ दो के बाद। भाई शिव को प्यार, सबको यथा योग्य।

तुम्हारा ही भाई

२६-१०-४४ सुकुमार पगारे

विजयेन्द्र स्नातक

स्नातक सदन ए, ५/३ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

प्रिय श्री उपाध्यायजी,

आपका पत्र मिला। भोपाल की यात्रा में आपसे केवल भेंट ही हुई, मिल बैठकर बात करने की इच्छा अपूर्ण ही रह गई। फिर भी इस यात्रा को मैं एक सफल यात्रा समझता हूँ। 'धुँधले काँच की दीवार' को तो मैंने ट्रेन में ही पढ़ लिया था। धुँधले काँच का दुराव कितना सघन होता जा रहा है और कृत्रिम आवरणों के परिवेश ने हमें कितना आक्रान्त कर लिया है यह आपके लघु निबन्धों की प्रत्येक पंक्ति से स्पष्ट है। कहीं-कहीं व्यंग

काफी तीखे और चुटीले हो गये हैं। क्योंकि उनके पीछे छिपी अभिव्यक्ति उतनी ही मार्मिक और व्यथा संकुल है। सेवा करने के लिए मंत्र पर उतरने वाले सेवकों के लिए ऐसे ही कशाघाती मार्मिक व्यंग अपेक्षित हैं। 'इतिहास के पात्र जिन्हें हमसे शिकायत है' अनेक हैं। एकलव्य की शिकायत को मैंने एक बार उज्जैन नगरी की भरी सभा में प्रस्तुत किया था मुझे वही शिकायत आपके एकलव्य से सुनने को मिली। आपका पाला एक अजीब प्रेस रिपोर्टर से पड़ा जो मन्त्रियों के भाषण की रिपोर्ट मॉडल के रूप में रखता है और यथा अवसर उनका प्रयोग करता रहता है। ठीक ऐसे ही समीक्षकों से मुझे वास्ता पड़ता है जो किताबें बिना देखे सुन्दर समीक्षाओं को लिखकर छपाते रहते हैं। सिर्फ होता यह है कि कभी-कभी प्रमादवश नाटक की समीक्षा उपन्यास के ढंग से और उपन्यास की समीक्षा नाटक के ढंग से लिख दी जाती है।

'हम सब रफू हैं' इतना ही सत्य नहीं है। हम सब मंगनी के भी लिबास पहनते हैं यह भी सत्य है। आपने उस मँगनी के कुर्ते वाले वराती की कहानी सुनी होगी जो आपके रफू बाबू से मिलती-जुलती है। आपने गाँव वालों के अनुरोध से नाटक में पार्ट किया। और प्राम्पटिंग का निर्वाह भी अच्छी तरह कर दिया, लेकिन अल्फ्रेड कम्पनी के सत्य हरिशचन्द्र की उस घटना को भूल गये जिसमें सर्पदंश से पीड़ित रोहताश धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ता है और मर जाता है। किन्तु श्रोताओं का 'वन्समोर, वन्समोर' की आवाज सुनते ही तपाक से खड़ा हो जाता है और फिर फूल चुनने लगता है। तभी फिर सर्पदंश से पीड़ित होकर पहले जैसे ही गिरता है—मर जाता है और एक बार 'वन्समोर' सुनकर फिर जीवित हो जाता है। यथार्थ-वादी रंगमंत्र का क्या यह यथार्थवादी अभिनय नहीं है जिसको कागज के सर्प ने काटा हो यदि वह तीन बार 'वन्समोर' कहने पर उठ खड़ा हो तो मृत्यु को चुनौती देने के लिए इससे अच्छा अभिनय और क्या हो सकता है।

'धुंधले काँच की दीवार' के हर निबन्ध के साथ ऐसा कुछ जुड़ा हुआ है, जो प्यार की कचौटी के साथ सोचने को विवश करता है। आपका यह उपहार मैंने सप्रेम स्वीकार किया। इसे पाकर मुझे जो आनन्द मिला वह

शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ। शब्दों की निराली दुनिया के मालिक तो आप हैं। 'अमीर और गरीब पुस्तकें' शीघ्र ही खरीद कर पढ़ूंगा और तब आपसे विनोद वार्ता का प्रसंग आयेगा। लगता है कि वह पुस्तक नोक-झोंक के लिए मजेदार साबित होगी।

सस्नेह आपका

१२-११-६६

विजयेन्द्र स्नातक

स्नातक सदन, ए ५/३ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

प्रिय उपाध्यायजी,

सस्नेह नमस्ते। आपका पत्र और 'सुख के नाम पाती' की प्रति मिली। डाकिया देकर अभी बाहर ही गया होगा कि मैंने रेपर हटा कर पुस्तक पढ़ना शुरू कर दिया। दो तीन लेख तो चुपचाप पढ़ गया लेकिन इसके बाद मुझसे रहा न गया और मैंने घर आये चार पाँच मेहमानों को भी श्रोता बनाकर पुस्तक पढ़कर सुनाना प्रारम्भ किया। कल मेरा जन्म-दिन था। कुछ लोग घर आए हुए थे। सच मानिये—वे सब भोजन करना भल गये और लगभग एक घन्टे तक मेरा वाचन सुनते रहे। उनमें से एक भी नहीं जानता था कि रामनारायण उपाध्याय नामक कोई ऐसा व्यंग लेखक हिन्दी में होगा जिसकी रचना सुनने को उन्हें किसी बाह्य प्रेरणा से नहीं—अन्तः प्रेरणा से विवश होना पड़ेगा। उन्होंने आपका नाम भी नहीं सुना था, यों वे अपने को हिन्दी प्राध्यापक कहते हैं।

पुस्तक अभी मैंने पूरी नहीं पढ़ी है दो या तीन दिन के लिए मुझे बाहर जाना है साथ ले आऊंगा और समाप्त कर लूंगा। वैसे जितने लेख पढ़े हैं उनमें आपका अपना व्यक्तित्व झलकता है। व्यंग लिखना अभिधा लेखन से कठिन होता है। किन्तु जो व्यंग के अनुरूप विषय पा सकते हैं उनके लिए अभिधा में कुछ कहना भी कठिन हो जाता है। आपकी सहजता का यही रहस्य है मुझे व्यंग सहज ग्राह्य है। कुछ मित्रों का ऐसा कहना है कि यदि मैं समीक्षक न होकर व्यंग लिखता तो अपने लेखक के साथ इन्साफ करता। समीक्षक बनकर मैंने गैर इन्साफी की है। खैर अब जो कुछ हो गया सो गया। लेकिन मेरे भीतर छिपे हास-परिहास और प्रफुल्ल परिवेश

ने व्यंग को सराहने की क्षमता तो मुझे बख्शी ही है।

मैं पिछले दिनों किडनी खराब हो जाने के कारण दो महीने अस्वस्थ रहा। स्वास्थ्य अभी तक सही रास्ते पर नहीं आया है। कभी खण्डवा आने की इच्छा है केवल आप से मिलने और दो-चार घंटे बैठकर बात करने के लिए ही आना चाहता हूँ। देखिए कब सुयोग बनता है।

पुस्तक के लिए औपचारिक धन्यवाद क्या दूँ? मुझे लगता है कि आपकी प्रत्येक रचना पर मेरा कुछ अधिकार है इसे पढ़कर मैं यही समझता हूँ कि मुझे मेरा प्राप्त मिला है।

बच्चों को प्यार—सस्नेह

आपका

२४-१२-७० विजयेन्द्र स्नातक

स्नातक सदन ए ५/३, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

प्रिय भाई उपाध्यायजी,

दिनाँक ११-२-७५ का पत्र मिला। इस बीच बाहर चला गया था इसलिए तुरन्त उत्तर न दे सका।

विश्व हिन्दी सम्मेलन को आपने संगम के रूप में देखा। सहायक नदियों का पता न चले तो कुछ विशेष आश्चर्य नहीं। लेकिन कौन-कौन से महानद, नद, बड़ी नदी—और ध्यातव्य नदी थी यह निर्णय करना भी कठिन ही है। आप तो सचमुच अन्त: सलिला सरस्वती ही बने रहो। संगम में भी उभरे नहीं। मैं तो उस विशाल संगम में 'पानी केरा बुदबुदा' था जो आपको कहीं उछलता टूटता-फूटता नजर आ गया। ऐसे शत सहस्त्र जल बुदबुद वहाँ थे। कौन किसके टूटने-फूटने और मिटने की चिन्ता करता है। मुझे यदि आपके आगमन का आभास भी मिल जाता तो मैं मिलने का संयोग जुटा लेता। बेशक मेला भारी थी—भीड़ भारी थी। लेकिन समय का टोटा नहीं था। नाश्ता, पानी, भोजन और हँसी ठट्ठा भी कुछ कम नहीं था। ऐसा लगता है कि आपके भीतर उमंग ही नहीं उठी मिलने की, नहीं तो, 'पानी केरा बुदबुदा' स्वयं फूट पड़ता। सरस्वती बने रहे आप मौज लेते रहे, मजे लेते रहे। औरों को बहकते-बहते देखते रहे

उस विशाल संगम में। खैर कोई बात नहीं फिर कभी समय मिलने पर भेंट होगी।

'माटी की गंध' की प्रति मिल गई है। देख गया हूँ। आप जैसे निरीह निरामिस साहित्यकार के अनुरूप है। टीम-टाम से बचना ही चाहिए। सीधी सरल रेखा खींचना मुश्किल होता है लेकिन जो खींच पाता है वह सच्चा ड्राइंग मास्टर होता है। आपने चलते-फिरते, यों ही—बिना लाग लपेट के लिखा है, सो सीधी रेखा के मानिन्द समझना चाहिए। इत्र-फुलेल, सेंट की गंध बड़ी बनावटी होती है, माटी की गंध मशीन से नहीं फूटती वह तो 'प्रथम वारि बूँद न उठे जो वसुमती सुगन्ध' है। जिसके लिए प्रयत्न नहीं होता। मेघ घिर आते हैं, बरस जाते हैं और प्यासी धरती को आप्यामित करने के साथ सुवास से भर जाते हैं। 'माटी की गंध' इसी तरह की है। अभी तक इस गंध की नकल नहीं हुई। इस गंध का इत्र नहीं बना, सेंट के रूप में इसे किसी ने मशीन के जरिये निचोड़ कर शीशी में नहीं भरा। जब-जब पहली वर्षा होती है माटी से यह गंध स्वतः निकल कर इतस्वतः फैल जाती है। इस गंध पर भौंरे नहीं आते और न किसी की वेणी में ही यह बसती है। इस गंध पर उनका अधिकार है जो मिट्टी में सने रहते हैं, मिट्टी में पनपते, बढ़ते हैं। मिट्टी में जिन्हें भगवान के दर्शन होते हैं। 'माटी की गंध' पाना पहचानना, भोगना उनके भाग्य में होता है जिनके घर लोहे, सीमेंट और काँच से घिरे नहीं होते। छान-छप्पर के मटमैले घरों में यह गंध अनायास पहुँच जाती है। धन्य है, आप जो इस आणविक युग में इस नैसर्गिक सुवास को संजोये हुए हैं। मेरी बधाई स्वीकार करें।

बाल बच्चों को प्यार, सस्नेह।

आपका

१८-२-७५ विजेयेन्द्र स्नातक

ए ५/३ राणाप्रताप बाग, दिल्ली-७

प्रिय उपाध्यायजी,

सप्रेम नमस्ते। 'जनम-जनम के फेरे' की प्रति कल मिली थी। आज

दोपहर तक उसका आद्यन्त पारायण कर गया हूँ। चक्कर ही तो काटना था। गाँव की सुधि लेकर शहर में जीने वाले की व्यथा इसमें है, गाँव को भूलकर शहर की सुविधाओं में खो जाने वाले की जड़ता भी होती तो अच्छा होता। मेरे जैसे लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो गाँव से नाता तोड़ शहरी भौतिकता में अपनी जमीन की सोंधी महक से दूर जा पड़े हैं। जिनकी गोद नहीं होती उनकी गोद का सुख भोगने की भूल करके भी हम भुलावे को स्वीकार नहीं करते ! शहर की रेल-पेल में किसी का आना और किसी का जाना कोई उल्लास उमंग नहीं भरता, किसी को कोई सूनापन नहीं सुहाता। महानगरीय जीवन की त्रासदी पर भी व्यंग्य किया होता—व्यंग्य की कोई कमी है आपके पास बड़े मीठे, प्यार भरे व्यंग्य वाणी से भरा तरकस रखते हैं आप।

मुझे लगा कि इस पुस्तक के तीन चार लेख मैंने पहले कहीं पढ़े थे। शायद किसी पत्र-पत्रिका में पढ़े हों। इस समय मैं पुस्तक की समीक्षा नहीं लिख रहा हूँ। यदि कभी लिखने बैठा तो बहुत सी बातें कहूँगा जो मुझे छू ही नहीं गई, मेरे मर्म के आर-पार होकर मुझे झकझोर गई हैं। आप जैसी सरल सुबोध शैली तो मेरे पास नहीं हैं, इसलिए वैसी मर्मवेधी बात कह पाना मेरे लिए कठिन होगा। फिर भी मन की बात, जैसी भी हो, कहने में सुख मिलता है। शब्दों के रचाव कसाव की क्या चिन्ता ! यदि बात सच्ची हो तो—'वाचमर्योनुधावति।'

हाँ, एक बात है। पृष्ठ १२६ पर गुरुदेव की कथा के संदर्भ में कहा है 'कविता भावलोक की वस्तु है, **रसलोक** की नहीं'। मुझे लगा कि काव्य भाव से रस तक पहुँचता है। रसलोक की **नहीं** कहना शायद कविता के प्रसार को रोकना है। रसलोक के स्थान पर व्यवहार लोक शब्द होता तो ठीक रहता। आप इस पर विचार करें। मैं नुक्ताचीं बनकर यह नहीं लिख रहा हूँ। पढ़ते-पढ़ते अटक गया—जैसे चलते-चलते पैर में कंकड़ी सी चुभे। इसलिए यह लिख गया। कविता को रसलोक से न निकालें। व्यवहारलोक से निकालना ही सही है। रसहीन कविता भी कोई कविता है, निस्पन्द प्राणहीन।

राम, कृष्ण, बुद्ध, व्यास, वाल्मीकि, ईशु, मुहम्मद सबपर नज़र

डालकर एक ही तत्त्व को पा लेना आपकी स्वच्छ दृष्टि की सफलता है। साहित्य में तो मनुष्य ही होता है। धर्म का प्राण भी मनुष्य है। मनुष्य विकृत होता है, विस्मृत होता है, विभूति खोता है, केवल राजनीति में। मनुष्य में अपराजय शक्ति है, किन्तु जब इस शक्ति का उपयोग वह परपीड़ा एवं स्वार्थ सिद्धि में करता है, मानव न रहकर दानव बन जाता है। इतिहास में इस तथ्य की सैकड़ों गवाहियाँ है। आपने तो बड़े मजे से, चुपचाप कान में सब कह दिया है। पाठक आपके साथ पालतू (अच्छी उपमा नहीं मिल रही—हीनोपमा नहीं लिखूँगा) की तरह मंत्र-मुग्ध सा चलता रहता है। एक पृष्ठ भी तो ऐसा नहीं जहाँ उचाट हो। कलम क्या है गोपियों को रिझाने वाली कन्हैया की बाँसुरी है। बंसी के बजते ही गोपियाँ सब काम-धंधे छोड़ रास मंडल के चारों ओर आ खड़ी होती हैं। पाठक भी उपाध्याय की सारस्वत वीणा को वैसे ही घेरे रहते हैं। फिर कभी लिखूँगा। कागज ही चुक गया क्या करूँ।

सस्नेह

६-२-८१ विजयेन्द्र स्नातक

सत्यपाल विद्यालंकार

३, फ्राँसिस बिल्डिन्ग-निकल्लन रोड, दिल्ली-६

प्रिय बंधु ! स्नेह, नमस्कार,

आशा है, मेरा ६-१२-७५ का पत्र आपको मिल चुका होगा, उपन्यास भी। किसी पुस्तक को हाथ में लेने का मेरा ढंग बड़ा अजीब-सा है। पहले पहल लेखक का आकर्षण पुस्तक की ओर मुझे खींचता है, अथवा उलटने-पलटने पर कोई-सी एक पंक्ति। फिर तो, वह पुस्तक मेरे लिए भिड़ों का छत्ता साबित होती है। आपकी कृति 'कुंकुम, कलश और आम्रपल्लव' के साथ भी यही हुआ। आपके व्यक्तित्व का प्रभाव तो मुझ पर था ही, जिस छोटी सी पंक्ति ने मुझे हठात् इस कृति से बाँधकर रख दिया वह थी—'खपरैलों से छोटे-छोटे घरों में बड़े-बड़े दिलों के लोग रहते थे'। (पृष्ठ ६) खूब !

अहमदाबाद मेरी यात्रा का अंतिम पड़ाव था। वहाँ से २७ नवम्बर की प्रातः 'दिल्ली मेल' में सवार होकर २८ की प्रातः यहाँ पहुँचा।

अहमदाबाद से अजमेर तक दिन-भर गाड़ी में रहा। और, दिनभर में आपकी इस कृति को लील गया। आपकी इस कृति को विशेष धन्यवाद कि मेरा सारा दिन सिर्फ चाय के प्यालों में निकल गया। लंच गायब। डिनर अजमेर स्टेशन पर किया, और ऐसे किया जैसे नशा करने के बाद आदमी डटकर खाये।

पंजाबी होने के बावजूद चाय मैं मिट्टी के कुल्हडों ही में अधिक पसन्द करता हूँ। घरों की बात और है। कहीं ऐसा तो न होगा कि मेरी इस मासूम बात को आप गाँठ बाँध ले और खण्डवा में मेरे आगे कभी मिट्टी का कुल्हड़ धर दें ?

'पायगा में बंधे रहते थे'। (पृष्ठ १२) 'पायगा' किसे कहते हैं ? विशुद्ध जिज्ञासा-भाव से पूछ रहा हूँ। इसी प्रकार 'कसाट का स्वर अलग से सुना जा सकता था," (पृष्ठ १३) में 'कसाट' के अर्थ से भी मैं अनभिज्ञ हूँ।

'बूढे अपनी ही तरह किसी सूखी चट्टान पर बैठकर तंबाकू पीने में सुख का अनुभव करते थे।' (पृष्ठ १४) आपकी ऐसी सहज व लघु उपमायें, 'सूर के पद' की तरह, धुन देने वाली हैं भाई।

'परिवारिकता' (पृष्ठ १५) का शुद्ध रूप है 'पारिवारिकता'। शायद यह छापे की गलती हो।

'न तो किसी को लिवाने जाने की खुशी न पहुँचाने जाने का दुख'। (पृष्ठ १८) सुन्दर ! अति सुन्दर !!

'पुराने कपड़ों को प्रेस करने की तरह'। (पृष्ठ २३) फिर वहीं 'गंभीर घाव करने वाली' छोटी-सी उपमा !

'कोई युग का भगीरथ ही उसकी धारा को मोड़ सकता है।' (पृ०२५) चिन्तन और टीस।

'जिधर की मिट्टी टिकी रहे वही दीवार और जिधर की ढह जाये वही दरवाजा '(पृष्ठ २८)'···तेरी सादगी पे मैं मर जाऊँ ऐ गालिब' !

'मेले-त्यौहारों में यदि स्त्री-बच्चों का साथ न हो तो ऐसा (ऐसे ?) लगता है जैसे बिना फूल (फूल-लता ?) के वृक्ष हों'। (पृष्ट १६ /मुकर्रर)

'गंगा में मैं नहीं नहाया, लेकिन उसके निर्मल जल से मेरा मनः प्राण

(मन-प्राण ?) अभिषिक्त रहता है' । (पृष्ठ ४६) । भाव धारा की इस तीव्रता का आनन्द कोई संस्कारी भारतीय ही ले सकेगा । नहीं क्या ?

'मेरा किसान भी लेखक है' (पृष्ठ ५०) इस शीर्षक के गठन की भरपूर दाद देता हूँ ।

'और मेरी दृष्टि सामने बैठे सरदार जी की दाढ़ी में उलझ जाती है' (पृष्ठ ७६) ।···मेरी समवेदना नोट कर लीजिए ।

'मुझे सबसे(सबसे अधिक) परेशानी···प्रगति कैसे होगी ।' (पृष्ठ ९१) तथा 'तो उनका क्या कर लेता ?' (पृष्ठ ९१) । कलम चूम लेने (इस उम्र में और जी करे भी क्या ?) का जी करता है ।

'प्रयोग के लिए मैंने सिर्फ एक स्त्री को छूकर देखा था, सो उसने ऐसा खींचा ' कि आज तक छूट नहीं पाया हूँ' । (पृष्ठ ९२) ए० सी० शॉक का यह एक्सीडेंट घर ही की बिजली से हुआ कि बाहर ? यदि बाहर तो आपके सौभाग्य से ईर्ष्या करूँगा यदि घर में तो आप कोई अकेले दयनीय नहीं कि सहानुभूति प्रकट करूँ ।

'मेरी यह मान्यता है कि मनुष्य या तो अपने लिए सम्मान पा सकता है या अपनी रचनाओं के लिए' । (पृष्ठ ९६) !

Bremily is the soul of wit.

'एक स्वर्ग (आकाश) के देवता । दूसरे अंतरिक्ष के देवता···।' (पृष्ठ १७८) । 'आकाश' और 'अंतरिक्ष' पर्याय नहीं है क्या ? आकाश की जगह 'धुलोक' शब्द रख दिया जाये तो कैसा रहे ।

आपकी इस संपूर्ण रचना को बड़े एकाग्र मन से मैंने पढ़ा है । यह कोई आप पर अहसान नहीं, मेरा अपने पर अहसान है । अधूरे मन से पढ़ने की अपेक्षा न पढ़ना अधिक अच्छा समझता हूँ। एकाग्रता के सतत अभ्यास ही को योग-दर्शन में 'अवधान' कहा गया है । अवधान ही 'चित्त वृति निरोध' का प्रथम सोपान है । किसी भी काम को पूर्ण एकाग्रता से करने का अभिप्राय है योग साधना की पीढ़ी पर पैर रखना । तिस पर आपकी रचना तो वह सीढ़ी है जो खुद-बखुद पैर को उठा कर अपने पर रख लेती है ।

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई कवि हो जाय सहज संभाव्य है ॥ मै० श० गुप्त ॥

अब दो शब्द ज़रा आपकी दूसरी कृति पर भी।

'और इस प्रकार अंतर्देशीय लिफ़ाफे का जन्म हुआ।' आपकी इस सूझ पर मज़ा आ गया। (पृष्ठ १२),

'मासिकों का धर्म बिगड़ने पर....'(पृष्ठ १६)। बड़े दुष्ट हैं आप।

'यह बंधी हुई मुट्ठी की तरह अपनी जगह मजबूत है'। (पृष्ठ २०)। ऐंसी सरल-सहज उपमायें आपके प्रति मुझे ईर्ष्यालु बना गयी है। सच !

'लेकिन जब मैंने देखा कि बजाय पढ़ी जाने के वे सिराहना लेकर सोने के भी काम आती है...' (पृष्ठ ५२) आपकी पुस्तकों का सिरहाना बनाना दूर, मैंने उन्हें सच्चे हृदय से सिर माथे लगाया।

'बादल की हरकत' मुझे बेहद पसंद आया। अपने यहाँ हर रविवार को बैठक-बाज़ी का शोरोगुल रहता है। इसी पिछले रविवार (७-१२) को आपका यह छोटा-सा निबंध खूब चटखारे लेकर दो बार अपने मित्रों को सुनाया। हमारी उस मित्र-मण्डली में महिला-मित्र और पुरुष-मित्र दोनों थे। जब मैंने पढ़ना शुरू 'किया'-धरती का अंग-अंग कसमसा उठा। उसकी छाती पर लगे खेतों के बन्द टूट गये। यौवन की बाढ़ से उसके मटमैले वस्त्र, अस्त-व्यस्त होकर छितरा गये। और, सुबह होने पर उसने देखा उसके शरीर पर प्रियतम के नाखूनों के चिह्न अंकित हो उठे थे'। तब मेरी बैठक 'वाह-वाह' से गुंजरित होउठी।...हम पंजाबी लोग ज़रा अधिक अश्लील होते हैं न भाई। सो कुछ खयाल न करना।

इस प्रसंग में कुमार संभव के दो श्लोक याद आ गये। सुनकर फड़क उठेंगे आप।

ऊरू मूल नख मार्ग राजिमिस्तत्क्षणं हृत विलोचनो हरः
वासलः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वर्ती प्रियतमामवारयत्॥
स प्रजागर कबाय लोचनं गाढ़दन्त परिताडिताधरम्
आकुलाल कमरंस्त रागवान् प्रेक्ष्य भिन्न तिलकं प्रियामुखम्॥

आपकी गंभीर संवेदना और रचना-कौशल की जितनी प्रशंसा करूं कम है। महाकवि भवभूति के शब्दों में अपने बारे में मेरी भविष्यवाणी सुन लीजिये—

उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निखुधिर्विपुला च पृथ्वी ।।

आपके साथ इस नवीन परिचय-सूत्र को मैं अपनी यात्रा की परम उपलब्धि मानता हूँ।

घर में जिनको मैं याद होऊँ या आधा याद होऊं उन सबको मेरा स्नेहाभिवादन दें।

कभी दिल्ली आवें तो मिलेंगे तो अवश्य ?

भाई

९-१२-७५ सत्यपाल विद्यालंकार

३ फ्रांसिस बिल्डिग, निकल्सन रोड, दिल्ली-६

प्रिय भाई रामनारायण जी,

सप्रेम नमस्ते।

आज प्रातः 'मन के मृगछौने' का पारायण पूर्ण किया है। आज ही खत लिखने बैठ गया हूँ। आशा नहीं कि इस खत को आज ही खत्म कर सकूँ। संभवतः सोमवार ही इसे पोस्ट कर सकूँगा। मेरा पढ़ना और लिखना ही नहीं दिन-रात की सभी चेष्टाओं-कुचेष्टाओं की रफ्तार बड़ी धीमी है। सिर्फ चाय जल्दी पीता हूँ।

सोचता हूँ शुरू कहाँ से करूँ? एक कलह प्रिय नवपरिणिता की तारीफ पति महाशय कर बैठे। सुनकर श्रीमती जी बोली—'क्यों बाकी साड़ियों में क्या बुराई है?' हम साहित्यकारों का मन भी करीब-करीब ऐसा ही होता है।

पहले ही पृष्ठ पर 'अस्त व्यस्त चीजों को ढंक दें' की गहरी मनोवैज्ञानिक उपाय पढ़कर मजा आ गया।

'गेहूँ और गुलाब' को पढ़कर आपके भीतर के भावुकता व चिंतन के अपूर्व समन्वय का परिचय मिला। इसी गद्यांश में आपके 'ओठों' को भी मैंने रेखांकित किया। यदि आप 'होंठ' लिखते तो रेखांकित नहीं करता। आपकी नजाकत, नफ़ासत की दाद दिये बिना नहीं रहा।

'टिमटिमाकर बतियाते से तारों' विभ्रमीलाप ने मुझे बरसों पहले की

किशोर वय की मुग्धता से सराबोर कर दिया। उस मुग्धता में मैं नहा-सा गया।

"आभास" की संक्षिप्तता लाजवाब है।

'परदे के पीछे' की झाँकी ने अंग्रेजी के एक पद्य की याद ताजा कर दी।

खूब याद है लाहौर में इन चार पंक्तियों को जब पढ़ा था, नाच उठा था। कलम उठाने पर विवश हो गया था लिखा था—

हवा में महल सैंकड़ों हैं बनाये।
हृदय के विविध रंग उन पर चढ़ाये।
लिए ईंट पत्थर की उनके तले आज
बुनियाद देना उठा चाहता हूँ।'
मैं क्या चाहता हूँ ? मैं क्या चाहता हूँ।'

साहित्य की सशक्तता इसी बात में है कि मन की सात्विक वृत्तियों को, एक बारगी ही उकेर कर यह उजागर कर दे। वह सशक्तता आपकी लेखनी में भरपूर है।

'गुलाबी चुम्बन' का स्पर्श पाते ही मैं पुलक उठा। किसी नवयौवना का क्या हाल होगा ? वह तो आपका पता पूछती फिरेगी।

'नाईट ड्यूटी' ने पुरानी शराब का एक छोटा-सा पैग मेरे आगे मुहय्या कर दिया। आप-सा साकी पाकर स्वयं को धन्य मानता हूँ।

'दीवार पर टंगे कलेण्डर की फिल्म एक्ट्रेस की आँखों से आँखे लड़ाना' आपकी गंभीर संवेदनशीलता की सराहना तो करूंगा पर मेरी हार्दिक संवेदना भी नोट कर लें। उर्दू के एक मनचले ने लिखा है—

"मेरा इश्क कम खर्च वाला नहीं है
तेरे नाम की सदा मूठ मारता हूँ।"

'जब रात भी ऊंघने लगती है' में आपकी तीव्र अनुभूति की एक-एक पंक्ति में दर्शन होता है।

'खाली मकान की आत्मा' की अंतिम पंक्ति है—'हम भी यहाँ हैं। कभी इधर भी आइयेगा।' अरे उपाध्याय जी मैं तो आपको बड़ा पाक साफ समझे था।

'सुख-दुख' की प्रत्येक पंक्ति आपके हृदय की परम सात्विकता एवं निर्मलता का प्रतिबिम्ब है। श्रद्धेय हैं आप।

'स्वाभिमान' में आपके व्यक्तित्व की एक सुन्दर झाँकी मिली। 'इबारत' की अंतिम पंक्ति 'सबसे बड़ा मनुष्य है।' महर्षि व्यास देव की पंक्ति सुनें तो—मजा आ जायेगा आपको—

"गुह्यं ब्रह्म, तदिदं न हि, मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित।"

'गुह्य" राज की बात। 'ब्रह्म' बहुत बड़ी। पर एक बात है सोचता हूँ इस तरह शब्दार्थ लिखने में मुझसे गुस्ताखी तो नहीं हो रही?

'लाभ हानि' की अंतिम पंक्ति 'कहीं लाभ के लोभ में उसे भुना मत लेना।' आपकी ये छोटी-छोटी पंक्तियाँ जिद्‌य वाणसी मर्म घातिनी है।

'मधुमक्खी का छत्ता' सम्पूर्ण गद्य में सादगी, स्पष्टता व भाव सौंदर्य का अनूठा मेल है। यह कहानी नानी भी अपने बच्चों को सुना सकती है और हम आप भी पूरा रस लेकर इसे सुन-सुना सकते हैं। इस दृष्टि से यह गद्यांश अन्य गद्यांशों से जरा हट कर है।

'माटी का स्पर्श' तीव्र संवेदना का जैसा तीखा दंश अपने भीतर छुपाये है उसे छुपाकर ही रहने देते।

'जो देने का दावा करते है वह पिता है। जिसके पास देने के लिए नहीं, कुछ नहीं वह माँ है।' अत्यंत सशक्त शब्द रचना है यह। यह पंक्ति जितनी ही भावपूर्ण है उतनी ही सादा है—

"भविष्य जब आयेगा खाली हाथ आयेगा
अरे पर अपना लेखक, अपनी बात साथ लायेगा।"

अत्यंत विचारोत्तेजक।

'जब कोई आकर वापिस चला जाता है उसके बाद जो बचता है उसे मैत्री कहते हैं।'

आपके पाठकों में जो थोड़े से लोग इसकी सूक्ष्मता को पकड़ सकेंगे उनमें मेरा नाम सबसे ऊपर लिख लीजिए। सच!

"उपेक्षा से मुझे दु:ख नहीं होता
सोचता हूँ मेरे पास अवश्य कुछ ऐसा है
जिसे मान्यता देने में किसीको झिझक होती है।"

आपकी इन पंक्तियों से आपके भीतर के रूढ़ अहंकार की झाँकी मिली जो प्रत्येक प्रतिभावान लेखक में होता है। कुछेक में यह अहंकार मरखनी गाय की तरह सींग मारता दिखता है। सचेत इंसान में यह अहंकार विनय की शान पर चढ़कर साधनापूत हो रहता है। ऐसे ही अहंकार को मैं 'रूढ़' कहता हूँ। रूढ़ अहंकार रचना में ओज भरकर रह जाता है। जीवन में कदर्यता नहीं पैदा करता। सुमित्रानन्दन पंत का अहंकार रूढ़ है। निराला में वह 'रूढ़' नहीं था।

"हमने एक सपना बुना, उसने एक मकान बनाया।"

इन दो वाक्यांशों को पढ़कर महाकवि अकबर का एक शेर याद आ गया—

"बूट डासन ने बनाया, मैंने एव मजमूँ लिखा,
मुल्क में मजमूँ न फैला, और जूता चल गया।"

मेरा जीवन तो इस अनुच्छेद को पढ़कर अपनी एक पुरानी कविता स्मरण हो आई। सुनेंगें। लाहोर में मैं कविता ही लिखता था—हाँ तो सुनिए—

"एक मट्टी का जरा-सा पात्र हूँ, स्नेह की यह धार तुमने ढार दी
कूष मेरा देखकर भी क्यों प्रिये, हाथ की बाली उतार संवार दी।"

"सागर की भी अगर एक ही पत्नी होती,
तो नदी का मन उससे मिलकर खारा नहीं होता।"

आपकी उद्भावना शक्ति की जितनी दाद दूँ कम है।

"दर्द को कपड़े पहना दो खूब सूरत नजर आयेगा
खुशी के कपड़े उतार लो बदसूरती झाँकने लगेगी।"

आपके गंभीर आत्म चिंतन का यह परिचय मेरे लिए अब नया नहीं रहा।

लेखक भावुक होता है। कवि लेखक तो और भी भावुक होता है। डरता हूँ मेरी आलोचना कहीं-कहीं अप्रिय न प्रतीत हों। आपके प्रति तीव्र हित चिंतन व स्नेह से अवश होकर यह सब लिख गया। किसी कवि पर पत्र पत्रिका में समालोचना लिखना मुझे कभी रुचिकर नहीं रहा। मित्रता के स्तर पर लिखते हर्ष अनुभव करता हूँ। यदि कहीं अप्रियता आ गई हो

तो सच्चे हृदय से क्षमा चाहूँगा।

पत्र में एक जगह अश्लीलता का भी परिचय दे गया हूँ। तदर्थ इतना ही कहूँगा—"संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक लाज खोई"

आपका भाई

२१-२-७६ सत्यपाल विद्यालंकार

गाँधीजी-बापू

सेवाग्राम

सारी दुनिया के ही आदमियों में श्रद्धास्पद भी रहते हैं। वे गलत नहीं हो सकते ऐसा नहीं है। वे गलत निकले यानी हमने गलत जगह श्रद्धा रखी। इस श्रद्धा के साथ भगवान पर भी पूरी श्रद्धा है तो डरने की कोई बात नहीं। जो असल लगे, वह प्रत्यक्ष परमेश्वर में भी प्रतीत हो, तो परमेश्वर को झूठा करने में शर्म क्यों? सबसे बड़ी श्रद्धा अपने पर होनी चाहिये। 'आत्मैव आत्मनो बन्धु समझो यही।'

१५-१२-४७

बापू

विनोबा

परम्धाम-पवनार, वरधा

रामनारायणजी,

आप्त-शरीर के वियोग से शरीरधारी को बेचैनी होनी अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन आत्मा की अर्थात् विचार की निष्ठा रही तो बेचैनी दूर हो सकती है। सर्वोत्तम या अन्तिम अवस्था में हम देह की कल्पना नहीं करते हैं। इसके लिए विचार शुद्धी की जरूरत है और वही हमें करना चाहिए।

२३-२-४९

विनोबा

यात्रा से

श्री रामनारायण जी,

आपका पत्र मिला। आप लिखते हैं गाँव के लोग श्रमनिष्ठ तो हैं। यह ठीक नहीं है। गाँव के लोगों को श्रम करना पड़ता है इसलिए वे करते

हैं। लेकिन उसमें निष्ठा नहीं है। वह लाचारी है। निष्ठा में तेजस्विता होती है। श्रमनिष्ठ पुरुष किसी का शोषण नहीं करेगा और दूसरों को अपना शोषण भी करने नहीं देगा। शोषण मिटाने के लिए व्यापक सर्वांगीण स्वावलम्बन चाहिए। जो श्रमनिष्ठा से ही बन सकता है। इस बारे में हम पवनार में जो प्रयोग कर रहे हैं उसका कुछ जिक्र सर्वोदय में आया है। आपको यह देखना चाहिए। उससे प्रस्तुत समस्या पर काफी प्रकाश पड़ता है।

१९-३-५१ विनोबा

महाराष्ट्र यात्रा

श्री रामनारायण जी,

"युग पुरुष गाँधी" दस पाँच मिनिट में देख गया। अच्छे मनुष्य ने, अच्छे विषय पर किताब लिखी है तो वह अच्छी ही हो सकती है।

२४-४-६४ विनोबा का जय जगत

परमधाम, पवनार (जि० वर्धा)

बापू गये तो अपने विचार हमारे लिए छोड़ गये हैं। इसलिए व्याकुलता का कारण नहीं है। उपयोगिता भी नहीं है। उपयोग है उन विचारों में से जिनका हम अमल कर सकें, उनका अमल करने का।

उसी में हम लग जायें।

१३-२-७८ विनोबा

किशोरलाल घ० मश्रुवाला

साउथ एवेन्यू, बंबई-२४

श्री उपाध्यायजी,

आपका पत्र मिला। 'विश्ववाणी' मेरे देखने में उसके पहले ही आ गई थी और आपका लेख मैंने पढ़ा था। भक्तों की अपेक्षा टीकाकारों के लेख आश्रम में रहने वालों के लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं। उसके बाद तो अब आश्रम में बहुत फेर-फार हो गए हैं और मैं पूज्य बापू के पास शायद ही बैठा हुआ दीखता हूँ। खैर, धन्यवाद।

आपका

७-२-४६ किशोरलाल घ० मश्रुवाला

श्री पगारेजी का नया गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक चलता होगा। उन्हें कुशल।

बजाजवाड़ी, वर्धा

श्री उपाध्यायजी,

आपका कार्ड बगैर जवाब दिये अभी तक रह गया। आपने पुस्तक पढ़ ली होगी। कैसी मालूम हुई।

सिद्धान्तिक सत्य ही सत्य है। तोड़ जोड़ हमारी और जगत की कमजोरी के कारण करनी पड़ती है। अधिक से अधिक सिद्धान्त की तरफ झुकाव रखते हुए और उसके लिए भरसक हानि सहन करने की तैयारी रखते हुए प्रयत्नशील रहना, यह हर एक का कर्त्तव्य है। भरसक प्रयत्न अपनी अपनी शक्ति के अनुसार होते हैं। आत्मरक्षा की प्रेरणा अत्यधिक जोखिम उसे उठाने नहीं देती। परन्तु जब वह आत्मरक्षा को ही प्रधान ध्येय बनाले तब वह सिद्धान्त से हटता जाता है।

आपका

८-८-४९ कि० घ० मश्रुवाला

आबिद अली

१२/हुमायूं रोड, नयी दिल्ली

प्रिय श्री रामनारायण जी,

इन दिनों मैं मुसाफरी में रहा। आपका भेजा हुआ खत यहाँ मिला। जवाब भेजने में कुछ देर हो गई माफ कीजिए। पुस्तक आपको पसन्द आयी, यह जानकर मुझे खुशी हुई। आपने इस बारे में जो लिखा है, उसके लिए शुक्रिया। खंडवा जेल में हमारे साथ पंडित सतदेव विद्यालंकार थे ही, शोलापुर के जाजू भी थे। ज्यादा साथी मद्रास और आंध्र के थे, उनमें से बहुत से तो चल बसे। बम्बई के सर्व श्री वाडिया, शिवम और अम्बालाल तलकचन्द का भी देहान्त हो गया। नागपुर के अब्दुल कादर और जब्बार मियां साथ में थे वे भी अब नहीं रहे, बाकी लोगों के नाम याद नहीं पड़ते।

भाई कर्मवीर, माखनलाल चतुर्वेदी नागपुर जेल से कहीं और भेज

दिये गये थे, खंडवा में नहीं थे।

उम्मीद है, आप सब सुख आनन्दमय हैं।

सेवक

५-६-१९६९ आबिद अली

रमणलाल देसाई

बड़ौदा

प्रिय भाई श्री उपाध्याय जी,

आपका पत्र मिला। मुझे बहोत आनन्द हुआ। लोक गीत मेरा शौख और अभ्यास का विषय है। अनंतराव मंडलोई जी से आपका भेजा हुआ पुस्तक मिल जायेगा और मैं उनका स्विकार भेजूँगा।

हिन्दी अच्छी तरह से मैं नहीं जानता। तथापि हिन्दी पढ़ने की इच्छा बहोत होती है। मेरे लीखने में कुछ गलती हो जाय तो माफ कीजीयेगा। आप का निवास स्थान साहित्य कुटिर है वह समझकर मुझे बहोत हर्ष होता है। आप की साहित्य प्रवृत्ति का ख्याल मीले ऐसी आशा रखता हूँ।

आपकी कुशलता चाहता हूँ।

२६-१२-५० रमणलाल देसाई

वि० ए० चेर्निशोव

मास्को (केन्द्र) यू० एस० एस० आर०

प्रिय मित्र,

आपका कृपा पत्र और बुक पोस्ट यथा समय प्राप्त हुआ। सबके लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। दोनों पुस्तकें गम्भीर शोध कार्य के सुन्दर फल हैं। अतः आप बधाई के पात्र हैं। मेरे कार्य में वे बड़े महत्व की होंगी। 'हिन्दी में प्रकाशित लोक साहित्य की सूची' भी अत्यन्त उपयोगी है। जो लेख आपने भेजे हैं उन्हें मैंने दिलचस्पी लेकर पढ़ा है। पढ़कर प्रसन्नता हुई है। आपने दो व्यंग्य निबन्धों ('गरीब और अमीर पुस्तकें' और 'धुंधले काँच की दीवार') का जो उल्लेख आपने किया है उन्हें भी मैं रुचि से पढ़ूंगा। हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का अभाव है और दो कमलों से आपने उसकी

पूर्ति की है।

प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में।

आपका ही

५-३-६७ वि० ए० चेर्निशोव

आपने पूछा है हिन्दी में प्रकाशित मेरे लेखों के बारे में। हिन्दी में प्रकाशित मेरे लेख (१) 'आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के नामधातु और नामिक संयुक्त क्रियाएँ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' २०१४, अंक १;

(२) 'समानाधिकरण' (हिन्दी अनुशीलन' १९६० अंक १-२।

(३) 'हिन्दी के साधारण वाक्य में स्वतंत्र कर्त्ता और असमायिक क्रिया वाले वाक्यांश' ('न० प्र' २०१३) अंक १-२-३।

मास्को

प्रिय महोदय,

आपका २५ मार्च ६७ दिनाँक का पत्र यथा समय मिला है। धन्यवाद। उसमें जो बातें आपने लिखी हैं वे मेरे कार्य के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होंगी। उससे भी अच्छा होगा अगर अपनी जिन पुस्तकों का आपने उल्लेख किया है आप भेज दें। क्योंकि रोटी का टुकड़ा, आम के स्वाद के विवरण से कहीं अच्छा है विशेषकर हिन्दी में प्रकाशित लोक साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकों एवं लेखों की एक सूची में जो आपने तैयार की है मुझे दिलचस्पी है।

आपने रूसी लोकगीतों को पढ़ने की इच्छा प्रकट की है। मगर जहाँ तक मुझे पता है रूसी लोकगीतों का प्रकाशन न हिन्दी न अंग्रेजी में हुआ अब तक। सिर्फ रूसी में वे प्रकाशित होते हैं। अगर रूसी सीख लें तो आपकी इच्छा पूरी हो सकती है।

हिन्दी सेवा का जो कार्य मैंने अब तक किया है उसका विवरण बहुत ज्यादा विस्तृत नहीं होगा। पहिले-पहल भाषा विज्ञान के क्षेत्र में कुछ कार्य हुआ है। १९६५ में हिन्दी के साधारण वाक्य का विन्यास नाम के निबन्ध का प्रकाशन हुआ—२५० पृष्ठों वाले।

दूसरे हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी कुछ काम हुआ है जिसके फल

"रेणु के उपन्यास' 'आधुनिक हिन्दी साहित्य में जाति का विवरण' आदि निबन्ध प्रकाशित हुए।

कई कृतियों का अनुवाद भी किया। रेणु के 'मैला आँचल' नामी उपन्यास, भीष्म साहनी, मार्कण्डेय, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव के कहानी संग्रह तैयार तथा अनूदित भी किये।

आपका ही
वि० ए० चेर्निशोव

३-५-६७
प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
अकादमी आफ़ सांइसेज, मास्को

बारान्निकोव

लेनिनग्राद

आदरणीय भाई उपाध्याय जी,

आपका स्नेह भरा पत्र मिला इसके लिए अनेक धन्यवाद। आप मुझे अपनी रचनाएँ भिजवा रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई। मिलने पर अपनी तुच्छ सम्मत्ति दूंगा।

मैंने भी लोक कथाओं के विषय पर कुछ काम किया। गत वर्ष दिल्ली में मेरी एक पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित हुई थी जिसका नाम 'सोवियत संघ की लोककथाएँ' है। इसका प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस है। खेद की बात है कि यह पुस्तक अभी मेरे पास नहीं है नहीं तो आपको अवश्य ही भिजवा देता। आशा है क्षमा करेंगे। मेरा एक लेख 'व्यंगात्मक रूसी लोक कथा' 'युग प्रभात' पत्रिका में सन १६५८, १६ सितम्बर को प्रकाशित हुआ यह पत्रिका केरल की सचित्र हिन्दी पाक्षिक है जो कालिकट से प्रकाशित हो रही है।

हमारे यहाँ के लोक साहित्य के अनेक काम करने वाले हैं। तो आप किन-किन से परिचय लेना चाहते हैं—जो या तो रूसी, या उक्रेनी उजबेक, तुर्कभी, एस्तोनिया के लोक साहित्य के हों। यह सब अलग-अलग विशेषज्ञ हैं। तो सूचित करे। आप जानते होंगे कि २० मई को आपका जन्म दिवस है तो इस अवसर पर मेरी बधाई तथा मंगल कामनाएं स्वी-

कार करें। मेरे योग्य सेवा सूचित करें।

आपका

६-५-६२ बाराग्निकोव

आदोलेन स्पेकल

प्राहा, चेकोस्लोवाकिया

आत्मीय बन्धु रामनारायण भाई

नववर्ष पर शुभकामनायें।

कोई आठ वर्ष पूर्व १९७५ में हम मिले। तभी आपने अपनी दो पुस्तकें भेंट करने की कृपा की। 'निमाड़ी का लोक साहित्य और संस्कृति' कुंकुम कलश और आम्र पल्लव

हिन्दी के दूसरे कार्यों में रत होने के कारण आपकी रचनायें पड़ी रहीं पिछले वर्ष तक। किन्तु सौभाग्यवश दो मास हुये मैंने उन्हें पढ़ने के लिये समय निकाला। अनेक वर्षों से मुझे लोक साहित्य में विशेष रुचि है अतः कोई आश्चर्य नहीं कि लोक साहित्य विषयक पुस्तक मुझे न केवल भायीं पर मैंने उसे अत्यन्त उपयोगी पाया।

जहाँ तक 'कुंकुम' की बात है बस अदभुत। दो बार उसे पूरा पूरा पढ़ा। सरल किन्तु सरस ग्रामीण वातावरण मानों मेरे कमरे में यहाँ भारत से दूर चेकोस्लोवाकिया में हो। अनेक धन्यवाद।

अनेक वर्षों के बाद इस पुस्तिका के लिये। २५ वर्ष पहले मैंने चेक-भाषा में 'गोदान' का अनुवाद किया था। पर ग्राम जीवन की झांकियाँ आपके निबन्धों में एकदम सुस्पष्ट और काव्यमय।

इस प्रकार की वास्तविक भारतीय जीवन पर पुस्तकें अधिक हैं आपकी निसंदेह। कृपा कर उनमें से कुछ और कुंकुम या चन्दन या पताए पाली भेजने का कष्ट करें।

प्रेम बना रहे। सधन्यवाद।

आपका

३-१-१९८३ आदोलेन स्पेकल